TEXT PROBLEM WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_182537
UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—23—4-4-69—5,000.

**OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY**

Call No. H81 N81B    Accession No. P. G. H3065

Author नरपति नाल्ह.

Title बीसलदेवरासो 1962.

This book should be returned on or before the date last marked below.

संस्करण : प्रथम
[ ११०० ]

▲

मूल्य
६·०० मात्र

▼

प्रकाशक
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,
पो० बॉक्स नं० ७०, पिशाचमोचन
वाराणसी-१

मुद्रक
ज्वाला प्रिंटिंग वर्क्स,
त्रिलोचन घाट,
वाराणसी-१

# समर्पण

स्वर्गस्थ

माता-पिता के चरणों

में

( जिन्होंने मनुष्य से मानव बनाया )

# दो शब्द

'बीसलदेव रासो' पर मेरे द्वारा कार्यारम्भ के पहले यद्यपि श्री सत्यजीवनजी वर्मा द्वारा सम्पादित प्रति प्रकाशित हो चुकी थी फिर भी डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या एवं डा० सुकुमार सेन महाशय ने आदेश दिया कि वैज्ञानिक ढंग से मैं इसका संपादन करूँ। गुरुजनों के आदेश का पालन करना अपना कर्त्तव्य समझ कर मैंने कार्य आरम्भ किया। मेरे कार्य के मध्य में ही इसकी दूसरी प्रति भी डा० माताप्रसादजी गुप्त द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित हो गई। लेकिन मेरा कार्य अपनी गति से चलता रहा।

इन दोनों प्रकाशित प्रतियों के सम्पादकों में से श्री सत्यजीवनजी वर्मा ने सं० १६६६ की इसकी पाण्डुलिपि को अपने सम्पादन का आधार माना है। जिस समय उन्होंने सम्पादन-कार्य किया था, सम्भवतः उस समय तक १६६६ की पाण्डुलिपि को छोड़कर अन्य पाण्डुलिपियों की सूचना उन्हें प्राप्त न हो सकी थी। अस्तु, उन्होंने अपने द्वारा सम्पादित पुस्तक में विभिन्न पाण्डुलिपियों में प्राप्त विभिन्न पाठों का उल्लेख नहीं किया है।

डा० माताप्रसादजी गुप्त ने जिस काल में इसका सम्पादन-कार्य किया, उस समय इसकी अनेक पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हो चुकी थीं और उन्हें प्रायः सभी पाण्डुलिपियो के अवलोकन का सुअवसर भी प्राप्त हो चुका था। प्राप्त पाण्डुलिपियों में सबसे प्राचीन पाण्डुलिपि सं० १६३३ की है। डा० गुप्त ने अपने सम्पादन का आधार इसीको बनाया और विभिन्न पाण्डुलिपियों में प्राप्त पाठों का उल्लेख भी अपनी पुस्तक में किया। लेकिन उन्होंने अन्य प्रतियों के छन्दों के साथ इस प्रति (१६३३) के छन्दों की तुलना करके केवल १२८ छन्दों को ही प्रामाणिक माना और इन १२८ छन्दों के ही विभिन्न पाठों का उल्लेख भी किया, यद्यपि १६३३ की पाण्डुलिपि में २४६ छंद हैं।

मैंने प्रस्तुत सम्पादन-कार्य सं० १६३३ वाली पाण्डुलिपि के प्रत्येक छंद को प्रामाणिक मानने का कारण बताते हुए नये ढंग से किया है। इसके अतिरिक्त मैंने एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल में प्राप्त 'बीसलदेव रासो' की उस

प्रति के पाठ का भी उल्लेख किया है, जिसका उल्लेख अन्यत्र नहीं है। काव्यागत 'काव्यसौष्ठव', काव्य की 'भाषा' तथा पुस्तक में दिये गए परिशिष्ट 'क' और 'ख' में जहाँ नया दृष्टिकोण उपस्थित करने का प्रयास किया गया है, वहीं ग्रन्थ की रचनातिथि का निर्णय भी वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत वैज्ञानिक ढंग से सम्पादित इस कार्य को करने में मेरी कठिनाइयों का स्वागत करने और उन्हें हल करने के लिए सर्वदा तत्पर रहनेवाले विद्वान् डा० सुकुमार सेन का मैं ऋणी हूँ। उन्हीं के पथ-प्रदर्शन से यह अध्ययन प्रस्तुत होकर कलकत्ता विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि के हेतु स्वीकृत हो सका है।

अन्त में, मैं एशियाटिक सोसाइटी के पुस्तकाध्यक्ष तथा वहाँ के अन्य अधिकारियों का आभारी हूँ जो मुझे कार्य की प्रगति में यथाशक्ति सुविधाएँ प्रदान करते रहे। लखनऊ विश्वविद्यालय के रीडर डा० विपिनविहारी त्रिवेदी के प्रति भी कृतज्ञता-ज्ञापन करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ, जिन्होंने इस कार्य को अग्रसर करने में मुझे सर्वदा प्रेरणा दी।

प्रेसीडेंसी कालेज, कलकत्ता
२० जून, १९६२

तारकनाथ अग्रवाल

# संकेत-सूची

१. सं०— संवत् ।

२. ना० प्र० प०—नागरी प्रचारिणी पत्रिका ।

३. वि० सं०—विक्रमी संवत् ।

४. जे० आर० ए० एस० 'बी०'—जर्नल आफ दी रायल एशियाटिक सोसाइटी ( बंगाल )

५. सं०—सम्पादक ।

६. ई० स०—ईसवी सन् ।

७. जे० ए० एस० 'बी०'—जर्नल एशियाटिक सोसाइटी ( बंगाल )

८. आई० ए०—इण्डियन एण्टिक्वेरीज ।

९. जे० एण्ड पी० ए० एस० 'बी०'—जर्नल एण्ड प्रोसीडिंग्स एशियाटिक सोसाइटी ( बंगाल )

१०. हिं० सा० इ०—हिन्दी-साहित्य का इतिहास ।

११. अ० २—'अ' समूह की सं० १६६७ वाली प्रति ।

१२. आ० ६—'आ' समूह की सं० १७२४ वाली प्रति ।

१३. आ० ६—'आ' समूह की सं० १७५१ वाली प्रति ।

१४. आ० १२—'आ' समूह की सं० १७७५ वाली प्रति ।

# सूचीपत्र


| अध्याय | | पृ० सं० |
|---|---|---|
| भूमिका | ... ... ... | १–१०० |
| १. प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों का परिचय | ... | १–१६ |
| (क) सत्ताइस हस्तलिखित प्रतियों का पूर्ण परिचय। (ख) प्रतियों के रूपान्तरों का विवरण। (ग) रूपान्तरों में कथावस्तु का पार्थक्य। | | |
| २. ग्रंथ की रचना-तिथि | ... ... ... | १६–५६ |
| अन्तःसाक्ष्य, भाषा एवं ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर रचना-तिथि का विवेचन। | | |
| ३. काव्यागत कथा एवं काव्य का रचयिता | ... | ५६–७१ |
| (क) प्रतियों के रूपान्तरों के अनुसार काव्य में वर्णित कथा का सार। (ख) कवि का जीवन-चरित्र। (ग) कवि की जाति का निर्णय। | | |
| ४. काव्य-सौष्ठव | ... ... ... | ७१–६५ |
| (क) ऋतु-वर्णन। (ख) चरित्र-चित्रण। (ग) रस। (घ) अलंकार। (ङ) छंद। | | |
| ५. भाषा | ... ... ... | ६५–१०० |
| (क) सम्पादित प्रति की भाषा। (ख) व्याकरण। | | |
| ६. ग्रंथ का सम्पादन | ... ... ... | १–६६ |
| आज तक की प्राप्त प्रतियों में से सबसे प्राचीन प्रति के आधार पर सम्पादन। | | |
| ७. परिशिष्ट 'क' | ... ... ... | १७३–१६५ |
| ग्रन्थ में आये हुए विभिन्न नगरों का ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा पौराणिक दृष्टि से विवेचन। | | |
| ८. परिशिष्ट 'ख' | ... ... ... | १६६–२०० |
| ग्रन्थ में आई हुई विभिन्न जातियों का परिचय। | | |
| ९. परिशिष्ट 'ग' | .... ... ... | २०१–२०८ |
| सहायक ग्रन्थों की सूची | | २०६–२१३ |


*

# भूमिका

'बीसलदेव रासो' की हस्तलिखित प्रति का पता सबसे पहले 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' को सन् १९०० ई० में हिन्दी की हस्तलिखित पुस्तकों की खोज करते समय जयपुर में लगा था[1]। श्री सत्यजीवन जी वर्मा द्वारा नागरी-प्रचारिणी सभा ने इस प्राचीन ग्रन्थ को सम्पादित करवा कर सन् १९२५ ई० में प्रकाशित भी कर दिया। इसके पश्चात् श्री अगरचन्द नाहटा ने प्रकाशित ग्रन्थ की भाषा तथा उसके ऐतिहासिक और भौगोलिक उल्लेखों को ध्यान में रख कर यह आवश्यक समझा कि इस ग्रन्थ की अन्य हस्तलिखित प्रतियाँ की खोज की जाय। इस दिशा में उन का प्रयत्न अंशतः सफल रहा। सर्वप्रथम उन्होंने 'राजस्थानी' पत्रिका में इस ग्रन्थ की जयपुरवाली प्रति के अतिरिक्त १५ अन्य प्रतियों का उल्लेख किया[2]। इस उल्लेख में कुछ ऐसी प्रतियों का भी उल्लेख था, जिन का पूर्ण परिचय नाहटा जी को उस समय तक प्राप्त न हो सका था। अस्तु पुनः उन्होंने 'राजस्थान-भारती'[3] में अपूर्ण परिचयवाली प्रतियों तथा अन्य प्राप्त प्रतियों का उल्लेख किया। इस प्रकार अब प्राप्त प्रतियों की संख्या १५ के बजाय २१ हो गयी। ये प्रतियाँ जोधपुर, बीकानेर, जयपुर तथा कोटा के विभिन्न पुस्तक-भंडारों में सुरक्षित हैं। मुझे एशियाटिक सोसाइटी (बंगाल) कलकत्ता, में दो हस्तलिखित प्रतियों को देखने का अवसर मिला। इन दोनों प्रतियों का उल्लेख नाहटाजी के लेखों में नहीं है। इनके अतिरिक्त नाहटाजी के लेखों में उन चार तथा दो पत्रों वाली प्रतियों का भी उल्लेख नहीं है, जो मुझे देखने को मिलीं। अतः नीचे अब तक प्राप्त उन २७ प्रतियों का परिचय दिया जा रहा है, जिनमें से १५ हमारी निजी देखी हुई हैं तथा १२ श्री नाहटा जी के लेख के आधार पर हैं।

---

(1) Annual Report on the search for Hindi Mss. for the year 1900. Notice No. 90, page 77.

(२) राजस्थानी (त्रैमासिक पत्रिका)—भाग ३, अंक ३, पृ० १८।

(३) राजस्थान भारती—पृ० ८४।

# प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों का परिचय

[ १ ] नाम—*बीसलदेव रासो*। कागज—देशी (हाथ का बना हुआ)। पत्र—२७ पत्र, दोनों तरफ लिखे हुए। आकार—११इं.×५ इं.। पंक्तियाँ—१५ से १६ पंक्तियाँ प्रत्येक पृष्ठ पर। पद्य संख्या—२४६। प्रकार—पुराना, पूर्ण; साधारणतया ठीक। अक्षर—देवनागरी। सुरक्षित स्थान—जोधपुर में पोकरण के पास फलोदी के श्रीयुक्त फूलचन्द जी झाबर के पास।

[ गुप्त : सं० समूह नं० ३, संकेत सं० ]

पुष्पिका—इति श्री वीसलदे रास समाप्तं। संवत् १६३३ वर्षे वैशाष वदि ११ दिना आदित्यवारे। लिषतं आगरा मध्ये पं० सीहा लिषतं। संपूर्णं।

आदि—गवर का नंदनत्रिभुवन सार। नादभेदइ थारइ उदर भण्डार। एक दन्तउ मुषिक लहलहइ। मुषिकउ वाहण तिलक संदूरि। कर जोड़ी नरपति भणइ। जाणि करि रोहणी जिमतपउ सुरि॥

अंत—कनक काया जिसी कूकूं रोल। कठिन पयोहर रतनक चोल। केलि गरभ सी कूंवली। चालइ पूणजउ षाचइ नीक। मोडि कडि चालइ गोडरी। उणकी विरह बेदना नां लहइ कोइ। जिउ राजा राणी मिल्या। त्यंउ नाल्ह कहइ मिलि ज्यो सह कोइ॥ २४६॥

रचना-तिथि—संवत् सहससतितिहितरइ जाणि। नल्ह कविसरि कही अमृत वाणि। गुण गुथ्य चउदहाण का सुकल पक्ष पंचमी श्रावण मास। रोहणी नक्षित्र सोहामणउ। सो दिन गिणि जोइसा जोडइ रास।

टि०—प्राप्य तिथियुक्त प्रतियों में यही सबसे प्राचीन है।

[ २ ] नाम—*राजा वीसलदें रासा*। कागज—देशी (हाथ का बना हुआ), पत्र—सोलह पत्र दोनों तरफ लिखे हुए। आकार—८३/४ इं.×८इं.। पंक्तियाँ—२६ पंक्तियाँ प्रत्येक पृष्ठ पर। पद्यसंख्या—६३७। प्रकार—पुराना; पूर्ण;

[ गुप्त : सं० समूह नं० १५, संकेत सं० ! ]

साधारणतया ठीक; चार खण्डों में विभाजित। अक्षर—देवनागरी। सुरक्षित स्थान—विद्याप्रचारिणी जैन सभा, जयपुर। श्री अगरचन्दजी नाहटा ने 'राजस्थान भारती', पृ० ८३ में लिखा है कि "सं० १६६६ लिखित महत्त्वपूर्ण गुटका हमारे संग्रह में खरीद करके संग्रह कर लिया गया है।'

पुष्पिका—इति राजा बीसलदे रास राजमती च्यारे-खण्ड संपूर्ण भवति। संवत १६६६ वर्षे फागुण वदि १ भौमे लिषतं फूलषेड़ा मध्ये राज्य श्री षीची राजचंदजी राज्ये। शुभ भवतु।

आदि—श्री गुरुभ्योनमः। हंसवाहण मृगलोचनी नारि। सीस समारइ दिन गिणइ। लिया सिरजइ उलिगाणा घरी नारि। जाई बीहाउड झूरिती ॥ १॥ गौरिका नंदन त्रिभुवन सार ॥ नाद वेदा थारइ उदिर भंडार ॥ कर जोड़ नरपति कहई ॥ मूसा बाहन तिलकसंदूर ॥ एक दन्तउ मुख झलमलई। जाणिक रोहणीउ नयर सूर ॥

अन्त—जूं तारायण मिलियो चंद। गोवल माहि मिलइ ज्यूं गोव्यन्द। ज्यूं उलगाणइ घरी मोहयो। गढ़ि उलिगांणइं कीधो छो बास। मन का मनोरथ पूरव्या। भणइं सुणइं तिणि पूज्यो आस ॥

रचनातिथि—बारह से बहोत्तरां हाँ मँझारि। जेठ बदी नवमी बुधवारि ॥ "नाल्ह" रसायण आरंभइ। सारदा तुठि ब्रह्म-कुमारि। कासमीरां-मुख-मण्डणी। रास प्रगासौं बीसल दे राइ।

टि०—यही प्रति नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हुई है :—

[ ३ ] नाम—*श्री बीसलदे रास*। कागज—देशी (हाथ का बना हुआ) आकार—११ इं०×५ इं०। पंक्तियाँ—१४ से १६ प्रत्येक पृष्ठ पर। पद्यसंख्या—२४६। प्रकार—पुराना; पूर्ण; साधारणतया ठीक। अक्षर—देव-

नागरी । सुरक्षित स्थान—बीकानेर में बड़े उपासरे के बृहद्—ज्ञानभण्डार के एक गुटके में ।

पुष्पिका—इति श्री बीसल दे रास संपूर्णः ॥ संवत १६८१ वर्षे भाद्र सुदि ६ धरणी सुत वासरे । लिपतं चतरा ॥ सुभंभवतु ॥

आदि—श्री गुरुतरो नमः ॥ राग केदारउ ॥ गउरि का नंदन त्रिभुवन सार । नाइ भेवइ थारइ उदर भण्डार । एक दंतउ मुख झलहलइ ! मूसका वाहण तिलक सिन्दूर । कर ज्योडि नरपति भणइं । जाणि कर रोहिणी जियउ तप्पउ सूर ।

अंत—कनक काया जिसी कुंकु की रोल । कठिन पयोहर हेम कचोल । केलगर भुजि सी आंगुली । धारउं उलगाणा पचइ नइ कड़िवाल । राणी राजा स्युं मिला । तिम पुणि संसारि मिलि ज्यो सउकोइ ।

रचना तिथि—नहीं है ।

[ ४ ] *यहप्रति बालोतरा* ( जोधपुर राज्य ) के भावहर्षीय खरतरगच्छ भण्डार में है । इसकी पत्र संख्या ४२ और छंद संख्या २४८ है । इसका लेखन काल सं० १६८५ है । इसमें रचना काल "संवत सहस तिउतरइ" दिया है ।

[ ५ ] यह प्रति जैसलमेर में वृद्धिचन्द जी के संग्रह में सुरक्षित है । १४ पत्रों की इस प्रति में २४२ पद्य हैं । रचना काल का उल्लेख नहीं है । केवल श्रा० सु० ५ रो, का उल्लेख है । प्रति सं० १७१२ की लिखित है ।

[ ६ ] नाम *वीसलदेव रास* । कागज—देशी ( हाथ का बना हुआ ) । पत्र—३० पृष्ठ दोनों तरफ लिखे हुए । आकार--१० इं० × ४½ इं० । पंक्तियाँ--११ पंक्तियाँ प्रत्येक पृष्ठ पर । पद्य संख्या--२१६, चार खण्डों में क्रमानुसार ३३, ३९, १०२ और ४१ छन्द हैं । प्रकार—पुराना; अच्छी हालत में, पूर्ण ।

लिपि—देवनागरी अक्षर। सुरक्षित स्थान—अभय जैन भण्डार, बीकानेर।

पुष्पिका—संवत् १७२४ वर्षे मगथशिर वदि १५।

[ गुप्त : सं० समूह नं० १६, संकेत प्र० ]

आरम्भ—मुंनम श्रीजिनाय ॥ गवरी का नंदन त्रिभोवन सार। नाववेदां थारो उदरि भण्डार। कर ज्योडी नाहलो कवि। मूनांका वाहण तिलक सींदूर। एक दांता मुषक मलि। ज्यांण कि रोहणी इउं तपे सूर। सुवण मोहो वर कामिणी। हंस गमणि मृगालोचणी नारि। सीस समारि दिन गणै। साधण उभीछि राज्य दुयार। नाह न देषि चिहूदिसा। किण सरज्यो उलगाणा की नारि। तो ज्याय दीहाडो सूरतां ॥

अन्त—गज्यगमणी मृगाछोचणी नारि। सेकि संभारि दिन गणै। साधण उभीछै कीह दुयारि। नाह न देषूं चिहू दिशा। किण कोउ हो उलगांणा को नारि। ता जाय दीहाडा सूरता ॥

रचना-तिथि—संवत् बार बारोंतरा मझारि। ज्येठवदी नवमी बुधवार। नाहल रसायण आरंभ्यो। सारदा तुठी छै ब्रह्मकुमार। कास मीरां मूषक मंडणी। रास परगांस सूं वीसलराय।

[ गुप्त : पं० समूह नं० ६, संकेत "की०" ]

[ ७ ] नाम—*वीसलदेव रासो*! कागज—देशी (हाथ का बना हुआ)। पत्र—३० पत्र दोनों ओर लिखे हुए। आकार—१० इं० × ४$\frac{1}{4}$ इं०। पंक्तियाँ—११ पंक्तियाँ प्रत्येक पृष्ठ पर। छंद संख्या—२४८ पद। प्रकार—पुराना, अंतिम पत्र तथा अन्य पत्रों के किनारे सुसज्जित। पूर्ण। अक्षर—देवनागरी लिपि। सुरक्षित स्थान—अभयजैन भण्डार, बीकानेर।

पुष्पिका—संवत् १७३७ वर्षे ज्येष्ठ सुदि १० दिने। लिषितं पंडित कीर्त्ति विलास गणिना। साध्वी राजलषमी तत्शिष्यणी सुमतिलषमी तत्शिष्यणी प्रेम लक्ष्मी पठनार्थम् ॥

आरम्भ—गवरिका नंदनत्रिभुवन सार । नाद भेदइ थारइ उदर भण्डार । एक दंतउ मुषिक लहलइ । मूसका वाहण तिलक सिंदूर । कर ज्गोडी नरपति भणइ । ज्याणि-करि रोहिणीइयाँ तप्पउ सूर ।। १ ।। कई भवण न देषुं रिरवितलइ । हंस गमणी मृगालोचनी नारि । सीस समारइ दिन गणइ । ततषिण कुमीलइ साजु दुवारि । नाह नइ ज्योवइ रे चिहुँ दिसइ । कांइ सिरज्यी उलगांणा री नारि । ज्याइ दिहाइ उरे सूरता । एक पग आंगणी एक पग द्वार ।

अंत—कनक काया जिसि कूं कूं रोल । कठिन पयोहर हेम कचोल । केलि-गरभसी कूं अली । घाइलज्यूं घण मोडइ नाक । कंठि मोडइ चालइ गोरडी । उणकी विरह वेदना नां लहइ कोइ । जिउं राजा राणी मिल्या । ल्यूं नाल्ह कहइ मिलिज्यो सहु कोइ ।।

रचना तिथि—संवत् सहस सत्तिहतरइ ज्याणि । नाल्हकबीसर सरसीय वाणि । गुण गूथ्यां चउहाणका । सुकुल पषपंचमो श्रावण मास । रोहिणी नक्षत्र सोहामणउ । सुदिन गिण जोइसी जोडियउ रास ।

[ ८ ] यह प्रति बीकानेर के अनूप संस्कृत लाइब्रेरी के एक गुटके में है । इसकी पद्यसंख्या २४१ है । रचना तिथि सहस सत्तहत्तरइ श्रा० सु० ५ रो० का उल्लेख है । गुटका सं० १७४२ फा० सु० १३ को कविवर समयसुन्दर की परम्परा के ज्ञानतिलक की लिखित है । उसे गोरमल्ला पंचायण सुत जगजीवण के पठनार्थ लिखवाया गया है । प्रारम्भ के दो पत्र प्राप्त नहीं हैं ।

[ गुप्त : पं० समूह नं० ९, संकेत "र०" ]

[ ९ ] नाम—*बीसलदे रास* । कागज—देशी (हाथ का बना हुआ) पत्र—४५ पत्र दोनों तरफ लिखे हुए । आकार—६ इं०×५$\frac{१}{२}$ इं० । पंक्तियाँ —११ से १५ तक प्रत्येक पृष्ठ पर । पद्य-संख्या—२४८ । प्रकार—पुराना; अच्छी अवस्था; पूर्ण । अक्षर—देवनागरी । सुरक्षित स्थान—अभय जैन भण्डार बीकानेर ।

पुष्पिका—इतिश्री सिंगार वर्णन, वीसलदे रास समाप्तं ।। संवत् १७५१ वर्षे चैत्र वदि ४ शुक्रवारं ।। रिणी मध्ये वा० श्री ५ कनक माणिक्ये गणिजी तच्छिष्यं रतनशेखरेण लिपि चक्रे वेगवाणी साह श्री अभेराज जी वाचनार्थं ।। श्री रस्तु ।। कल्याणमस्तु ।।

आरम्भ—गवरिका नंदन त्रिभुवन सार । नाद भेदइ थारे उदरि भण्डार । एक दंतउ मुषि झलहले । मूषक वाहण तिलक सिन्दूर । कर जोडी नरपति भणें । जाणि करि रोहिणी भुं तप्यों सूर ।। १ ।। कई भुवणन देखइ रवि तलें ।

अंत—कनक काया जिसी कूंको रोल । कठिन पयोहर हेमा कचोल । केलि गरभसी कु अली थाइल जि बर चै नाव । मोडि कडि चालें गोरडी । उभि की विर बेटन ना सहै कोई । जुं राजा राणी मिल्या । ज्युं नाल्ह कहै मिलज्यौ सहु कोइ ।।

रचना-तिथि—संवत् सहस त्रिहन्तरे जाणि । नाल्ह कविसर कही अमृत वाणि । गुण गुथ्यां चउहाण का । सुकल पक्ष पंचमी श्रावण मास । रोहिणी नक्षत्र सोहामणो । सो दिनं जोई जोइसी जाड्यो रास ।।

[ १० ] यह प्रति बीकानेर के जयचन्द जी के भण्डार में विद्यमान है । इसमें कुल ३१ पत्र हैं । इसका लेखन काल चैत्र सुदि १३ शनिवार संवत् १७५६ है । इसके अनुसार ग्रन्थ का रचना काल १०३३ है ।

[ ११ ] यह प्रति बीकानेर के खरतर आचार्य शाखा के भण्डार में है । इसमें २५ पत्रें हैं और २६१ पद्य हैं । रचना सूचक पद्य में "सहस सत्तहत्तरइ श्रा० सु० ५ रो" का उल्लेख है । प्रति सं० १७७३ का० ब० ११ तेजरासर में अभयधर्म की लिखित है ।

[ १२ ] नाम—*वीसलदे चौहाण को रास* । कागज—देशी ( हाथ का बना हुआ ) पत्रे—पच्चीस दोनों तरफ लिखे हुए । आकार—८३/४ इं० X ४ इं० । पंक्तियाँ—१३ से १४ पंक्तियाँ प्रत्येक पृष्ठ पर । पद्यसंख्या—२४२

छंद। प्रकार—पुराना; पूर्ण साधारणतया ठीक। अक्षर—देवनागरी। सुरक्षित स्थान—एसियाटिक सोसाइटी पुस्तकालय (बंगाल) कलकत्ता।

पुष्पिका = इति श्रीवीसलदे चौहाण को रास समाप्तं। संवत् १७७५ का माल श्री मालव पुरा मध्ये लिष्यते। कृष्ण पथ। अदीतवार साधवी कन कांजी लिषायो।।

आरम्भ—श्री गणेशायनमः गउरिका नंदन त्रिभुवन सार। नाद भेदइ थारइ उदर भण्डार। एक दंतउ मूषे झलहलइ। मुषकउ वाहण तिलक सिंदूर। कर जोडी नरपति भणइ। जांणि करि रोहिणी जिउंतपइ सूर। भवयन देखुरे रवितलइ।

अन्त—कनक काया जिसी कुं कुं रोल। कठिन पयोहर हेम कचोल। केलि गरभ रूप की आली। धीरन ज्युंधण मोडै नाक। कडि मोडै धलै गोरडी। उलिका विरह वेदना न लहै कोइ। ज्यु राजा राणी मिल्यौ। त्युं नाल्ह कहै मिलिज्यो सभु कोइ।।

रचनातिथि—संवत् सहसतिहुत्तरै जांणि। नाल्ह कवीसर सरसीय वांणी। गुण गुथ्या चौहाण का। सुकल पक्ष पंचमी श्रावण मास। रोहिणी नक्षत्र सोहामणौ। सुदिन लिणि जोडांयो रास।।

[ १३ ] यह प्रति बीकानेर के कृपाचन्द सूरि—ज्ञान भण्डार में (बस्ता नं० ४२) है। इसकी पत्र संख्या १४ है, और छंद-संख्या २४० है। इसका लेखन समय फागुन बदि ९ शनिवार सं० १७८६ है। यह प्रति सोझत (मारवाड़ा राज्य) में लिखी गई थी। इसमें ग्रन्थ का रचना काल 'संवत् सत्तरतिहोत्तरै' दिया गया है, जो संभवतः 'सहस तिहोत्तरे' के बदले भूल से लिख दिया गया है, क्योंकि १७७३ के पहले की लिखी हुई तो अनेक प्रतियाँ प्राप्त हो चुकी हैं।"

[ १४ ] यह प्रति बीकानेर के खरतर आचार्य शाखा के भण्डार में १६ पत्रों की है। इसकी पद्य संख्या

२४७ है। रचना काल १०७३ लिखा हुआ है। प्रति सं० १८२६ बीकानेर में 'रतनसी' लिखित है।

[ गुप्त : पं० समूह नं० ७, संकेत "पु०" ]

[ १५ ] नाम—*वीसलदे रास*। कागज—देशी (हाथ का बना हुआ)। पत्रे—पचीस। दोनों तरफ लिखे हुए आकार—९$\frac{1}{4}$ इं० × ४$\frac{1}{4}$ इं०। पंक्तियाँ—दस से १३ पंक्तियाँ प्रत्येक पृष्ठ पर। छंद संख्या—२४६। प्रकार—पुराना फटा हुआ, पूर्ण। अक्षर—देवनागरी। सुरक्षित स्थान—अभय जैन भण्डार (बीकानेर)।

पुष्पिका—नहीं है। आदि-अंत तथा बीच के कई पत्र दूसरे व्यक्ति के लिखे जान पड़ते हैं।

आरम्भ—गणेशायनमः। गवरिका नन्दन त्रिभुवन सार। नाद भेदइ थारइ उदर भण्डार। एक दंतउ मुषिक खलहलइ। मूसका वाहण तिलक सिंदूर। कर जोडी नरपति भणइं। जाणि करि रोहिणी ज्युं तप्पइ सूर॥

अंत—कनक काया जिसी कूं कूं रोल। कठिन पयोहर हेम कचोल। केलि गरभ सी कूंअंली। चाइल ज्युं घण मोडइ नाक। कडि मोडइ चालइ गोरडी। उणकी विरह वेदना ना लहइ कोइ। जिउं राजा रांणी मिल्या। स्युं नाल्ह कहइ मिलिज्यो सहु कोइ॥

रचना-तिथि—संवत् सहस सतिहत्तरइ जांणि। नाल्ह कविसर सरसीय वांणि। गुण गुंथ्या चउहाण का। सुकुल पख पंचमी श्रावण मास। रोहिणी नषित्र सोहामणौ सुदिन गिण जोइसी जोडियउ रास।

प्रं०—यह प्रति सं० १७३७ वाली प्रति से मिलती-जुलती है।

[ गुप्त : पं० समूह नं० ४, संकेत "आ०" ]

[ १६ ] नाम—*वीसलदे रास*। कागज—देशी (हाथ का बना हुआ) पत्रे—आठ। एक पत्र श्री नाहटा जी द्वारा जोड़ा हुआ। आकार—६$\frac{1}{3}$ इं० × ४$\frac{1}{2}$ इं०। पंक्तियाँ-बीस पंक्तियाँ प्रत्येक पृष्ठ पर छंद। संख्या-२४७।

प्रकार—पूर्ण, पुरानी साधारणतया ठीक। अक्षर—देवनागरी। सुरक्षित-स्थान अभय जैन भण्डार (बीकानेर) पुष्पिका नहीं है।

आरम्भ—गवरिका नंदन त्रिभुवन सार। नाद वेदइ थारा उदर भण्डार। एक दंतउ मुषिक फलहलइ। मुसाको वोहण तिलक सिंदूर। कर ज्योडि नरपति भणइ। जाणिकि रोहणी ज्युं तप्यौ सूर।

अंत—कनक काया जिसी कुं कुं रोल। कनक पयोहर हेम क चोल। केलि गरभसि कूं अली। घाइल घण मोडइ नाक। कडि मोडे चाले गोरडी। उणिक विरह वेदना न बिलहे कोइ। ज्युं राजा राणी मिलया। त्युं नाल्ह कहे मिलिज्यौ सऊकोइ।

रचना तिथि—संवत् सहसतिहरे जांणि। नाल्ह कवी सरस सरसीव वांणि। गुण गुथ्या चऊ ओल का। सुकल पष्य पंचमी श्रावण मास। रोहिणी नक्षत्र सोहामणउ। सुदिन गिण जोडीयो रासि।

[ १७ ] वीसलदेव चहुआण रास। कागज—देशी (हाथ का बना हुआ) अक्षर—देवनागरी। छंद-संख्या—३१० । सुरक्षित स्थान—खरतरगच्छ भण्डार (कोटा)। पुष्पिका नहीं है।

आरम्भ—गवरिका नंदन त्रिभुवन सार। नाद भेदइ थारइ उदर भण्डार। एक दंत मुखि झलहलइ। मूसक वाहण तिलक सिंदूर। कर जोडी नरपति भणइ। जाणकि रोहिणी जिउं तप्पउ सूर।

अंत—कनक कानि सउं कुंकुम रोल। कठिन पयोहर हेम कचोल। केलि-गरभ जिसी कूंअली। घाइल जिम घण मोडइ जी नाक। कडिम मोडि चाइल गोरडी। उपजइ विरह की वेदना नहिं लखइ कोइ। राणी हो राजा जिमि मिल्या। तिम नल्ह कहे मिलज्यौ सहु कोइ।

रचना-तिथि—संवत् तेरसतोतरे जाणि । नवह कविसर सरसीय वाणि । गुणगुथ्या चहुआण का । सुक पंचमी नइ श्रावण मास । हस्त नक्षत्र रविवार सुं शुभ दि जोसी से जोडियउ रास ।

[ गुप्त : पं० समूह नं० २, संकेत "मू०" ]

[१८] नाम—*वीसलदे रास* । कागज—देशी का बना हुआ । पत्रे—दो दोनों तरफ लिखे हुए । आकार—१० इं० × ४½ इं० । पंक्तियाँ—सत्तरह प्रत्येक पृष्ठ पर । छन्द-संख्या—३८ छन्द पूरे तथा ३९ वें का प्रारम्भ । प्रकार—पुराना, प्रायः ठीक, अपूर्ण । अक्षर—देवनागरी । सुरक्षित स्थान—अभय जैन भण्डार ( बीकानेर ) । पुष्पिका नहीं है ।

आरम्भ—गउरि का नन्दन त्रिभुवन सार । नाद भेदइ थारइ उदर भण्डार । एक दन्तो मुषिक झलहलई । मूंसाको वाहण तिलक सिंदूर । कर ज्योडो नरपति भणों । ज्याण करि रोहणी जिमम तप्यो सूर ।

अन्त—हरिण मरणि समर्थ्यो जगंनाथ । आइ पऊतओ त्रिभुवन नाथ । सष चक्र गदाधरो । मोसि हे हिरण जी मनइ विचारि । हेतूं विवरण पाइज्ये । स्वामी पूरब देस को ज्यनम निवार । ३८ । पूरब देस को कब कुंजोक । पान कू...... ।

[ गुप्त : पं० समूह नं० ८, संकेत 'मा' ]

[ १९ ] नाम—*वीसल देव रासो* । कागज—देशी ( हाथ का बना हुआ ) पत्रे—ग्यारह दोनों तरफ लिखे हुए । आकार—१०½ इं० × ४½ इं० । पंक्तियां—सत्रह प्रत्येक पृष्ठ पर । छन्द संख्या—४० तथा एक अपूर्ण । प्रकार—पुराना । अपूर्ण । साधारणतया ठीक । अक्षर—देवनागरी । सुरक्षित स्थान—अभय जैन भण्डार ( बीकानेर ) पुष्पिका नहीं है ।

आरम्भ—गवरिका नन्दन त्रिभुवन सार । नाद भेदइ थारइ उदरि भंडार । एक दंतउ मुषिक झलहलइ । मूसका वाहण तिलक सिन्दूर । कर जोडो नरपति भणइ । जाण करि रोहिणी ज्युं तपइ सूर ॥१॥

अंत—नवगो सवगी चूवगी। अतिरंग थोगा बोलो-यउ दीपि। सही सहेलो चमक्यउ हीयउ। म्हाकउ मइख कंचूमउ भीनउछइ कोकि ॥४०॥ मुलकइ हसइ.........

गुप्त : पं० मूह नं० ५, ंकेत "चा०" ]

[ २० ] नाम—*वीसल दे रास*। कागज—देशी (हाथ का बना हुआ) पत्र-चार (दोनों तरफ लिखेहुए) आकार १०इं० × ४इं०। पंक्तियां-२७ से २८ प्रत्येक पृष्ठ पर। छंद संख्या-२४७ छन्द। प्रकार-पुराना; पूर्ण; साधारणतया ठीक। अक्षर—देवनागरी। ( बहुत छोटे-छोटे लिखे हुए ) सुरक्षित स्थान—अभय जैन भण्डार (बीकानेर)। इति वीसलदे रासः। समाप्तः।

आरम्भ—गवरिका नन्दन त्रिभुवन सार। नाद भेदइं थारा उदर भण्डार। एक दंतउ मुषिक फलहलइ। मुषक बाहण तिलक सिन्दूर। कर जोडी नरपति भणइ। आंखिकि रोहिणी ज्युं तप्यो सूर।

अंत—धन्य हो पंडिया धन्य हो राइ। धन्य हो जोगी दरसणी। वेग मेलावउ धण कउ नाह। धन्य दिहाडो आज कउ। रांणी राजमती मिलयउ वीसल राउ। ॥४५॥ कनक पयोहर हेम कचोल। केलि गरभेसी कूं अलो। धाइल ज्यूं धण मोडइ नाक। कडि मोडइ चाले गोरडी। डणि की विरह वेदना नवि लहइ कोइ। ज्यू राजा राणी मिल्या। त्युं नाल्ह कहे मिलज्यो सऊ कोइ ॥

रचना तिथि—संवत् सहस तिहत्तरइ जाणि। नाल्ह कवि सरसीय वांणि। गुण गुथ्या आंण का। सुकल पञ्चमी श्रावण मास। रोहिणी नक्षत्र सोहामणउ। सुदिन गिण जोडीयो रास।

[ २१ ] नाम—*विसलदे रास*। कागज—देशी ( हाथ का बना हुआ ) पत्रे—अट्ठारह ( दोनों तरफ लिखे हुए )। आकार—१०½ इं० × ४½ इं०। पंक्तियाँ—तेरह पंक्तियाँ प्रत्येक पृष्ठ पर। छंद संख्या—२५० छन्द तथा दो पंक्तियाँ अतिरिक्त। प्रकार—पुराना। अपूर्ण।

अक्षर—देवनागरी। सुरक्षित स्थान—अभय जैन भण्डार ( बीकानेर )

पुष्पिका......नहीं है।

आरम्भ—श्री वीतरागायनमः । गवरि का नन्दन त्रिभुवन सार। नाद भेद थारे उदर भण्डार । एक दंतौ झलहले। मुंसा की वाहण तिलक सिन्दूर। कर जोडी नरपति भणौ। जाणि केरि रोहिणी ज्यूं तप्यौ सूर।

अन्त—बार बरसा भरि आवियोनाह। हीयडे हांथ अंक भरि बाह। अबलो सबलो करे चुंबणी । अति रति भरि राजा लीयउ ठीय । सही सहेली चमकी हुओ। डां को भैरव को कंचउ चौको भीनो छै पीक ॥ २८० ॥ हठ हठ हंसे आलिंगन देइ । पलिंग बैसे नै पांन न लेइ । कुभी देहू उलभणा । तोडे छै आंगुली मोडे छै बाह । पुरुष भरोसो ना करूं। बरस बारह......

[ २२ ] यह प्रति बीकानेर स्थित चतुर्भुज जो के ग्रन्थ-संग्रह में ( बस्ता नं० ५ ) है। इसमें १७ पत्रे हैं। ग्रन्थ का रचना काल "सहस तिहुतरे दिया" हुआ है। यह उन्नीसवीं शताब्दी की लिखी हुई है।

[ २३ ] यह प्रति बीकानेर के दान सागर भण्डार में ( बस्ता नं०१४) है। इसमें पत्र संख्या २३ और छन्द संख्या २८० है । प्रत्येक पृष्ठ में ११ पंक्ति और प्रति पंक्ति में ३५ से ४० अक्षर हैं। यह प्रति भी १६ वीं शताब्दी की लिखी हुई है। इसमें भी रचना काल 'सहस तिहुत्तरे' है।

[ २४ ] यह प्रति जैसलमेर के जैन भद्र सूरि ज्ञान भण्डार में है। इसकी पत्र संख्या ११ तथा पद्य संख्या २०२ है। रचना काल सूचक पद्य नहीं है। प्रति के प्रथम पत्र का लेखन भिन्न है, अवशेष पत्र १७ वीं के लिखित प्रतीत होते हैं—

[ २५ ] यह प्रति जैसलमेर के बड़ा भण्डार—नं० ५१९ में है। इसमें २८३ पद्य हैं। रचना काल 'सहस तिहुत्तरे' दिया गया है।

[ २६ ] यह प्रति बीकानेर के बड़े उपासरे के महरचन्द भण्डार में है। इसका अन्तिम पन्ना (नं० १३) पहले प्राप्त हुआ था लेकिन श्री नाहटा जी के कथनानुसार इसके अन्य १२ पन्ने कलकत्ते के राय बद्री दास म्यूजियम में प्राप्त हो गये। इस प्रकार यह प्रति भी पूर्ण हो गई। इसमें छंदसंख्या ३१० है। प्रत्येक पृष्ठ पर १८ पंक्तियाँ तथा प्रति पंक्ति में ६० से ६४ तक अक्षर हैं। अन्त में "ग्रन्था ग्रन्थ ४००" लिखा है। इसमें रचना सूचक पद्य 'कोटा' के भण्डार की प्रति के समान नहीं है।

[ २७ ] नाम *विसलदे चौहांण को रास*। कागज-देशी ( हाथ का बना हुआ ) दोनों तरफ लिखे हुए। पत्र... ...११। आकार १० इं० X ४ इं० पंक्तियां......तेरह, प्रत्येक पृष्ठ पर। छंद संख्या—२४२; प्रकार—नया। पूर्ण साधारणतया ठीक। अक्षर—देवनागरी। सुरक्षित स्थान—एसियाटिक सोसाइटी ( बंगाल ) कलकत्ता।

पुष्पिका—इतिश्री विसलदे चौहाण को रास समाप्तं संवत् १७०५ का साल श्री मालपुरा मध्ये लिख्यते कृष्ण पक्ष अदीतवार साध्वी कनकांनी लिषायो। लिखतं जोधपुर मध्ये साधु बाला रामेण विक्रम संवत् १९७२ फागुन सुदि ४ शनिवासरे। ईस्वी सन् १९१५ के बुअरी तारीख २० जैनाचार्य श्री धर्म बिजय जी की भेजी हुई पुस्तक से लिखी।

आदि—गउरि का नन्द त्रिभुवन सार। नाद भेदइ धारइ उदर भण्डार। एक दंतउ मुषिक सलहलइ। मुसकउ बाहण तिलक सिन्दूर। कर जोडी नरपति भणइ। जाणि करि रोहिणी जिउं तपइ सूर।

अन्त—कनक काया जिसी कूं कूं रोल। कठिन पयोहर हेम क चोल। केलि गरभ रूप की आगली। बाइल ज्युं घण मोडै नाक। कदि मोडै थालै गोरडी। उणि की विरह वेदना न लहै कोइ। ज्युं राजा राणी मिल्या। त्युं नाल्ह कहै मिलिज्यो सहु कोइ।

रचना तिथि—संवत् सहस तिहुतरै जांणि । नाल्ह कवीसर सरसीय वांणी। गुण गूथ्या चौहाण का। सुकल पक्ष पञ्चमी श्रावण मास । रोहिणी नक्षत्र सोहामणो। सुदिन गिणी जोडीयो रास ।

द्र:—यह प्रति बारह नं० की प्रति की नकल जान पड़ती है ।

उपर्युक्त प्रतियों में से १६ प्रतियों के आधार पर डा० माता प्रसाद जी गुप्त ने इसका एक सुन्दर सम्पादित संस्करण हिन्दी परिषद् विश्वविद्यालय, प्रयाग से सन् १९५३ में प्रकाशित करवाया है। इस संस्करण में उन्होंने प्रतियों को उनके पाठसाम्य के आधार पर पाँच समूहों में रखा है। प्रत्येक समूह का नामकरण उन्होंने उस समूह में रखे गये प्रथम ग्रन्थ के संकेताक्षर से किया है। इन पांचों समूहों की प्रतियाँ डा० गुप्त के मतानुसार कम से कम पांच पाठ प्रस्तुत करती हैं जिनमें मिलाकर......लगभग पौने पाँच सौ छन्द आते हैं। इन छन्दों में से केवल २७, २८ प्रतिशत छन्द उनके मतानुसार प्रामाणिक माने जा सकते हैं। प्रत्येक समूह के छन्दों की संख्या की तुलना अन्य समूह के छन्दों की संख्या से करते हुए डा० गुप्त ने कुल १२८ छन्दों को ही प्रामाणिक माना है। इनमें से भी ११८ छन्द तो तीन समूहों में पाये जाते हैं तथा दस ऐसे हैं जो तीन समूहों में से केवल दो ही में पाये जाते हैं।[1]

इस संपादित प्रति के पहले की एक और संपादित प्रति है जिसका उल्लेख किया जा चुका है। उस प्रति में किसी भी हस्तलिखित प्रति का तुलनात्मक अध्ययन नहीं प्रस्तुत किया गया है। केवल जयपुर में प्राप्त सं० १६६१ में लिखी गई प्रति का संपादन कर दिया गया है।—

श्री अगरचन्द जी नाहटा ने प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों का उल्लेख करते हुए उसके दो रूपान्तरों का वर्णन किया है और बताया है कि दोनों रूपान्तरों में काफी भिन्नता पायी जाती है।[2]

प्रस्तुत संपादन कार्य डा० गुप्त के कार्य को मान्यता देते हुए भी अपने ढंग से किया गया है। डा० गुप्त ने आज तक की प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों में से सबसे पुरानी प्रति सं० १६३३ वाली को भी आधार नहीं माना है। उन्होंने उसमें आये हुए छन्दों में से सिर्फ उन्हीं को प्रामाणिक माना है जो उनके द्वारा विभाजित समूहों में से प्रायः सभी समूह की प्रतियों में प्राप्य हैं। लेकिन इस

---

(१) बीसलदेवरासो...सं० डा० माता प्रसाद गुप्त...पृ० ४८

(२) राजस्थानी... (त्रैमासिक पत्रिका) भाग ३, अंक—३ पृ० १८।

बात को मान लेने पर सबसे टेढ़ा प्रश्न यह उठ खड़ा होता है कि सं० १६३३ वाली प्रति में आये हुए छन्दों से जिनकी संख्या २४६ है, केवल १२८ को ही कैसे प्रामाणिक मान लिया जाय। चूँकि यह प्रति आज तक की प्राप्य प्रतियों में सबसे प्राचीन है, इसलिये उचित तो यही होगा कि इसके सभी छन्दों को प्रामाणिक माना जाय। इसके बाद वाली प्रतियों में जो छन्द इसके नहीं प्राप्य हैं, उनके सम्बन्ध में ऐसा समझना होगा कि परवर्ती लेखकों को वे छन्द या तो ज्ञात नहीं हुए अथवा ज्ञात होते हुए भी उन लेखकों ने उन छन्दों को छोड़ दिया हो और स्वरचित छन्दों को जोड़ दिया हो।

इसी आधार को ध्यान में रखकर सं० १६३३ की लिखी हुई प्रति को प्रामाणिक माना गया है। उसमें आये हुए सभी छन्दों को प्रामाणिक मानते हुए प्राप्य २७ प्रतियों को उनकी पुष्पिका के आधार पर चार समूहों में विभाजित किया गया है। कार्य की सुविधा के लिये इन चार समूहों का संकेताक्षर क्रमशः 'अ', 'आ', 'क' एवं 'ख' रखा गया है।

(१) 'अ' समूह—इस समूह में उन सभी प्रतियों को स्थान दिया गया है, जो १७ वीं शताब्दी की हैं। परिचय पत्र में इनकी संख्या १ से ४ तक है।

(२) 'आ' समूह—इस समूह में वे सभी प्रतियाँ रखी हैं, जो अट्ठारहवीं शताब्दी की हैं, तथा जिनकी संख्या परिचय पत्र में ५ से १३ तक है।

(३) 'क' समूह—यह समूह १९ वीं शताब्दी की लिखित प्रतियों का है। इसमें परिचय पत्र के अनुसार केवल एक प्रति सं० १४ वाली आती है।

(४) 'ख' समूह—इस समूह में परिचय पत्र की शेष संख्या १५ से २७ तक की वे सभी प्रतियाँ हैं, जिनका लेखन काल ज्ञात नहीं है।

उपर्युक्त विभाजन के अनुसार (१) 'अ' समूह में डा० गुप्त को 'द०' समूह की नं० ३ संकेताक्षर 'पं०' तथा 'सां०' समूह की नं० १५ संकेताक्षर 'सं०' वाली प्रतियाँ आती हैं। ( २ ) 'आ' समूह में डा० गुप्त की 'सं०' समूह की नं० १६ संकेत 'प्र०', पं० समूह की नं०–६ संकेत 'की०' तथा नं० ८ संकेत 'र०' वाली प्रतियाँ आती हैं। (३) 'क' समूह में डा० गुप्त के की कोई प्रति नहीं आती। (४) 'ख' समूह में डा० गुप्त के 'पं०' समूह नं० ६

संकेत 'प्र०' नं० ४ संकेत 'श्रा' नं० ८ संकेत 'श्या०', नं० ५ संकेत 'चा०' तथा 'म०' समूह की नं० २ संकेत 'म्' प्रतियाँ आती हैं। इस तुलनात्मक अध्ययन से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है कि उपर्युक्त चार समूहों में से तीन समूहों में डा० गुप्त के दो समूहों 'पं०' अथवा सं० समूह की कोई न कोई प्रति अवश्य है। विशेष रूप से 'अ' समूह में तो डा० गुप्त के 'पं०' तथा 'सं०' दोनों समूहों की प्रतियाँ हैं। डा० गुप्त के 'पं०' समूहकी नं०-३ प्रति सं० १६३३ की लिखी हुई है जिसे यहाँ 'अ०' समूह में रखा गया है; क्योंकि कथित विभाजन के अनुसार यह प्रति १७ वीं शताब्दी की है और सबसे प्राचीन प्राप्य प्रति है। डा० गुप्त ने अन्य जिन प्रतियों को इस समूह (पं० समूह) में रखा है उनमें से सं० १७३७ और १७५१ वाली प्रतियों को छोड़कर जिन्हें यहाँ 'आ' समूह में १८ वीं शताब्दी की होने के कारण रखा गया है, प्रायः किसी भी प्रति में पुष्पिका नहीं है। ऐसी प्रतियों की संख्या इस समूह में पाँच है। जिन प्रतियों में पुष्पिका नहीं है, वे किस संवत् में लिखी गईं यह एक विवादात्मक प्रश्न है। अतएव उनको इस संपादन कार्य में विशेष स्थान नहीं दिया गया है। पुष्पिका के अभाव के कारण ही ये प्रतियाँ यहाँ 'ख' समूह में रखी गई हैं। डा० गुप्त के 'सं०' समूह की १६६९ वाली प्रति (नं० १५) भी कथित 'अ' समूह में आती है जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। 'सं०' समूह में डा० गुप्त ने इस प्रति के अतिरिक्त एक और प्रति को रखा है जिसकी संख्या १६ है तथा संकेताक्षर 'प्र०' है। इस प्रति को यहाँ 'आ०' समूह में रखा गया है क्योंकि यह संवत् १७२४ की लिखी है। इन दोनों समूहों के अतिरिक्त डा० गुप्त के तीन अन्य समूहों की प्रतियों में से 'म०' समूह की एक प्रति नं २ संकेताक्षर 'म०' यहाँ 'ख' समूह में रखी गई है क्योंकि इसमें भी पुष्पिका का अभाव है। इस 'म०' समूह की एक प्रति और है जिसका पूर्ण विवरण प्राप्त न होने के कारण न तो उसका परिचय-पत्र में ही उल्लेख किया है और न उसे किसी समूह स्थान ही दिया गया है। दूसरा समूह "नं०" समूह है जिसकी केवल एक प्रति प्राप्य है और वह भी किसी अन्य प्राचीन प्रति की प्रतिलिपि है तथा पुष्पिका का अभाव है, साथ ही अनेक त्रुटियाँ भी हैं[1]। अतएव इसका तथा तीसरे समूह 'अ०' में आने वाली दो प्रतियों का भी उल्लेख इन्हीं कारणों में से किसी एक के कारण परिचय-पत्र में नहीं किया गया है।

कथित समूहों तथा डा० गुप्त के समूहों के तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात्

---

(१) वीसलदेव रासो—सं०—माताप्रसाद गुप्त—पृ० ३—१२।

इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि 'बीसलदेव रासो' की प्रतियों के दो रूपान्तर हैं।[1] एक तो वह जो चार खण्डों में विभक्त है और दूसरा वह जिसमें खंडों का विभाजन नहीं है। इन रूपान्तरों में उपर्युक्त भिन्नता के अतिरिक्त और भी कुछ विशेष बातें द्रष्टव्य हैं।

## दोनों रूपान्तरों की कुछ विशेषताएँ

| खण्डों में विभाजित प्रतियाँ:-- | खण्डों में अविभाजित प्रतियाँ :— |
|---|---|
| ( १ ) कथा चार खण्डों में समाप्त होती है। | ( १ ) केवल तीन खण्डों की कथा ही प्राप्य है। |
| ( २ ) माघ, कालिदास आदि पंडितों का नाम आता है। | ( २ ) इन नामों का अभाव है। |
| ( ३ ) उड़ीसा-यात्रा में साथ जाने वाले सरदारों के नाम गिनाये गए हैं। | ( ३ ) इन नामों का उल्लेख नहीं है। |
| ( ४ ) राजा के उड़ीसा जाने का मुहूर्त रानी ज्योतिषी से एक माह बाद कर देने को कहती है। | ( ४ ) रानी ज्योतिषी से चार माह बाद का मुहूर्त राजा को देने के लिए कहती है। |
| ( ५ ) वर खोजने के लिए जैसलमेर आदि जाने का विस्तृत वर्णन है। | ( ५ ) यह वर्णन इस रूपान्तर की प्रतियों में विस्तार से नहीं है। |
| ( ६ ) इस रूपान्तर की प्रतियों में रचनाकाल-सूचक पद्य ग्रन्थ के आदि में है। | ( ६ ) इस रूपान्तर में ग्रन्थ के शेष में रचना-सूचक पद्य आया है। |

ऊपर प्राप्य हस्तलिखित प्रतियों का विभाजन काल के अनुसार चार समूहों में किया गया है। प्रत्येक समूह की प्रत्येक प्रति उपर्युक्त दोनों रूपान्तरों में से किस रूपान्तर में आती है उसे निम्नरूप में स्पष्ट किया जा सकता है :—

| समूह | खण्डों में अविभाजित | खण्डों में विभाजित |
|---|---|---|
| 'अ' | संख्या १, ३, ४, | संख्या २ |
| 'आ' | ,, ५, ७, ८, ९. १०, ११, १२, १३, | ,, ६, |

---

( १ ) राजस्थानी—३रा भाग, अंक ३, पृ०-१८।

| समूह | खण्डों में अविभाजित | खण्डों में विभाजित |
| --- | --- | --- |
| 'क' | ,, १४, | ,, × |
| 'ख' | ,, १५, १६, १७, १८, १९, २०, २१, २२, २३, २४, २५, २६, २७। | ,, × |

विभिन्न समूहों के इस विश्लेषण द्वारा यही सिद्ध होता है कि खण्डों में अविभाजित रूपान्तर वाली प्रतियों में प्राचीनतम प्रति 'अ' समूह की संख्या एक वाली प्रति है, जो सं० १६३३ की लिखी हुई है तथा खण्डों में विभाजित रूपान्तर वाली प्रतियों में भी प्राचीनतम प्रति 'अ' समूह की संख्या २ वाली प्रति है जो सं०—१६६९ की लिखी हुई है। अतः इन्हीं दो प्रतियों की दोनों रूपान्तरों की प्रतिनिधि प्रति मान कर सम्पादन का कार्य किया गया है।

प्राप्य हस्तलिखित ग्रन्थों में एक बात और विचारणीय है। ग्रन्थ में कथित घटना का सम्बन्ध जैसलमेर, अजमेर तथा मालवा से है। लेकिन इन स्थानों में से किसी भी स्थान में उपयु'क्त प्रतियाँ नहीं लिखी गई। सम्पादन कार्य के लिए आधारित प्रथम रूपान्तर को प्रतिनिधि प्रति (१६३३) आगरा में लिखी गई है और द्वितीय रूपान्तर की प्रतिनिधि प्रति (१७६९) फूनखेड़ा में लिखी गई है। इसके अतिरिक्त १७४१ में रिणी, १७७३ में तेजरासर, १७७५ में मालवपुरा तथा १८२६ में बीकानेर में लिखी हुई प्रतियाँ हैं। अन्य प्रतियों में लेखन-स्थान का उल्लेख नहीं है। भविष्य में यदि कोई प्रति घटित स्थान की लिखी हुई प्राप्त हो सकी, तो विशेष महत्व की हो सकती है। घटना से सम्बन्धित स्थानीय कवि द्वारा, यदि नाल्ह कवि द्वारा कही गई घटना का वर्णन किया जाय तो निःसन्देह भाषा, ऐतिहासिक तत्व आदि में साम्य मिलेगा चाहे स्थानीय कवि द्वारा घटना का वर्णन शतियों के पश्चात् ही क्यों न हो।

## ग्रन्थ की रचना तिथि

अनेक विद्वानों ने ग्रन्थ की रचना-तिथि पर अपना-अपना मत विविध रूप से विवेचन करते हुए प्रकट किया है। सबसे पहले डा० श्यामसुन्दर दास ने इस विषय पर अपना मत प्रकट किया सन् १९०० की खोज रिपोर्ट में। वे कहते हैं कि "The author of the chronicle is Narapati Nalha as he gives the date of the composition of this book as Sami 1220. This is not the Vikram Era, for the 9th day of the dark half of Jaistha does not fall on Wednesday as mentioned in the book according

to the calculations of the Vikrama Era. The date of the composition of the book would therefore be in the year 1298 of the Christian era."[1]

लाला सीताराम बी० ए० ने सन् १९०० की खोज रिपोर्ट वाली प्रति पर निर्भर होकर ग्रन्थ की रचना-तिथि पर अपना विचार यों प्रकट किया कि "Nalha is not mentioned in the modern vernacular literature of Hindustan. According to Misrabandhu Vinod Nalha was a Raja & composed his Visaldeo Rasau in 1354 V. E corr sponding to A. D. The date of composition is given in the following lines:

"बारह सौ बहुत्तरां मँझारि, जेठ वदी नवमो बुधवारि ।
नाल्ह रसायण आरंभइ, सारदा तूठी ब्रह्म कुमारि ॥

The date is clearly 1272 and 1220 as the Misra Brothers say, and their calculation showing thus that is inaccurate, therefore based on wrong date. 1272 V. E will correspond to 1216 A. D. and we have reasons to believe that was a contemporary of Bisaldeo.[2]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कहना है कि ग्रन्थ में निर्माण-काल यों दिया है-

बारह सै बहोत्तरां मझारि । जेठ बदी नवमी बुधवारि ॥
नाल्ह रसायण आरंभइ । सारदा तूठि ब्रह्म कुमारि ॥

बारह सौ बाहोत्तर का स्पष्ट अर्थ १२१२ है । बहोत्तर शब्द 'बरहोत्तर द्वादशोत्तर का रूपान्तर है । अतः 'बारह सै बहोत्तरा' का अर्थ द्वादशोत्तर बारह सौ अर्थात् १२१२ होगा । गणना करने पर विक्रम सं० १२१२ में ज्येष्ठ वदी नवमी को बुधवार ही पड़ता है ।[3]

डा० रामकुमार वर्मा ने रचना-तिथि सम्बन्धी 'बारह सौ बहोत्तरा मझारि । जेठ वदी नवमी बुधवारि ॥' तथा 'संवत् सहस तिहुत्तरइ जाणि नाल्ह कविसर सरसीय वाणि' दोनों पदों पर विचार करते हुए कहा है कि १०७३ इतिहास के

---

† Annual Report on the Search for Hindi Mss. for the year 1900, P. P. 78-79.

* Selections from Hindi Literature-Book I [Vardic Poetry) PP. 38-39.

३—हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० ३४ सं० २००३ ।

अधिक समीप है। यदि रासो की एक प्रति हमें यही संवत् देती है और इतिहास बीसल देव के समय को भी लगभग यही मानता है तो हमें बसलदेव रासो की रचना १०७३ मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।[1]

श्री सत्यजीवन वर्मा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के उपर्युक्त मत को मानते हुए कहते हैं कि नरपति नाल्ह का दिया हुआ बीसलदेव रासो का संवत् १२१२ माननीय है।[2]

मिश्र बन्धुओं ने 'बहात्तोराहा' का अर्थ 'बीस' माना है। आप लोग लिखते हैं कि 'नरपति नाल्ह ने इसका समय १२२० लिखा है। पर जो तिथि उन्होंने बुधवार को ग्रन्थ-निर्माण की लिखी है वह १२२० संवत् में बुधवार को नहीं पड़ती। परन्तु १२२० शाके बुधवार को पड़ती है। इससे सिद्ध होता है कि रासो १२२० साके में बना, जिसका वि० सं० १३५४ है।'[3]

श्री अगरचन्द जो नाहटा ने विभिन्न प्राप्त प्रतियों के अनुसार रासो की रचना का संवत् १०७३,१०७७, १२१२, १२७२,१२७३, १३०७, तथा १३७७ निकाला। लेकिन इन सभी संवतों में से उन्होंने सं० १२७२ को ( बारह से बहत्तरांहा का अर्थ नाहटा जो ने १२७२ लिया है, १२१२ नहीं ) ही ठीक माना है क्योंकि जंत्री के अनुसार इसकी तिथि नक्षत्र आदि मिल जाते हैं।'[4]

प्रसिद्ध विद्वान् डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने नाहटा जी द्वारा उपस्थित की हुई सारी तिथियों को जाँच करते हुए 'बारह से बहत्तरां हां मझारि। जेठ बदी नवमी बुधवारि।' को ही ठीक माना है। इसके पक्ष में अपना तर्क देते हुए वे कहते हैं कि 'राजपूताने में पहले विक्रम संवत् कहीं चैत्रादि ( चैत्र शु० १ से आरम्भ होने वाला ) और कहीं कार्तिकादि ( कार्त्तिक शु० १ से आरम्भ होने वाला ) चलता था। जैसा कि वहीं से मिलने वाले शिला लेखों, दान पत्रों और पुस्तकों से पाया जाता है। चैत्रादि वि० सं० १२७२ ज्येष्ठ व० ९ को शुक्रवार था और कार्त्तिकादि वि० सं० के अनुसार ( अर्थात् चैत्रादि १२७३ ) उक्त तिथि को बुधवार आता है। ऐसी दशा में हस्तलिखित प्रतियों

---

१—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—पृ० २०८–२१०।
२—बीसलदेवरास भूमिका पृ० ५-६।
३—मिश्रबन्धु विनोद—भाग १, पृ० २०६।
४—राजस्थानी—त्रैमासिक पत्रिका, भाग ३, पृ० २१।

के आधार पर कार्त्तिकादि वि० सं० १२७२ ( चैत्रादि १२७३ ) ही को इसका रचनाकाल मानना पड़ता है ।[1]

डा० उदयनारायण तिवारी को भी यही तिथि मान्य है ।[2]

डा० माताप्रसाद गुप्त कहते हैं कि प्राप्य हस्तलिखित प्रतियों के चार पाठों के आधार पर कम से कम छः तिथियाँ निकलती ही हैं :—

| | |
|---|---|
| १—सं० १०७७-समूह 'पं०' | २—सं० १०७३—समूह 'नं०' । |
| ३—,, १३७७-समूह 'अ०' | ४—सं०१३०७—समूह 'अ०' । |
| ५—,, १२७२-समूह 'स०' | ६—सं० १२१२—समूह स० । |

चैत्रादि और कार्त्तिकादि—दो प्रकार के वर्षों के अनुसार इन छः की बारह तिथियाँ बन जाती हैं, और यदि गत और वर्तमान संवत् लिये जावें तो उपर्युक्त से कुल २४ तिथियाँ होती हैं । यदि और आगे अमान्त और पूर्णमान्त मासों के भेदों पर न भी जाएं, तो ये चौबीस तिथियाँ क्या कम हैं ? गणना करने पर इन चौबीस में कोई न कोई ठीक निकल ही आवेगा ! गणना करके महामहोपाध्याय स्वर्गीय गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने सं० १२७२ की तिथि को कार्तिकादि वर्ष में लेने पर गणना से ठीक बताया था ! किंतु असंभव नहीं है कि उपर्युक्त चौबीस तिथियों को गणना करने पर दो-एक और भी ठीक निकल आवें । फिर १२७२ का पाठ स० समूह का है जो, पाठ की दृष्टि से यद्यपि अमिश्रित है, किन्तु अत्यधिक प्रक्षेपपूर्ण है । वस्तुतः यही समूह सबसे अधिक प्रक्षेपपूर्ण है । ऐसी दशा में इन पाठों के आधार पर ग्रन्थ की रचना-तिथि निर्धारित करना उचित नहीं जान पड़ता ।[3]

बीसलदेव रासो के निर्माणकाल की उपर्युक्त आलोचना से निष्कर्ष यह निकलता है कि डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, श्री अगरचन्द नाहटा तथा डा० रामकुमार वर्मा को छोड़कर किसी अन्य विद्वान् ने "बारहसै बहोत्तरा" के अतिरिक्त अन्य तिथियों पर विचार नहीं किया । इस शब्द के अर्थ भी दो लगाये गये । एक अर्थ १२७२ लगाया गया तथा दूसरा अर्थ १२१२ । पहले अर्थ को मानने के पक्ष में श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, श्री अगर चन्द जी नाहटा, लाला सीताराम, तथा डा० उदयनारायण तिवारी हैं ।

---

१—नागरी प्रचारिणी पत्रिका—सं० १९९७, अंक २, पृ० १६३-१६५ ।

२—वीर काव्य—पृ० १९१ ।

३—बीसलदेव रास पृ० ५१-५२ ।

१२१२ के पक्ष का समर्थन आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डा० श्यामसुन्दर दास (इन्होंने इस सम्बन्ध में अपने उपर्युक्त विचार को पीछे से बदल दिया था और सं० १२१२ का समर्थन करने लगे थे)[1] तथा सत्यजीवन वर्मा करते हैं। मिश्रबन्धुओं का अपना एक पृथक् वर्ग है, जो इसका अर्थ सं० १३५४ वि० लेता है। डा० रामकुमार वर्मा ने १०७३ को इसका निर्माण-काल माना। डा० मातामसाद गुप्त किसी तिथि का समर्थन नहीं करते।

किसी भी कवि की कृति के निर्माण काल का निर्णय दो ही प्रकारों से हो सकता है। प्रथम और पुष्ट आधार तो है, उसकी कृति में दिया हुआ काल, जिसे अन्तःसाक्ष्य कहा जाता है, द्वितीय आधार है बाह्य साक्ष्य जिसमें कवि द्वारा वर्णित विषयवस्तु यदि रचना ऐतिहासिक हुई तो तथा भाषा आदि हस्त-लिखित प्रस्तुत कृति में हमें दोनों आधार प्राप्य हैं। अन्तः साक्ष्य का आधार प्राप्य प्रतियां हैं जिसमें हमें निम्न तिथियां निर्माण काल की प्राप्त होती हैं—

'अ' समूह : १. संवत सहस सत्तिहितरइ जाणि।
रोहिणी नक्षत्र सोहामणउ॥
सुकल पक्ष पंचमी श्रावण मास।

२. बारह सै बहोत्तरा हां मझारि।
जेठ बदी नवमी बुधवारि॥

३. संबत सहंस तिहतरइ।
सुकल पक्ष पंचमइ श्रावण मास।
रोहिणी नक्षत्र सोहामणो॥

'आ' समूह : ४. श्रावण शुक्ल ५ रो०

'क' समूह : ५. १०७३

'ख' समूह : ६. संवत तेर सतोतरै जाणि।
सुक पंचमी नइ श्रावण मास।
हस्त नक्षत्र रविवार सुं।

उपर्युक्त अन्वय का अर्थ यह निकला कि 'अ' समूह की चार प्रतियों में हमें चार तिथियाँ मिलती हैं, १– १०७७, २– १२७२, ३– १०७३ तथा

---

१—वीरकाव्य, पृ० १८६।

४— १३७७। 'आ' समूह की ६ प्रतियों में से चार प्रतियों में १०७७, एक में १२७२, दो में १०७३, एक में १७७३ जोकि भूल से लिखा प्रतीत होता है, तथा एक में सम्बत् नहीं मिलता है। 'क' समूह की प्रति में १०७३ का उल्लेख है। 'ख' समूह की चौदह प्रतियों में से एक में १०७७, छः में १०७३ तथा दो में १३७७ के अतिरिक्त अन्य प्रतियों में रचनातिथि नहीं मिलती। इन संवतों में से १०७७ तथा १०७३ को छोड़कर अन्य दो संवतों, १२७२ तथा १३७७ के दो अर्थ लगाये जाते हैं। १२७२ से १२१२ का भी अर्थ लगाया जाता है और इसी प्रकार १३७७ का अर्थ १३०७ भी विद्वान् लगाते हैं।

विक्रमी संवतों के दो प्रकार के व्यवहार[1] (चैत्रादि और कार्त्तिकादि) उपर्युक्त संवतों की बारह तिथियाँ देते हैं। लेकिन जिस प्रान्त की यह कथा है वहां प्रायः संवत् कार्तिक सुदी प्रतिपदा से आरम्भ होता है। एलेक्जेन्डर कनिंघम साहब कहते हैं—

"The Vikrama Sambat, or era of Vikramaditya, is reconed from the vernal equinox of the year 57 B. C, and the completion of the Kaliyuga year 3044. It is used all over northern India except in Bengal where the Saka era has been generally adopted. It is used also in Telingana and Gujrat; but in the latter province the year does not begin untill seven months later than in the north or with the first of Kartik Sudi.

कनिंघम साहब के मत की पुष्टि पं० गौरीशंकर हीराचन्द जी ओझा भी एक प्रकार से करते हुए कहते हैं कि राजपूताने में पहले विक्रम संवत् कहीं चैत्रादि (चैत्र सु० १ से आरम्भ होने वाला) और कहीं कार्तिकादि (कार्तिक सु० १ से आरम्भ होने वाला) चलता था, जैसा कि वहाँ से मिलने वाले शिला लेखों, दान पत्रों और पुस्तकों से पाया जाता है।[2] चूँकि पं० गौरीशंकर हीराचन्द जी ओझा के मतानुसार राजपूताने में कहीं चैत्रादि और कहीं कार्तिकादि संवत् प्रारम्भ होता है इसलिए वीसलदेव रासो की प्राप्य प्रतियों के छः संवतों के १२ संवतों का (चैत्रादि और कार्तिकादि के हिसाब से) तथा कनिंघम साहब के मतानुसार केवल छः संवतों की तिथि, वार आदि की गणना

१—Book of Indian bras—Alexender cunningham—P. 47.

२—ना० प्र० प०, स० १९९७, अंक २, पृ० १९३।

की कसौटी पर कस कर देखना होगा कि प्राप्य संवतों में से किस संवत् की तिथि, वार आदि गणना की कसौटी पर खरे उतरते हैं।

प्राप्य हस्तलिखित प्रतियों में, प्राचीनतम संवत् हमें १०७७ मिलता है संवत् १६३३ की प्राप्य प्रति में, जो अबतक की प्राप्य प्रतियों में सबसे प्राचीन है, भी यही संवत् दिया हुआ है। इस संवत् के साथ तिथि श्रावण सुदि ५ तथा नक्षत्र रोहिणी दिया हुआ है। वार इसमें नहीं है। चैत्रादि संवत् के अनुसार वि० सं० १०७७ श्रावण शुक्ला ५ को बुधवार और हस्त नक्षत्र था और कार्तिकादि संवत् के अनुसार उक्त तिथि को सोमवार और हस्त नक्षत्र आता है।[१] यदि दिन के उल्लेख के अभाव के कारण किसी प्रकार इस संवत् को ग्रंथ का रचना-काल मान भी लिया जाय तो नक्षत्र की विभिन्नता इस संवत् को मानने में बाधा उपस्थित करती है। दूसरा प्राप्य संवत् १०७३ है। इस संवत् के साथ मास, पक्ष, तिथि, वार आदि कुछ नहीं है, इसलिए इस सम्बन्ध में कोई जाँच सम्भव नहीं। इसके पश्चात् विचारणीय संवत् १२७२ है जिसका दूसरा अर्थ १२१२ भी लगाया गया इस संवत् के साथ तिथि तथा वार का उल्लेख है, नक्षत्र का नहीं। पं० गौरीशंकर हीराचन्द जी ओझा का मत है कि चैत्रादि विक्रम संवत् १२७२ ज्येष्ठ वदी शुक्रवार था तथा कार्तिकादि वि० सं० के अनुसार अर्थात् चैत्रादि १२७३ में उक्त तिथि को बुधवार आता है। दिन मिल जाने के कारण ओझाजी ने इसी संवत् को ग्रंथ को रचना-तिथि माना है[२]। इस सवत् के दूसरे अर्थ का अर्थात् १२१२ का समर्थन आचार्य रामचन्द्र जी शुक्ल तथा श्री सत्यजीवन जी वर्मा करते हैं। इन लोगों के मतानुसार गणना करने पर विक्रम सं० १२१२ में ज्येष्ठ बदी ९ को ही बुधवार पड़ता है।[3] श्री सत्यजीवन जी वर्मा का तो यहाँ तक कहना है कि "सं० १२७२ में जेठ बदी नवमी बुधवार को नहीं पड़ती।[४] इस संवत् के सम्बन्ध में उपर्युक्त विद्वानों के दो विपरीत मतों ने एक विषम समस्या उपस्थित कर दी है। सं० १२१२ में भी जेठ बदी ९ को बुधवार का पड़ना और १२७२ में भी उसी तिथि को बुधवार का पड़ना, एक ऐसी समस्या है जिस पर विचार करना आवश्यक है। खेद है

---

1. Indian Ephemanis, vol III, PP. 43, 45.
२. ना० प्र० प०, १९९७, अंक २, पृ० १६३।
३. हिन्दी साहित्य का इतिहास सं० २००३, पृ० ३४।
४. बीसलदेव रासो—पृ० ५ भूमिका।

कि उपर्युक्त विद्वानों में से किसी ने यह बताने का कष्ट नहीं किया कि किस आधार पर इन लोगों ने गणना की।

इण्डियन एफीमेरीज के विद्वान् लेखक ने गणना कर विभिन्न संवतों के जो दिन और नक्षत्र आदि दिये हैं उसके अनुसार चैत्रादि के १२७२ की जेठ बदी ६ को शुक्रवार "शतभिषक्" नक्षत्र पड़ता है तथा कार्त्तिकादि से प्रारम्भ होने वाले इस संवत् की जेठ बदी ६ को शुक्रवार हस्त नक्षत्र पड़ता है।[1] इस संवत् के पाठ का जो दूसरा अर्थ १२१२ लगाया गया है उसके सम्बन्ध में भी उपर्युक्त पुस्तक में जो उल्लेख प्राप्य है उसके अनुसार चैत्रादि जेठ बदी ६ को बृहस्पतिवार और रेवती नक्षत्र तथा कार्त्तिकादि जेठ बदी ६ को बुधवार और हस्त नक्षत्र था[2]। इस गणना की दृष्टि से आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और श्री सत्यजीवन वर्मा का यह मत कि संवत् १२१२ में जेठ बदी ६ को बुधवार पड़ता है, ठीक है। इन संवतों के अतिरिक्त एक संवत् १३७७ भी प्राप्य है। इस संवत् के साथ तिथि, वार तथा नक्षत्र सभी दिया हुआ है। अत: गणना करने में बड़ी सुविधा है। गणना करने पर चैत्रादि संवत् के अनुसार विक्रम संवत् १३७७ श्रावण सुदी ५ को रेवती नक्षत्र और शनिवार था तथा कार्त्तिकादि संवत् के अनुसार उक्त तिथि को अश्विनी नक्षत्र और बृहस्पतिवार आता है[3]। इस तरह यह संवत् भी अशुद्ध ठहरता है। इस संवत् का दूसरा अर्थ १३०७ भी लगाया गया है। गणना करने पर चैत्रादि संवत् १३०७ श्रावण शुक्ल ५ को बुधवार तथा "उ० भाद्र" पड़ता है एवं कार्त्तिकादि संवत् १३०७ "अर्थात् चैत्रादि १३०८" श्रावण शुक्ल ५ को मंगलवार और अश्विनी नक्षत्र पड़ता है[4]।

उपर्युक्त प्राप्य हस्तलिखित प्रतियों में उल्लेख किये गये विभिन्न संवतों की गणना का निष्कर्ष यह निकला कि संवत् १२७२ के पाठ का अर्थ १२१२ निकालने पर और कार्त्तिकादि से इस संवत् का प्रारम्भ मानने पर जेठ बदी ६ को बुधवार पड़ता है जो कि संवत् १६६६ वाली प्रति में दिये गये पाठ का लगाया गया अर्थ है; लेकिन इसे मानने में इस संवत् के साथ नक्षत्र के उल्लेख का अभाव तथा इस प्रति के चार खण्डों में विभाजित होने के कारण इसके प्रामाणिक होने में सन्देह तथा बारह सै बहोत्तरा का लगाया गया अर्थ १२१२,

---

1. Indian Ephemaries vol IV, P. P. 32, 34.
2. ,, ,, vol III, P. P. 312, 314.
3. ,, ,, vol IV, P. P. 243, 245.
4. ,, ,, vol IV, P. P. 103, 105.

आदि कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनके कारण इस तिथि को पूर्ण रूप से केवल दिन मिल जाने के कारण प्रामाणिक मानना उपयुक्त न होगा।

अन्त में कहना पड़ेगा कि प्राप्य संवतों के आधार पर बीसलदेव रासो की रचना-तिथि का निर्णय करना शंकाओं से निर्मूल नहीं हो सकता।

प्राप्य प्रतियों में प्रति नं० २ (१६६९, तथा ६ (१७२४) ऐसी हैं जिनमें रचना तिथि प्रारम्भ में तथा अन्य प्रतियों में अन्त में दी गई है। इस आधार पर श्री अगरचन्द जी नाहटा ने यह तक उपस्थित किया है कि "ग्रन्थ के आरंभ में रचना काल का निर्देश करना मुसलमान ग्रन्थकारों की शैली है। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में रचना-काल जहाँ दिया है वहाँ सदा ग्रन्थ के अन्त में ही दिया है आरम्भ में देने की पद्धति मुसलमानों की देखादेखी सोलहवीं शताब्दी के आस पास चली जान पड़ती है[1]।" लेकिन इस आधार पर यह कहना कि बीसलदेव रासो का रचयिता १६ वीं शताब्दी के लगभग का था, तर्करहित जान पड़ता है। रचना का समय ग्रन्थ के आरम्भ अथवा अन्त म देना रचयिता की रुचि का प्रश्न है। प्राचान ग्रंथों में जहाँ अनेक उदाहरण रचना तिथि को अन्त में देने के मिलते हैं वहाँ कई ग्रंथ ऐसे भी मिलते हैं जहाँ रचना-तिथि आरम्भ में दी गई है। "जैन कवि" मान रचित "राजविलास" नामक ग्रन्थ में उसकी रचना का समय आरम्भ में ही स्तुतियों के बाद दिया गया है[2]।" ऐसे और भी अनेक उदाहरण प्राप्त हो सकते हैं।

## भाषा का दृष्टिकोण

ग्रन्थों के रचना-काल पर भाषा की दृष्टि से भी विचार किया जाता है। श्री अगरचन्द जी नाहटा ने इस दृष्टिकोण से विचार करते हुए लिखा है कि "बीसलदेव रासो" की भाषा सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी की राजस्थानी भाषा है। जिन विद्वानों ने ग्यारहवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक की राजस्थानी भाषा का अध्ययन किया है, उनका यह मत हुए बिना नहीं रह सकता। ग्रंथ में प्राचीन भाषा का अंश बहुत कम—नहीं के बराबर है।[3] और इस प्रसंग में पाद टिप्पणी देते हुए वे लिखते हैं कि "सोलहवीं शताब्दी में नरपति नाम का एक कवि हुआ भी है जिसका उल्लेख "जैन गुर्जर कविओ" भाग १ में है[4]।

---

१. राजस्थानी—भाग ३, अंक २, पृ० १९ (पाद टिप्पणी)
२. नागरी प्रचारिणी पत्रिका—सं० १९९७, पृ० १७१
३. राजस्थानी—भाग ३, अंक ३, पृ० २१
४. ,, ,, ,, ,, (पाद टिप्पणी)

इन्हीं आधारों पर वे शायद कहना चाहते हैं कि यह रचना १६ वीं शताब्दी की है और उसका रचयिता भी १६ वीं शताब्दी का है।

लेकिन जिन प्रतियों की भाषा के आधार पर श्री नाहटाजी ने यह परिणाम निकाला है उन प्रतियों में ग्रंथ की अन्तिम स्थितियों तक की भाषा का मिश्रण हुआ है। फिर इनका यह कहना कि ग्रन्थ में प्राचीन भाषा का अंश बहुत कम नहीं के बराबर है" स्वयं यह सिद्ध करता है कि ग्रन्थ की भाषा में प्राचीन के कुछ उदाहरण प्राप्त हैं। उत्तरोत्तर उसमें अनेक प्रकार की बोलियों का मिश्रण शताब्दियों के व्यतीत होने के साथ-साथ होता गया। हमें सत्रहवीं शताब्दी की प्राचीनतम प्रति प्राप्त है। यदि ग्रन्थ का रचना-काल दी गयी रचनातिथि के अनुसार ११ वीं या १२ वीं शती मान लिया जाय तब भी प्राप्त प्रतियाँ तीन या चार सौ वर्षों के पश्चात् की रचित हैं। अतः तीन या चार सौ वर्षों के पश्चात् उस काल की भाषा का जिस काल में यह ग्रन्थ मूल रूप से रचित हुआ था, प्राप्त होना असम्भव है।

प्रसिद्ध विद्वान् पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने बारहवीं तथा तेरहवीं शताब्दी की भाषा के कुछ उदाहरणों को देते हुए कहा है कि "भाषा का प्रयोग कवि की रुचि पर निर्भर है। जैनों के धर्मग्रन्थ ( सूत्र ) प्राकृत ( अर्ध मागधी ) भाषा में होने के कारण जैन लेखक अपने भाव्य काव्यों में प्राकृत शब्दों की भरमार करते रहे हैं, जिससे उनकी भाषा दुरूह हो गयी है। चारण, भाट आदि प्राकृत से अधिक परिचित न होने के कारण अपनी रचनाएँ प्रचलित भाषा में करते थे, जिससे इन दोनों प्रकार के लेखकों की पुस्तकों की भाषा में अन्तर होना स्वाभाविक ही है। भाषा की कसौटी सदियाँ नहीं हैं। एक ही समय में कोई सरल भाषा में अपनी रचना करता है तो कोई कठिन भाषा का प्रयोग करता है।[1]

डा० उदयनारायण तिवारी भी पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा की बातों को पुष्ट करते हुए लिखते हैं कि "भाषा के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह हो सकता है कि क्या इसकी भाषा उस समय की साहित्यिक भाषा है या सर्व-साधारण के बोलचाल की भाषा? अथवा सम्भव है कि वह उन दोनों में से एक भी न हो। इस सम्बन्ध में इस बात को सदैव स्मरण रखना चाहिए कि जैन लेखक तथा कवि प्राकृत ( अर्द्ध मागधी प्राकृत तथा अपभ्रंश ) का ही प्रयोग

१. ना० प्र० प०—सं० १९९७, पृ० १०१।

अपनी कविताओं में करते थे : किन्तु साधारण चारण और कवि प्राकृत से अपरचित होने के कारण अपनी प्रचलित भाषा में ही रचना करते थे। नरपति नाल्ह न तो भाषा का पण्डित था और न तो कोई सुकवि। अतएव उसके लिए अपनी मातृभाषा राजस्थानी में कविता करना सर्वथा स्वाभाविक था।"[1]

कारकों के वियोगा तथा संयोगा अवस्थाओं के रूप, क्रियाओं के सहायक क्रिया से बने हुए तथा संस्कृत की ही भाँति मूल क्रिया में प्रत्यय जोड़ कर बने हुए रूप, राजस्थानी उच्चारण के अनुसार "न" के स्थान पर "ण" का प्रयोग तथा संज्ञा शब्दों के अन्त में "डा","डी" और "ड़े" आदि के प्रयोगों के उदाहरणों को दिखाकर डा० उदयनारायण जी तिवारी ने यह सिद्ध किया है कि इसकी भाषा १२००—१३०० वि० संवत् की है।[2]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह मत है कि यद्यपि गाने की चीज होने के कारण मूल रासो की भाषा में समयानुसार बहुत कुछ फेर-फार होता रहा है किन्तु लिखित रूप में रक्षित होने के कारण इसका पुराना ढाँचा बहुत कुछ बचा हुआ है। अपने इस कथन की पुष्टि करने के लिये वे रासो में प्रयुक्त कुछ शब्दों की ओर संकेत करते हैं, जैसे "चितइ" = चित्त में, "रांण" = रण में, "ईणी विधि" = इस प्रकार, "ईसउ" = ऐसा, "नेयर" = नगर, "पसाउ" = प्रसाद, "पयोहर" = पयोधर, इत्यादि।[3]

विविध विद्वानों के भाषा-सम्बन्धी उपर्युक्त विवेचन से यह ज्ञात होता है कि ग्रन्थ की भाषा प्राचीन है और वह सं० ग्यारहवीं तथा बारहवीं के लगभग की हो सकती है। सोलहवीं शताब्दी की तो कदापि नहीं जैसा कि श्री नाहटा जी ने कहा है; क्योंकि पृथ्वीराज रासो तथा बीसलदेव रासो की भाषा के तुलनात्मक अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि बीसलदेव रासो की भाषा पृथ्वीराज रासो की भाषा से पुरानी है।

उपर्युक्त भाषा-सम्बन्धी विविध विद्वानों के प्रकाशित मतों से यह निष्कर्ष निकलता है कि रासो की भाषा ग्यारहवीं तथा बारहवीं शती के लगभग की हो सकती है। अब प्रश्न यह उठता है कि ग्यारहवीं और बारहवीं शती में भारतवर्ष की भाषा कौन सी थी। डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या महोदय ने अलबेरूनी

---

१. वीरकाव्य—पृ० २०० ।

२. वीरकाव्य—पृ० २००—२०३ ।

३. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ४४।

के भारत वर्णन का उल्लेख करते हुए अपनी पुस्तक "भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी" में लिखा है कि लगभग १०२५ ई० में भारतीय आर्य भाषा दो रूपों में विभाजित थी, एक तो उपेक्षित काव्य भाषा जिसका केवल साधारण जन में प्रचार था, और दूसरी शिष्ट, सुशिक्षित उच्च वर्ग में प्रचलित साहित्यिक भाषा जिसे बहुत से लोग अध्ययन कर प्राप्त करते थे तथा जो व्याकरणात्मक विभक्ति योग, व्युत्पत्ति, तथा व्याकरण के नियमों एवं अलंकार, रस शास्त्र की बारीकियों से बद्ध थी। इन दो रूपों के बावजूद भी वह भारतीय भाषा को एक ही गिनता है। सुसंस्कृत ब्राह्मण वर्ग संस्कृत की परम्परा को ही चलती रखता और उसके संरक्षक क्षत्रिय एवं अन्य नृपतिगण उसे आश्रय भी देते रहते...यद्यपि वे स्वयं तथा उनसे नीचे वर्ग की प्रजा अपभ्रंश तथा देशी भाषाओं से ही अपना मनोरंजन करते थे।[1]

अलबेरूनी की उपर्युक्त उक्ति यह सिद्ध करती है कि ग्यारहवीं शती में भारतवर्ष में संस्कृत तथा अपभ्रंश दो प्रकार की भाषाएँ प्रचलित थीं। कालान्तर में अपभ्रंश से ही नव्य भारतीय आर्य भाषाओं का विकास हुआ। संस्कृत की तरह अपभ्रंश का केवल एक ही भेद नहीं था। विभिन्न प्रान्तों में बोली जाने वाली अपभ्रंश भाषा का प्राकृत चन्द्रिका में सत्ताईस भेद गिनाया गया है :—

ब्राचड़ो लाटवैदर्भावुपनागरनागरौ।
बार्बरावन्त्य पांचाल टाक्र मालव कैकयाः॥
गौडौढ्हैव पाश्चात्य पाण्ड्य कौन्तल सैंहलाः।
कालिंग्य प्राच्य कर्णाट कांचय द्राविड़ गौर्जराः॥
आभीरो मध्य देशीयः सूक्ष्म भेद व्यवस्थिताः।
सप्त विंशत्यपभ्रंशाः वेतालादिप्रभेदतः॥

इन्हीं सत्ताईस प्रकारों के अपभ्रंशों में से एक अपभ्रंश जिसका नाम डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के मतानुसार सौराष्ट्रीय अपभ्रंश[1] है, राजस्थान की ग्यारहवीं शती की भाषा थी।

अपभ्रंश के उदाहरण हमें हेमचन्द्र आचार्य द्वारा रचित अपभ्रंश के व्याकरण तथा मेरुतुङ्गाचार्य कृत "प्रबन्ध चिन्तामणि" में अनेक मिलते हैं। नीचे इन दोनों ग्रंथों के दो-दो पद उदाहरण-स्वरूप इसलिए प्रस्तुत किये जा रहे हैं कि इनकी भाषा की तुलना बीसलदेव रासो की भाषा से की जा सके।

---

१. भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी, पृ० १०६–१०७।

पुत्ते जाएँ कवणु गुणु अवगुणु कवणु मुएण ।
जा बप्पी की भुंहड़ी चंपिज्जइ अवरेण ॥

"अपभ्रंश व्याकरण, हेमचन्द्र आचार्य"

जेवडु अंतरु रावण रामहं तेवडु अंतरु पट्टणगामहं ।

"वही"

जा मति पच्छइ संपज्जइ सामनि पहिली होइ ।
मुंज भणइ मुणालवइ विघन न वेढइ कोइ ।

"प्रबन्ध चिन्तामणि"

जइ यह रावणु जाइयउ दहमुह इक्कु सरीरु ।
जणणि वियंभी चिंतवइ कवणु पियावउं खीरु ॥

"वही"

उपर्युक्त उदाहरणों में :

संज्ञा

पुत्तें, बप्पी, पट्टण
गामहं, दह, मुँह, इक्कु
सरीरु, जणणि, खीरु
भुहंडी आदि ।

क्रिया

भणइ, वेढइ, चितंवइ,
पियावउं आदि ।

वीसलदेव रास में :

संज्ञा

भूजडा, सेजडी, मोजडी,
भारटिण, नयण, वहूरणि,
पतडउ, प्रीतणउ, मुषिकउ,
सनरु, आदि ।

क्रिया

भणइ, गिणइ, लहइ,
बोलावइ, आदि ।

संज्ञा और क्रिया के रूप जैसे "अपभ्रंश व्याकरण" और प्रबन्ध-चिन्तामणि में हैं वैसे ही वीसलदेव रासो में भी हैं । हेमचन्द्र आचार्य के व्याकरण का रचना-काल वि० संवत् १२०० के लगभग और प्रबन्ध चिन्तामणि का संवत् १३६१ है, लेकिन हेमचन्द्राचार्य के व्याकरण में उद्धृत की हुई पंक्तियाँ उदाहरण-स्वरूप आई हैं । अतः निश्चय ही ये पंक्तियाँ ग्रन्थ की रचना के पहले की हैं । इसी प्रकार "प्रबन्ध चिन्तामणि" की भाषा के लिए भी कहा जा सकता है कि जिस अपभ्रंश के व्याकरण का उल्लेख इसमें हुआ है वह इस ग्रंथ की रचना के बहुत पहले जन-साधारण की भाषा रही होगी और उसके पश्चात् ही "प्रबन्ध चिन्तामणि" के रचयिता ने इसी भाषा के संस्कृत रूप को अपने ग्रन्थ में स्थान दिया

होगा। अस्तु, इसकी भाषा भी संवत् १३६१ के पहले की है, इसमें सन्देह नहीं। बीसलदेव रासो की भाषा जैसा कि ऊपर उदाहरणों द्वारा दरसाया गया है "अपभ्रंश व्याकरण" और "प्रबन्ध चिन्तामणि" में उद्धृत उदाहरणों की भाषा से बहुत अंशों में मिलती-जुलती है। भाषा के उपर्युक्त आधार पर निर्भर होकर ऐसा कहा जा सकता है कि बीसलदेव की रचना ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और १२ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुई होगी। लेकिन भाषा के आधार पर उपर्युक्त निर्णय करने में डा० उदयनारायण जी तिवारी द्वारा निकाला गया यह निष्कर्ष कि चूँकि नाल्ह न तो भाषा का पण्डित था और न कोई सुकवि, अतएव उसने अपनी मातृ भाषा राजस्थानी में बीसलदेव रासो की रचना की, बाधा उपस्थित करता है, यद्यपि डा० तिवारी का यहाँ "राजस्थानी" कहना अस्पष्ट है; क्योंकि इसके द्वारा उनका संकेत किस ओर है, इसका ठीक-ठीक पता नहीं चलता। यदि डा० तिवारी का उद्देश्य "राजस्थानी" से शौरसेनी अपभ्रंश से हो, तब तो उपर्युक्त निकाले गये निष्कर्ष से उनका मंतव्य सिद्ध होता है, और यदि उनका अर्थ राजस्थानी से पूर्वी और पश्चिमी राजस्थान की बोलियों से है तब यह विचार करना होगा कि ये बोलियाँ कब से राजस्थान में प्रचलित हुईं। इन बोलियों के सम्बन्ध में डा० सुनीतिकुमार जी चाटुर्ज्या का कहना है कि पुरानी पश्चिमी राजस्थानी साहित्य 'अर्थात् पुरानी मारवाड़ी, गुजराती साहित्य' का इतिहास ई० चौदहवीं सती के द्वितीयार्द्ध से शुरू हुआ, मारवाड़ और गुजरात में प्रचलित मौखिक अपभ्रंश से, 'जो शौरसेनी से निकट सम्बद्ध होती हुई भी उसे स्वतन्त्र अपभ्रंश थी ऐसा अनुमित होता है—इसे हम "सौराष्ट्र अपभ्रंश" कह सकते हैं। पुरानी पश्चिमी राजस्थानी का उद्भव, तेस्सीतोरी के मतानुसार, ईस्वी तेरहवीं शती में हुआ था। गुजरात और मारवाड़ के जैन आचार्य और पण्डितों के द्वारा सौराष्ट्र अपभ्रंश से उद्भूत पुरानी राजस्थानी में साहित्य-सर्जना होने लगी, पर साथ ही साथ शौरसेनी अपभ्रंश साहित्यिक भाषा में पूर्ववत् काव्यादि साहित्यिक रचना की नीति अव्याहत रही। फिर, यह शौरसेनी अपभ्रंश साहित्यिक भाषा, पूर्व से बदलती गयी, इसका एक नवीन या अर्वाचीन रूप, पिंगल नाम से, राजस्थान और मालव के कवियों में पूर्णतया गृहीत हुई, पिंगल का एक साहित्य बन गया। फिर राजपुताने के भाट और चारणों में पिंगल की अनुकारी एक नई कवि-भाषा मारवाड़ी के आधार पर बनाई, जो "डींगल" या 'डिंगल' नाम से अब परिचित है। डिंगल काव्य ईस्वी पन्द्रहवीं शती से उपलब्ध है। ज्यादातर इसकी शब्दावली साहित्यिक थी,

अर्थात् प्रचलित मौखिक मारवाड़ी की शब्दावली से पृथक् होती थी।[1]

प्रसिद्ध विद्वान् तेस्सीतोरी और डा० चाटुर्ज्या का उपयुक्त मत यह सिद्ध करता है कि मारवाड़ और गुजरात में प्रचलित मौखिक अपभ्रंश से राजस्थानी का उद्भव तेरहवीं शती में हुआ था। अर्थात् इसके पहले वहाँ की बोलचाल की भाषा अपभ्रंश थी। तथा अपभ्रंश के बाद "पिंगल" और तब डिंगल का स्थान आता है। आज के प्राप्त इस ग्रंथ की प्रतियों में निस्सन्देह डिंगल और पिंगल भाषा की बहुलता है, क्योंकि १५ वीं शती के पश्चात् की ही ये सभी प्रतियाँ हैं लेकिन इन प्रतियों में अपभ्रंश संज्ञाओं और क्रियाओं का प्रयोग तो स्पष्ट सिद्ध करता है कि इस काव्य की रचना अति प्राचीन अर्थात् १२ वीं शती की थी और स्मरण के आधार पर लिखित होने के कारण केवल थोड़े-बहुत शब्दों और क्रियाओं का ही प्रयोग लेखबद्ध करते समय किया जा सका। तथा इस कथन में भी अत्युक्ति न होगी कि इस ग्रन्थ की रचना आजकल की राजस्थानी में नहीं हुई थी, जैसा कि डा० उदयनारायण जी तिवारी का विचार है, यदि उन्होंने सचमुच राजस्थानी शब्द का प्रयोग आज की राजस्थानी के लिए किया हो।

## ऐतिहासिक दृष्टिकोण

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से रचना-तिथि पर विचार करते हुए डा० रामकुमार वर्मा ने सं० १०७३ को इतिहास के निकट माना है और अपने मत की पुष्टि में इतिहास के प्रमाण दिये हैं।[2] (लेकिन राजा भोज और बीसलदेव के समय को देते हुए भी वे यह कहना भूल गये कि किस बीसलदेव की चर्चा वे कर रहे हैं, क्योंकि इतिहास में बीसलदेव चार हो चुके हैं।)

श्री सत्यजीवन वर्मा ने सं० १२१२ को ऐतिहासिक दृष्टिकोण से ठीक समझते हुए कहा है कि "बीसलदेव" विग्रहराज चतुर्थ का दूसरा नाम है। बीसलदेव के शिलालेख सं० १२१० और १२२० के प्राप्त हैं। अजमेर बसने के पश्चात् केवल यही बीसलदेव हुआ है। यह अर्णोराज का पुत्र और जगदेव का छोटा भाई था। यह अपने बड़े भाई जगदेव के जीते जी उससे राज छीन कर गद्दी पर बैठा था। इसको विद्या से बड़ा प्रेम था। इसका रचा हुआ हरकेलिनाटक है। यह नाटक वि० सं० १२१० (सन् ११५३) की माघ शुक्ला

---

१. राजस्थानी भाषा...डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या...पृ० ६५।

२. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—पृ० २६८-१०।

पञ्चमी को समाप्त हुआ था। यह उक्त संवत् में खुदाई करने पर प्राप्त हुआ है। इसी स्थान में बीसलदेव द्वारा स्थापित पाठशाला थी। दिल्ली के प्रसिद्ध फीरोज शाह की लाट पर वि० सं० १२२० वैशाख शुक्ला १५ का इसका एक लेख भी है। इत्यादि।[1]

श्री सत्यजीवन जी वर्मा ने १६६९ की लिखी हुई प्रति के आधार पर ही अपना यह मत प्रकट किया है। उस प्रति में "बारह सै बहोत्तराहां मझारि" का ही उल्लेख है। जब यह प्रति श्री वर्मा जी द्वारा सम्पादित हुई थी तब तक यही प्राचीनतम प्रति मानी जाती थी। अतः श्री वर्माजी के लिये यह स्वाभाविक था कि वे इसमें दिये हुए रचना काल को ही ठीक मानें और उसकी पुष्टि में प्रमाण दें। लेकिन उनके लिए भी अच्छा यह होता कि वे अन्य प्रतियों की तिथियों पर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विचार कर लेते और ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अपना मूल्यवान विचार उपस्थित करते हुए प्राप्य तिथि की गणना भी कर लेते।

डा० उदयनारायण जी तिवारी ने ऐतिहासिक दृष्टिकोण से रचना-तिथि पर विचार करते हुए कहा है कि यदि बीसलदेव को विग्रहराज चतुर्थ मान लिया जाय तो राजमती से उसके विवाह की कथा इतिहास के विरुद्ध ठहरती है। राजमती को बीसलदेव रासो में भोज की पुत्री कहा गया है और भोज का समय लगभग सं० ११११ के आस-पास था। बीसलदेव चतुर्थ का समय सं० १२०७ से १२२० तक का माना गया है। इस प्रकार सौ वर्ष पूर्व के किसी व्यक्ति की पुत्री से विवाह होने की कथा बड़ी असङ्गत होगी।[2] इस आधार पर बीसलदेव रासो का नायक बीसलदेव चतुर्थ नहीं ठहरता। बीसलदेव तृतीय के पक्ष में बिजोल्यॉं के शिलालेख का प्रमाण, जिसमें चौहानों की वंशावली दी गयी है तथा जिसमें विग्रहराज तृतीय की रानी का नाम राजदेवी दिया गया है, और अन्य शिलालेखों के प्रमाण, जिसके अनुसार भोज के भाई उदयादित्य का विग्रहराज तृतीय का समकालीन होना सिद्ध होता है, तथा भोज की पुत्री राजदेवी अथवा राजमती का विवाह बीसलदेव तृतीय से होने की सम्भावना सिद्ध होती है, डा० उदयनारायण जी तिवारी देते हैं।[3] विग्रहराज तृतीय का समय डा० उदयनारायण जी तिवारी ने सं० ११५० वि० माना है। और ग्रंथ

---

१. बीसलदेव रासो—पृ० ६–७।
२. वीर काव्य—पृ० १६३।
३. वीर काव्य—पृ० १६४।

की रचना तिथि सं० १२७२ वि० मानते हैं। ( इस प्रकार लगभग १२५ वर्ष पश्चात् इस ग्रंथ की रचना के सम्बन्ध में उनका विचार है कि इस ग्रन्थ को छन्दोबद्ध करने वाले कवि नरपति नाल्ह को केवल इतना ही ज्ञात था कि किसी भोज की पुत्री राजमती के साथ बीसलदेव का विवाह हुआ था। उसी के आधार पर उसने अनेक कल्पनात्मक नामों तथा घटनाओं का मिश्रण करके लोकरञ्जनार्थ एक काव्य गाने योग्य तैयार कर लिया। यह विवाह कब हुआ था, इसका उसको ठीक-ठीक पता न था, इसलिए राजमती के पिता के नाते, भोज के जीवन-काल में ही विवाह हो जाने का उसने वर्णन कर दिया है।[1]

डा० माताप्रसाद गुप्त ने स्थूल रूप से ग्रंथ के रचना-काल के विषय में विचार करते हुए इसके ऐतिहासिक तत्वों का विवेचन किया है। बीसलदेव तृतीय या चतुर्थ अजमेर की स्थापना, भोज द्वारा मगेवर, सोरठ, टोंक आदि कई प्रान्तों को बीसलदेव को दिये जाने की बात तथा बीसलदेव के उड़ीसा यात्रा की कथा का ऐतिहासिक विश्लेषण करते हुए डा० गुप्त इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विग्रहराज तृतीय की रानी का नाम राजदेवी था। उसी के सम्बन्ध में राजमती नाम से कुछ कहानियाँ समय पाकर प्रसिद्ध हो गईं। फिर भोज परमार आदि से उसे सम्बन्धित कर विग्रहराज तृतीय के बहुत बाद किसी नरपति नाल्ह नामक कवि ने इस ग्रन्थ को रचना कर डाली।[2]

पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने ग्रन्थ के ऐतिहासिक तत्वों का विशेष रूप से विश्लेषण किया है। वे कहते हैं कि "बीसलदेव रासो में,कवि ने मुख्यतया दो घटनाओं का वर्णन किया है—एक तो बीसलदेव के राजाभोज की पुत्री से विवाह होने की और दूसरी उसके ( वीसलदेव ) उड़ीसा जाने की। जहाँ तक पहली घटना का सम्बन्ध है, बीज रूप में उसमें सत्य का अंश अवश्य है, परन्तु शेष कथा कल्पित ही प्रतीत होती है। अपने इस कथन की पुष्टि में उन्होंने कहा है कि "विजोल्यां के शिलालेख में दी हुई चौहानों की वंशावली में विग्रहराज तृतीय की रानी का नाम राजदेवी दिया है। बीसलदेव रासो की राजमती और यह राजदेवी नाम एक ही रानी के सूचक होने चाहिये।" चौहान राजा बीसलदेव तृतीय से परमार वंशीय राजकुमारी राजदेवी राजा भोज की पुत्री के विवाह के सम्बन्ध में अपना अनुमान प्रकट करते हुए श्री ओझा कहते

१. वीर काव्य—पृ० १९४।
२. वीसलदेव रास—पृ० ५४।

हैं कि राजा भोज के कनिष्ठ भ्राता उदयादित्य ने सम्भव है अपना पुराना वैर मिटाने के लिए अपनी भतीजी भोज की पुत्री राजदेवी अथवा राजमती का विवाह वीसलदेव तृतीय से किया हो; क्योंकि राजपूतों में आपस के वैर प्रायः पुत्री विवाहने से मिट जाते थे, जिसके अनेक उदाहरण उनके इतिहास में मिलते हैं[1]।"

इसके अतिरिक्त डा० ओझा ने शिलालेखों का प्रमाण देते हुए यह सिद्ध किया है कि विग्रहराज बीसलदेव तृतीय परमार-राजा भोज के भाई उदयादित्य का समकालीन था, जो वि० सं० ११११ के आस-पास गद्दी पर बैठा था।[2] इन्हीं ऐतिहासिक तत्वों के आधार पर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बीसलदेव रासो का नायक चौहान राजा—बीसलदेव तृतीय है और इसका रचना-काल कातिक वि० सं० १२७२ चैत्रादि १२७३ होना चाहिए।

आचार्य रामचन्द्र जी शुक्ल कहते हैं कि "दिये हुए सं० के विचार से कवि अपने नायक का समसामयिक ज्ञात पड़ता है। पर वर्णित घटनाएँ, विचार करने पर बीसलदेव के बहुत पीछे की जान पड़ती हैं, जब कि उनके सम्बन्ध में कल्पना की गुंजाइश हुई होगी। यह घटनात्मक काव्य नहीं है, वर्णनात्मक है। इसमें दो ही घटनाएँ हैं—बीसलदेव का विवाह और उनका उड़ीसा जाना। इनमें से पहली बात तो कल्पना-प्रसूत प्रतीत होती है। बीसलदेव से १०० वर्ष पहले ही धार के प्रसिद्ध परमार राजा भोज का देहान्त हो चुका था। अतः उनकी कन्या के साथ बीसलदेव का विवाह किसी पीछे के कवि की कल्पना ही प्रतीत होती है। उस समय मालवा में भोज नाम का कोई राजा नहीं था। बीसलदेव की एक परमार वंश की रानी थी, यह बात परम्परा से अवश्य प्रसिद्ध चली आती थी, क्योंकि इसका उल्लेख पृथ्वीराजरासो में भी है। इसी बात को लेकर पुस्तक में भोज का नाम रखा हुआ जान पड़ता है। अथवा यह हो सकता है कि धार के परमारों की उपाधि ही भोज रही हो और उस आधार पर कवि ने केवल यह उपाधि-सूचक नाम ही दिया हो, असली नाम न दिया हो। कदाचित् इन्हीं में से किसी की कन्या के साथ बीसलदेव का विवाह हुआ हो। परमार-कन्या के सम्बन्ध में कई स्थानों पर जो वाक्य आये हैं, उन पर ध्यान देने से यह सिद्धान्त पुष्ट होता है कि राजा भोज का नाम कहीं पीछे से न

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका सन् १९९७—पृ० १६६–६८
२. ,, ,, ,, १६६

मिलाया गया हो। जैसे "जनमी गोरी तू जेसलमेर" : "गोरड़ी जेसलमेर की"। आबू के परमार भी राजपूताने में फैले हुए थे। अतः राजमती का उनमें से किसी सरदार की कन्या होना सम्भव है। पर भोज के अतिरिक्त और भी नाम इसी प्रकार जोड़े हुए मिलते हैं। जैसे—माघ, अचारज, कवि कालिदास।

जैसा पहले कह आये हैं, अजमेर के चौहान बीसलदेव ( विग्रहराज चतुर्थ ) बड़े वीर और प्रतापी थे और उन्होंने मुसलमानों के विरुद्ध कई चढ़ाइयाँ की थीं और कई प्रदेशों को मुसलमानों से खाली कराया था। दिल्ली और हाँसी के प्रदेश इन्होंने अपने राज्य में मिलाये थे। इनके वीर चरित का बहुत कुछ वर्णन इनके राजकवि सोमदेव रचित "ललित विग्रह-राज" ( संस्कृत ) में है, जिसका कुछ अंश बड़ी-बड़ी शिलाओं पर खुदा हुआ मिला है और राजपूताना म्यूजियम में सुरक्षित है। पर नाल्ह के इस बीसलदेव रासो में, जैसा कि होना चाहिए था, न तो उक्त वीर राजा की ऐतिहासिक चढ़ाइयों का वर्णन है, न उसके शौर्य-पराक्रम का। शृङ्गार रस की दृष्टि से विवाह और रूठकर विदेश जाने का ( प्रोषित पतिका के वर्णन के लिए ) मनमाना वर्णन है। अतः इस छोटी-सी पुस्तक को बीसलदेव ऐसे वीर का "रासो" कहना खटकता है। पर हम देखते हैं कि यह कोई काव्य ग्रंथ नहीं केवल गाने के लिए रचा गया था, तो बहुत कुछ समाधान हो जाता है[1]।"

डा० श्यामसुन्दर दास का मत है कि "विग्रहराज के विषय में दो और शिलालेखों का पता लगा है। पहिले पर तो सोमेश्वरदेव का बनाया हुआ एक नाटक खुदा है जिसमें वसन्तपाल को कन्या के साथ राजा विग्रहराज की प्रेम-केलि और मुसलमानों के विरुद्ध राजा के युद्धों का वर्णन है। दूसरे पर भी एक नाटक है जिसके रचयिता स्वयं विग्रहराज हैं। इस दूसरे शिलालेख पर संवत् १२१० ( ११५३ ई० ) खुदा है। इनसे अब यह स्पष्ट सिद्ध हो गया कि महाराज विग्रहराज का राजत्वकाल १२ वीं शताब्दी के मध्य में हुआ।

सोमेश्वर राज के समय का एक शिलालेख मेवाड़ में मिला है जिसमें लिखा है कि विग्रहराज अर्णवराज का पुत्र था और 'तस्य ज्येष्ठ भ्रातृपुत्रः पृथ्वीराजः' था तथा "ज्येष्ठ भ्रातृ" का नाम आगे चलकर सोमेश्वर दिया है। बीसलदेव का नाम भी इस लेख में दिया है। पर विग्रह-राज से तीन पीढ़ी पहिले

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० ३४-३५। सं० २००३।

है। अतएव यह सिद्ध होता है कि विग्रहराज और बीसलदेव एक ही पुरुष नहीं थे।

इसके अतिरिक्त पृथ्वीराजरासो में लिखा है कि जिस समय बीसलदेव गुजरात के चालुक्य राजा से लड़ने गये तो राजा भोज का लड़का उदयादित्य उनके साथ था। बीसलदेव-रासो के अनुसार बीसलदेव ने भोज परमार की कन्या से विवाह किया था और इस भोज का समय डा० राजेन्द्र लाल मित्र के अनुसार सन् १०२६-१०८३ के बीच में होता है—पृथ्वीराजरासो से यह पता चलता है कि बीसलदेव की एक प्रमार वंशीय रानी थी, क्योंकि आदि पर्व में यह दोहा मिलता है :—

ऊँच धाम विसराम किय रङ्ग लाल चतुरङ्ग।
प्रौढ़ा महल पवाँर सों कहिय सुकथा प्रसङ्ग॥

चन्द बीसलदेव का समय संवत् ८२१ देता है (पंड्या जी के सनन्द विक्रम संवत् के अनुसार यह ९११ होगा) और यह लिखा है कि बीसलदेव ने ६४ वर्ष राज्य किया था। अतएव इस गणना के अनुसार बीसलदेव की मृत्यु का संवत् ९७६ (९१९ ई०) होगा जबकि राजा भोज और उसके पुत्र उदयादित्य का जन्म भी नहीं हुआ था; परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि लेख के भ्रम से यह संवत् ८२१ बदल गया है क्योंकि एक-दूसरे स्थान पर चन्द चालुका राव पर बीसलदव की चढ़ाई और गुजरात-विजय का समय ९८९ बताता है। इसलिए ऐसा जान पड़ता है कि बीसलदेव का समय ८२१ न होकर ९२१ होगा। यह समय (९२१-९१+६४=१०७६ या १०२० ई०) भोज और उसके पुत्र उदयादित्य से भी ठीक-ठीक मिल जाता है और इन तीनों का समकालीन होना सम्भवतः सिद्ध हो जाता है। पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल जी पंड्या का कथन है कि राजपुताने की ख्यातियों में ९२१ के स्थान पर ९३१ मिलता है। यदि यह संवत ठीक है तो बीसलदेव का समय १०३० मानना चाहिए।

इतिहास में बीसलदेव का नाम इसलिए प्रसिद्ध है कि उसने कई बार मुसलमानों के विरुद्ध लड़ाई ठानी थी और एक बर उन्हें पुनः भारतवर्ष से निकालने में वह सफल मनोरथ हुआ था। इससे उसी युद्ध का आशय है जो राजपुताने के राजाओं ने मुहम्मद गजनवी (९९७-१०३०) के विरुद्ध ठाना था और जिसमें वे कृतकार्य हुए थे। जो बातें ऊपर कही गयी हैं उनसे यही सिद्ध होता है कि बीसलदेव बारहवीं शती में नहीं हुआ वरन् ग्यारहवीं शताब्दी के

प्रथम अर्द्ध भाग में। फीरोजशाह की लाट पर जो लेख है उसके विषय में मेरा यह सिद्धान्त है कि वह बीसलदेव ही से कोई स्पष्ट सम्बन्ध नहीं रखता। वरन् उसके नाम का उल्लेख उसमें इसलिए किया गया है कि वह विग्रहराज के प्रतापी और प्रसिद्ध पुरखाओं में से था। चौहानों के इतिहास में बीसलदेव का नाम निजदेश के हितार्थ अनेक साहसपूर्ण कार्यों के लिये अत्यन्त प्रसिद्ध है। जो दिल्ली न जीत सका उसने समझा हो कि यदि अपने नाम के साथ बीसलदेव के नाम का उल्लेख हो तो जो कालिमा मेरे यश में लग गई है वह दूर हो जाय। इसी कारण इन दोनों का नाम उस शिलालेख पर है। इससे बीसलदेव और विग्रहराज को एक ही पुरुष मानना कदापि उचित नहीं जान पड़ता।"[1]

श्री रामनारायण जी दूगड़ ने अपना विचार इस सम्बन्ध में यों प्रकट किया है :—

बीसलदेव रासो के विषय में अपनी सम्मति प्रकट करने के पूर्व में बाबू श्यामसुन्दर दास जी के मन्तव्य पर कुछ कहूँगा। उक्त बाबूजी का पृथ्वीराज रासो के बीसलदेव, ललित विग्रह राज नाटक के नायक और फीरोजशाह की लाट के लेख वाले बीसलदेव तथा राजमति के पति बीसल को एक ही पुरुष मान लेना सर्वथा अयुक्त है। उन्होंने टाड राजस्थान के अनुसार रासे वाले बीसलदेव का पृथ्वीराज से ६ पीढ़ी पहिले होना लिखकर उस बीसलदेव के समय को, बीसलदेव रासे के बीसल से मिलाने का परिश्रम उठाया है। यही कारण है कि अन्त में उन्हें लाट पर के लेख वाले विग्रहराज और बीसलदेव जुदा-जुदा पुरुष ठहराने पड़े। यदि उक्त बाबू साहब को यह मालूम होता कि चन्द के रासे और टाड साहब की दी हुई चहुवाणों की वंशावली बिलकुल रद्दी है और विग्रहराज या बीसलदेव नाम के चार राजा चहुवाणों में हुए हैं तो वे कदापि ऐसा न लिखते।

पहिला विग्रहराज या बीसलदेव चहुवाणों के मूल पुरुष चापमान या चाहमान से पाँचवीं पीढ़ी में हुआ।

दूसरा विग्रहराज (पृथ्वीराज रासे का बीसलदेव) सिंहराज का पुत्र था, जिसने अणहिलवाड़े के राजा मूलराज सोलंखी को जीतकर वहाँ बीसलपुर नाम का नगर बसाया। पृथ्वीराज रासे में इस बीसलदेव को आनलदेव (अर्णोराज) का दादा कहकर सं० ९८६ वि० तक १६५ वर्ष अजमेर में उसका राज

---

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सन् १९०१, पाँचवाँ भाग, पृ० १४१–१४४।

करना लिखा है। परन्तु वास्तव में यह विग्रहराज या बीसलदेव सं० १०३० वि० में राज करता था।[1]

बाबू श्यामसुन्दरदास जी ने अनन्द-सनन्द संवत् की कल्पना के सहारे से पृथ्वीराज रासे में दिये हुए सं० से इस बीसलदेव का समय मिलाने का श्रम किया है[2] इस बीसलदेव का मालवे परमार राजा भोजदेव का तो नहीं किन्तु उसके पिता सिन्धुराज का समकालीन होना सम्भव है; क्योंकि भोजदेव सं० १०६७ वि० से कुछ पहिले गद्दी पर बैठा था और सं० १११२ या ११११ के लगभग मृत्यु को प्राप्त हुआ या मारा गया। बीसलदेव भोज से पहले मर चुका हो क्योंकि पृथ्वीराज विजय नाम की पुस्तक और शिला-लेखों में दी हुई चहुवाणों की वंशावली के अनुसार सिंहराज के विग्रहराज या बीसलदेव, दुर्लभराज, चन्द्रराज और गोविन्दराज नाम के पुत्र थे। बीसल के पीछे दुर्लभ और उसका भाई गोविन्दराज राजा हुआ। गोविन्दराज के पीछे वाक्पतिराज दूसरा और फिर उसके छोटे भाई वीर्यराम की बारी आई। यह वीर्यराम अवन्ती के राजा भोज के हाथ से मारा गया था। वीर्यराम का उत्तराधिकारी दुर्लभराज तीसरा मालवे के राजा उदयादित्य का, 'जिसके लिये लेखों में भोजदेव का सम्बन्धी होना लिखा के हैं,' समकालीन था, जिसने सं० ११५१ वि० के निकट तक राज किया।

तीसरा विग्रहराज या बीसलदेव दुर्लभराज तीसरे का भाई था जिसका राज सं० ११५१७५ वि० के बीच में होना चाहिए। इसके लिए बिजोल्यों की प्रशस्ति में लिखी है कि श्री चण्डो रनिपेति राण बुधर श्री सिंहटो वूसलस्तद् भ्राता थत तोपि बीसल नृपः श्री राजदेवो प्रियः। अर्थात् यही बीसलराज राजमती का पति था। परन्तु यह नहीं कह सकते कि राजदेवी मालवे के राजा भोजदेव ही की कन्या थी।

चौथा विग्रहराज या बीसलदेव विजोल्यों की प्रशस्ति' में इसका नाम वीसल दिया है। 'अर्णोराज' 'आनल देव' का पुत्र और सोमेश्वर का बड़ा भाई था

---

1. E... Indica vol II, P 119. हर्षनाथ के मंदिर का शेखावटी प्रान्त में लेख।

२ — अनन्द सनन्द संवत् की कल्पना मोहनलालजी विष्णुलालजी पंड्या ने की है लेकिन कोई प्रमाण नहीं मिलता। कहीं ६० और कहीं ६१ वर्ष पृथ्वीराज रासो में दिये हुए संवतों को शुद्ध ठहराने के लिए मिलाए हैं। लेकिन इतने पर भी पृथ्वीराज के सब संवत् ठीक नहीं मिलते।

जिसका लेख देहली में फीरोज़शाह की लाट पर है[1], उसकी मृत्यु सं० १२२० वि० के लगभग होना उस लेख में पाया जाता है। इसी बीसलदेव या विग्रहराज ने तँवरों से दिल्ली का राज लिया 'सं० १२०८ वि० के लगभग' और हिमालय से विन्ध्याचल पर्यन्त देश विजय कर आर्यावर्त्त से म्लेच्छों का उच्छेद किया था। यही 'ललित विग्रहराज' नाम के नाटक का नायक था।[2] इस बीसलदेव और उसके लेख के विषय में जो अनुमान बाबू श्यामसुन्दरदास ने किया है, वह ठीक नहीं है।

अब बीसलदेव रासो के विषय में यह कहा जा सकता है कि यदि यह ग्रंथ किसी नरपति कवि ने शक सं० १२०२ या १२१० में लिखा हो तो रचयिता ऊपर दिये हुए चारों बीसलदेवों में से किसी का भी समकालीन नहीं ठहरता।

ग्रन्थकार लिखता है कि भोजदेव ने अपनी कन्या का विवाह करने को पुरोहित भेजा; वह अजमेर, अयोध्या, दिल्ली और मथुरा गया परन्तु कोई राजा उसके मन में न आया। आखिर अजमेर के बीसलदेव से उसने राजमती का विवाह ठहराया। भाटियों की ख्याति के अनुसार जैसलमेर का नगर राजा जैसल ने सं० १२१२ वि० में बसा कर अपनी राजधानी बनाया था। अतः सम्भव नहीं कि भोजदेव का पुरोहित जो राव जैसल से करीब एक सौ वर्ष पहले मर चुका था, जैसलमेर में जाता और यदि उसका जैसलमेर जाना मानें तो राजमती को भोजदेव की कन्या नहीं मानना पड़ेगा। भोज राजा के समय में दिल्ली पर अनंगपाल तँवर 'दूसरा' राज करता था, अयोध्या में शालवंशी राजाओं का राजभ्रष्ट होकर राठौड़ों का अधिकार शुरू हुआ था। मथुरा में उस समय कोई स्वतन्त्र राजा का होना पाया नहीं जाता, वह शहर दिल्ली के अधीन था। फिरिश्ता लिखता है कि ( १०१७ ई० सं० ) १०७४ वि० में सुलतान महमूद गजनवी मथुरा में गया जो किशन वासदेव का शहर कहलाता है। दिल्ली के राजा ने शहर की हिफाजत के वास्ते फौज भेजी थी मगर वह शिकस्त खाकर भाग गई और बीस दिन तक सुल्तान ने उस शहर को लूटा।' साँभर में चहुवाणों का राज भोजदेव से बहुत पहले होना पाया जाता है, चित्तौड़ का गढ़ आठवीं

---

1. Indian Antiquary Vol. 26. P. 216—1860.

२-एक ललित विग्रहराज नाटक कवि सोमदेव का बनाया हुआ और दूसरा हरकेलि नाटक खास विग्रहराजजी का बनाया हुआ अजमेर के अढ़ाई दिन के झोंपड़े में मिला था।

शताब्दी ( विक्रम की ) के अन्त में गुहिलोतों ने अवन्ती के राजाओं से ले लिया था फिर भोज का उस पर क्या अधिकार था कि वह बीसलदेव को देने से इन्कार करता। अजमेर का शहर भोजदेव के बहुत पीछे बस कर चहुवाण राजाओं की राजधानी हुआ था। संवत् १२०० वि० के लगभग तक—जब कि गुजरात का सोलंकी राजा कुमारपाल, चहुवाण राजा अरुणोराज पर आना पर चढ़ गया था—चहुवाणों की राजधानी अजमेर नहीं थी क्योंकि प्रबन्धचिन्तामणि के कर्त्ता मेरुतुंग ने अरुणोराज को नागौर व शाकम्भरी का सपादलक्षीय राजा लिखा था। इतना अवश्य है कि अजमेर का नगर अरुणोराज के पिता अजयराज ने उस समय बसा लिया था; इत्यादि अशुद्धियों से स्पष्ट है कि बीसलदेव रासो किसी बीसलदेव के समय में बना हुआ नहीं किन्तु पीछे से किसी ने लिख दिया हो और आश्चर्य नहीं कि यह ग्रन्थ पृथ्वीराज रासो के पीछे बना हो क्योंकि उसी के अनुसार बीसलदेव रासो में भी बीसलदेव की परमार और यादव कुल की दो रानियाँ होनी लिखी हैं, और सिवा इसके कि राजा बीसलदेव ने राजा भोज की कन्या राजमती से विवाह किया अन्य इतिहास-सम्बन्धी कोई बात उसमें नहीं प्राप्त होती है। ग्रन्थ की पद्य रचना और भाषा के विषय में उस समय तक ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता जबतक कि संपूर्ण ग्रन्थ न पढ़ा जावे।"

ऐतिहासिक तथ्यों पर विचार करते समय हमें यह देखना होगा कि जिन दोनों रूपान्तरों को आधार मान कर सम्प्रति सम्पादन का कार्य किया गया है उनमें कौन-कौन सी घटनाएँ दोनों में समान हैं। तथा कौन सी ऐसी घटना है जो प्रथम रूपान्तर में है, द्वितीय में नहीं और द्वितीय में है प्रथम में नहीं। विश्लेषण करने पर ऐसा होता है कि प्रथम रूपान्तर की प्रायः सभी घटनाएँ द्वितीय रूपान्तर में पाई जाती हैं। तथा द्वितीय रूपान्तर में उनके अतिरिक्त और भी अन्य घटनाओं का वर्णन है।

दोनों रूपान्तरों में समान रूप से पाई जाने वाली ऐतिहासिक घटनाओं में से प्रथम और प्रमुख घटना है चौहान वंशीय बीसलदेव का धार के राजा परमार वंशीय भोज की पुत्री राजमती के साथ विवाह का होना। इस घटना के साथ ही साथ तत्सम्बन्धी कई एक प्रश्न उठ खड़े होते हैं। बीसलदेव से कवि का तात्पर्य किस बीसलदेव से है क्योंकि इतिहास में चार बीसलदेव हो चुके हैं। दूसरा प्रश्न राजा भोज का है क्योंकि इतिहास-प्रसिद्ध राजा भोज का समय कब से कब तक था तथा समय स्थिर हो जाने के पश्चात् वह किस बीसलदेव का समकालीन था, इत्यादि बातों पर विचार करना आवश्यक हो जाता है। तृतीय

प्रश्न उठता है कि क्या इतिहास में कहीं भी राजमती का उल्लेख बीसलदेव की पत्नी के रूप में हुआ है? अथवा राजमती का उल्लेख राजा भोज की पुत्री कह कर कहीं हुआ है?

उपर्युक्त ऐतिहासिक गुत्थियों को सुलझाने के लिये आवश्यक यह होगा कि हम चौहानों और परमारों के वंश-वृक्ष को देखकर यह निर्णय करें कि राजा भोज का समय कब से कब तक था और उनके समय में चार बीसलदेवों में से कौन बीसलदेव वर्तमान था। राजा भोज का समय इतिहासकारों ने प्रस्तर लेखों, दान-पत्रों और प्रशस्तियों[1] के आधार पर वि० सं० १०७६ से ११०३ (ई० सन् १०२० से १०४२) माना है। राजा भोज के काल में चार बीसलदेवों में से कौन-से बीसलदेव वर्तमान थे, इसका समाधान चौहान राजाओं के वंश-वृक्ष के अध्ययन से सम्भव है। लेकिन इन चार बीसलदेवों के काल का निर्णय करने के पहले डा० श्यामसुन्दर दास द्वारा उठाये गये उस प्रश्न का भी समाधान आवश्यक है, कि "विग्रहराज और बीसलदेव एक ही पुरुष नहीं थे।" उनकी यह शंका निर्मूल सिद्ध हो जाती है दिल्ली के फिरोज़ शाह की लाट पर खुदी हुई निम्न वार्ता से, जहाँ बीसलदेव और विग्रहराज को एक ही व्यक्ति माना गया है:—

आर्यावर्त्तं यथार्थं पुनरपि कृतवान्म्लेच्छ-विच्छेदनाभि-
र्देवः शाकंभरीं यो जगति विजयते वीसलक्षोणिपालः।
ब्रूते संप्रति चाहमान-तिलकः शाकंभरी भूपतिः
श्री मद्विग्रहराज एष विजयी सन्तानजानात्मनः ॥१॥

संभव है कि डा० श्यामसुन्दरदास ने उपर्युक्त शंका इस कारण उठाई हो कि फिरोज़शाह की लाट पर खुदी हुई यह बात केवल विग्रहराज चतुर्थ के सम्बन्ध में है। इसमें सन्देह नहीं कि इतिहास में विग्रहराज प्रथम और द्वितीय

---

१. (क) बांसवाड़ा का दान-पत्र—यह किसी ठठेरा की विधवा पत्नी के पास दक्षिनी राजपूताने में पाया गया था और इस पर भोजदेव के हस्ताक्षर के साथ सं० १०७६ माघ सु० ५ अंकित है।

(ख) बेतवा का दान-पत्र—यह मध्य भारत में इन्दौर से पश्चिम १६ मील की दूरी पर बेतवा ग्राम में पाया गया था। इसमें राजा भोज के किसी ब्राह्मण को कोंकन विजय के अवसर पर एक गाँव देने का उल्लेख है। इसकी तिथि वि० १०७६ की भादों सु० १५ है (ई० सन् १०२० सितम्बर)।

के लिये 'बीसलदेव' का व्यवहार नहीं मिलता। लेकिन विग्रहराज तृतीय को हम्मीर महाकाव्य में "बीसल" और चतुर्थ को सेवाड़िक तथा जोहारी गाँव के शिला-लेखों में "वीसल" कहा गया है।

चौहानों के वंश-वृक्ष के अनुसार बीसलदेव द्वितीय (विग्रहराज) का, जिसने गुजरात के सोलंकी राजा पर चढ़ाई की थी, वि० सं० १०३० में विद्यमान होना मिलता है। यह बीसलदेव (विग्रहराज) प्रथम विग्रहराज से दस पीढ़ी बाद तथा चौहान राजाओं की तेरहवीं पीढ़ी में आता है। इसके द्वितीय भ्राता का नाम दुर्लभराज द्वितीय था तथा इसके पिता का नाम सिंहराज था। इसको कोई पुत्र न हुआ। इसके भाई के वंश में विग्रहराज तृतीय हुआ। इसका समय कब से कब तक था, यह इतिहास में स्पष्ट नहीं है। और इसी का वंशज विग्रहराज चतुर्थ हुआ, जिसका समय लगभग सं० १२१० से १२२१ था।[1] विग्रहराज द्वितीय और विग्रहराज चतुर्थ के बीच जिनका समय हमें इतिहास में मिलता है, १८० वर्षों का अन्तर पड़ता है। और इन दोनों के राज्यकाल

---

(ग) उज्जैन का दान-पत्र—यह दान-पत्र एक किसान ने द्वारा उज्जैन में नागझरी नामक झरने के पास जमीन खोदते हुए प्राप्त किया गया था। इस दान-पत्र के अनुसार राजा भोज ने किसी ब्राह्मण को एक गाँव दान किया है। इसकी तिथि दान-पत्र के ३० वीं और ३१ वीं पंक्ति में वि० सं० १०७८ (ई० स० १०२२) है।

(घ) देपालपुर का दान-पत्र—यह दान-पत्र इन्दौर से २४ मील दूर देपालपुर में पाया गया था। दान-पत्र की तिथि वि० सं० १०७९ चैत्र शुक्ल १४ (ई० सन् १०२२) है।

(च) यशोवर्मा का पत्र—बाम्बे प्रान्त के नासिक जिले के "कालवन" ग्राम में प्राप्त। इसमें किसी संवत् का उल्लेख नहीं है।

(छ) ब्रिटिश अजायब-घर की मूर्ति का लेख—सरस्वती की एक मूर्ति है जिसके पाद-स्थल में लिखा हुआ है, राजा भोज के राज्य वि० सं० १०९१ में बनी हुई।

(ज) तिलकवाड़ा का दान-पत्र—यह दान-पत्र बड़ौदा राज्य के तिलकवाड़ा के पास नर्मदा नदी के किनारे प्राप्त हुआ था।

दे० डाइनेस्टिक हिस्ट्री आफ़ नदर्न इण्डिया—डा० एच० सी० राय। भाग द्वितीय—पृ० ८६१।

१. वंश-वृक्ष पृ० ४६ (क) पर देखिए।

के भीतर चौहान वंश के और अन्य १२ राजा हुए। हिसाब से प्रत्येक राज का औसत राजकाल १५ वर्ष होता है। यदि इस हिसाब को ठीक माना जाय तो बीसलदेव तृतीय का समय, जो हमें इतिहास में नहीं प्राप्त है, लगभग वि० सं० ११५० होता है; क्योंकि यह विग्रहराज द्वितीय का समय वि० सं० १०३०, विग्रहराज तृतीय का वि० सं० ११५० तथा चतुर्थ का वि० सं० १२१० था और ये तीनों विग्रहराज, राजा भोज, के समय जिनका समय ऊपर कहे गये आधार पर वि० सं० १०७६ है, वर्तमान नहीं थे। इस ऐतिहासिक तथ्य से एक बहुत बड़ा असमंजस यह उपस्थित होता है कि क्या कवि नाल्ह द्वारा कही गयी राजा भोज-बीसलदेव की कथा निरी कपोलकल्पित है? इसमें तो सन्देह नहीं कि कवि नाल्ह इतिहास का पण्डित नहीं था और न उसने बीसलदेव रासो की रचना किसी ऐतिहासिक दृष्टिकोण से की थी। फिर भी इसे स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि कवि नाल्ह को इस बात का ज्ञान था कि परमार वंश और चौहान वंश का 'रोटी-बेटी' का सम्बन्ध है और बीसलदेव रासो की रचना करते समय यदि वह इतिहास के चार बीसलदेवों में से किस बीसलदेव के सम्बन्ध में कह रहा है इसका स्पष्ट उल्लेख कर देता तो शायद आज ग्रन्थ की रचना-तिथि तथा ग्रन्थ की भाषा आदि के सम्बन्ध में कोई सन्देह न रहता। लेकिन इस अभाव के कारण ही हमें ऊपर यह निर्णय कल्पना के आधार पर करना पड़ा है कि बीसलदेव तृतीय का समय क्या था और इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ा है कि इनमें कोई राजा भोज के समय वर्तमान नहीं था।

लेकिन जैसा कि ऊपर कहा गया है कि कवि की इस उक्ति में सत्यता का अंश अवश्य है जहाँ तक कवि परमार और चौहान वंश के सम्बन्ध का वर्णन करता है, क्योंकि कवि की इस उक्ति की पुष्टि पृथ्वीराज रासो[1] और बिजोल्याँ के शिला-लेख[2] में दी हुई चौहानों की वंशावली से होती है।

---

१—ऊँच धाम बिसराम किय, रंग साल चतुरंग।
प्रौढ़ा महल पवांर सौं, कहिय सुकथा प्रसंग ॥ समय १ ॥ छं० ४०६॥
पृथ्वीराज रासो ना० प्र० सभा

२—विप्रश्री वत्स गोत्रे भू दहि छत्रपुरे पुरासामंतीनंत सामंतः पूर्णतल्लो-नृपस्ततः ॥१२॥ तस्माच्छ्रीजयराजविग्रह नृपो श्री चंद गोपेन्द्र को तस्माद्दुर्लभ गूवं कौशाश नृपो गवाक सच्चंदनोश्रीमद्वप्यम राज विंध्य नृपतिः श्री सिंह राव्वि-ग्रहो श्रीमल्ल्दुर्लभ गुंदुवाकपति नृपाः श्री वीर्य रामोनुजः श्री चंडो वनिपेति राणकवर श्री सिंह टो ॥ १६ ॥ इसलस्तत्पदात्म तथनोवि बिसलो नृपः श्री राजदेवी प्रियः पृथ्वीराज नृपोथ तत्तनुभवो रासत्य देवी विभुस्ततपुत्रो जयदेव इत्यवत्रियः सोमल्लदेवी पतिः ॥ १४ ॥ जे० आर० ए० एस० (बी०) की वोल्यू २५

*(1) Vasudeva
(2) Samatraj
(3) Ajayaraj (Ajayapal)
(4) Vigraharaj (i)

(5) Chandraj (i) — (6) Gopendraraj

(7) Durlabharaj (i)
(8) Govindaraj (Guvaka i)
(9) Chandraraj
(10) Guataka (ii)
(11) Chandraraj (iii)
(12) Vakpatiraj (i)
(13) Sinharaj

(14) Vigraharaj (ii) (A. D. 973) — (15) Durlabharaj (ii)

(16) Govindraj (ii)
(17) Vakapatiraj (ii)

(18) Viryaram (About A.D.1040) — (19) Chamundaraj

(20) Durlabharaj (iii) (About A,D.1075)

(21) Vigraharaj (iii)
(22) Prithviraj (i) (A. D. 1105)
(23) Ajayaraj (sahlana)
(24) Arnoraj (Anaji) (A. D. 1140)

(25) Jugdeva — (26) Vigrahraj (iv) (About A.D.1153-1164)

* दे० Ajmer Historical and Descriptive by H. B. Sarada P. 139.

उपर्युक्त प्रमाणों से यह निश्चय तो हो गया कि परमार और चौहान वंश का आपस का सम्बन्ध था तथा यह भी निश्चय हो गया कि राजा भोज के समकालीन इन तीन बीसलदेवों में से कोई नहीं था। लेकिन जहाँ कवि ये बीसलदेव रासो में यह नहीं लिखा कि बीसलदेव से उसका अर्थ किस बीसलदेव से है, वहीं उसने यह लिखा है कि राजा भोज की पुत्री राजमती से बीसलदेव का विवाह हुआ था जिससे समझने में दुविधा हो जाती है कि कवि किस बीसलदेव की ओर संकेत कर रहा है।

बिजोल्याँ के शिला लेख से, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है यह बात प्रमाणित होती है कि बीसलदेव तृतीय की रानी का नाम राजदेवी था। बीसलदेव रासो की राजा भोज की पुत्री राजमती और यह राजदेवी एक ही रानी के सूचक होने चाहिए।[२] लेकिन चूँकि ऊपर यह प्रमाणित किया जा चुका है कि बीसलदेव तृतीय, राजा भोज का समकालीन नहीं था, वरन् राजा भोज के अंतिम समयों में राजा हुआ जिससे यह सिद्ध होता है कि सम्भवतः राजा भोज के भाई उदयादित्य ने, जिसका समय इतिहासकारों ने सं० १११६ से ११४३ वि० सं०[१] माना है और जो बीसलदेव तृतीय का समकालीन था[२], भोज की पुत्री का विवाह बीसलदेव तृतीय से किया हो।

जयानक कृत "पृथ्वीराज विजय काव्य" तथा इतिहास में इसका उल्लेख मिलता है कि वीर्यराम, जिसका उल्लेख बिजोल्याँ के शिलालेख में सिंहट के नाम से हुआ है, विग्रहराज तृतीय का पिता था और इसे अवन्ती के राजा भोज

१—ना० प्र० पत्रिका—सं० १९९७, पृ० १६८।

२—ग्वालियर में उदयपुर का शिलालेख :—इस लेख में उदयादित्य का राज्य काल वि० सं० १११६ तथा शक सं० ९८१ (ई० सन् १०५९-६०) दिया हुआ है तथा यह भी लिखा है उसने शंकर का मंदिर निर्माण करवाया।

दे०—कैप्टन हर्ट का लेख जे० ए० एस० बी० वोल्यूम ७ पृष्ठ १०५६

उदयपुर मन्दिर का शिलालेख :— यह लेख ग्वालियर के उदयपुर के मंदिर के पूर्वीय दरवाजे के भीतर सुन्दर रूप में सुरक्षित है। इसमें छः पंक्तियाँ हैं और उसमें उदयादित्य का नाम दिया हुआ है तथा तिथि वि० सं० ११३७ दी हुई है। यह लेख सम्भवतः पं० महीपाल रचित है।

ने मार डाला था।[1] इस कारण इन दोनों वंशों में अनबन हो गई थी। 'राजपूतों में ऐसी अनबन पुत्री विवाहने से मिटती थी, जिसके अनेक उदाहरण उनके इतिहास में मिलते है।[3] सम्भव है, इसी अनबन को मिटाने के लिए उदयादित्य ने अपनी भतीजी राजा भोज की पुत्री राजदेवी अथवा राजमती का विवाह बोसलदेव तृतीय से किया हो, क्योंकि जहाँ इतिहास में उपर्युक्त अनबन की कथा प्राप्य है वहीं यह वृत्त भी मिलता है कि परमार राजा भोज के अन्तिम समय उसके राज्य पर सोलंकी राजा भीमदेव प्रथम तथा चेदि के राजा कर्ण ने चढ़ाई की और राजा भोज की मृत्यु के पश्चात् उदयादित्य ने विग्रहराज तृतीय की सहायता से सोलंकी राजा कर्ण को जीता। ऐतिहासिक सत्य से यही अनुमान दृढ़ होता है कि चौहान और परमार वंश का आपसी बैर मिट गया था एवं राजा भोज की पुत्री के विवाह की सम्भावित कथा की पुष्टि भी इससे होती है।

उक्त ऐतिहासिक तत्व को प्रामाणिक मान लेने के पश्चात् यह भी स्वीकार करने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि बीसलदेव रासो की रचना बीसलदेव तृतीय तथा उनके समकालीन परमार वंशी उदयादित्य के समय में हुई होगी, जिनका राज्य काल विक्रम की बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में था। लेकिन प्राप्य प्रतियों में से किसी भी प्रति में बीसलदेव तृतीय के काल का निर्देश नहीं है। अवश्य इनके राज्य काल के पूर्वार्द्ध सं० १०७७ या १०७३ तथा उत्तरार्द्ध सं० १२१२ या ११७२ का उल्लेख प्राप्त प्रतियों में है। पूर्वार्द्ध संवत् के लिये डा० रामकुमार वर्मा ने गणना का सहारा न लेकर केवल इतना ही कहा है कि चूँकि

---

झालरा पाटन का शिलालेख—यह लेख दे० किलहार्न का लेख आई० ए० वोल्यूम २० पृ० ८३ झालावाड़ राज्य के झालरा पाटन नामक स्थान में पाया गया था। इसमें किसी तेली द्वारा शंभु के निर्माण की बात खुदी हुई है। इसकी तिथि उदयादित्य के राज्य काल वि० सं० ११४३ ( ई० सन् १०८६-८७ ) की है।

दे०, जनरल एण्ड पी० ए० एस० बी०, वोल्यूम १०, पृ० २४१।

१—अगम्यो यो नरेन्द्राणां सुधादीधिति-सुंदरः ॥

जघ्ने यशश्रयो यश्च भोजेनावन्ति-भूभुजा ॥६७॥ पंचम सर्ग

२—ना० प्र० प० सं० १९९७, पृष्ठ १६८।

यह संवत् इतिहास के अधिक समीप है इसलिए इस संवत् को मान्यता देने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। इसके विपरीत उत्तरार्द्ध संवत् के लिये डा० ओझा जी ने गणना की सहायता से तिथि वार आदि को ठीक मानते हुए कहा है कि इस ग्रन्थ की रचना प्रायः डेढ़ सौ वर्ष पश्चात् हुई थी। ग्रन्थ के नायक को बीसलदेव चतुर्थ मानने वाले विद्वानों ने इसका रचना काल १२१२ वि० सं माना है; क्योंकि बीसलदेव चतुर्थ का राज्यकाल संवत् १२१० से १२२० था। लेकिन ऐसे मानने वाले विद्वानों की आलोचना अनेक विद्वानों ने अनेक प्रकार से की है जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। एक बात विशेष रूप से दृष्टनीय यह है कि काव्यागत सारी कथाएँ केवल बीसलदेव और राजमती से सम्बन्धित हैं। यदि राजमती को कथा से पृथक् कर दिया जाय तो कथा कुछ रह ही नहीं जाती। अस्तु, राजमती और बीसलदेव के सम्बन्ध को प्रामाणिक मान कर ही हमें ऐतिहासिक तथ्यों पर विचार करना चाहिये। इस दिशा में बीसलदेव चतुर्थ से प्रसिद्ध राजा भोज की कन्या राजमती से विवाह की संभावना को न देखकर (राजा भोज से लगभग सौ वर्ष पश्चात् बीसलदेव चतुर्थ का समय सिद्ध होता है) ग्रन्थ के नायक को बीसलदेव चतुर्थ मानने वालों ने एक तर्क यह उपस्थित किया है कि "हम्मीर काव्य के कवि ने भोज द्वितीय के लिये,–'भोजो भोज इवा-परः," लिखा है। अतः यह भी अनुमान किया ज़ा सकता है कि भोजवंशीय किसी अन्य के लिये कवि नाल्ह ने भोज शब्द का व्यवहार किया है।[1] लेकिन इस आधार को मान लेने पर यह सिद्ध करने का प्रयत्न करना कि प्रसिद्ध राजा भोज के वंश के दूसरे किसी शासक की कन्या का नाम राजमती था और उसी का विवाह बीसलदेव चतुर्थ से हुआ था तथा उसी का उल्लेख कवि ने अपने ग्रन्थ में किया है बिलकुल आधारहीन जान पड़ता है। माना कि बीसलदेव तृतीय की रानी का नाम राजदेवी था राजमती नहीं, जैसा कि बिज्योल्यां के शिलालेख में प्राप्त है, लेकिन सम्पूर्ण रूप से आधार-रहित बात पर आधारित होकर यह कहने से कि किसी भोज की कन्या का नाम राजमती था और वह भोज बीसल-देव चतुर्थ का समकालीन था, यह कहना विशेष संगतपूर्ण है कि राजदेवी को ही कवि ने राजमती कहा है। सम्भव है कि बीसलदेव तृतीय की रानी राजदेवी का ही नाम अपने पितृगृह में राजमती रहा हो और विवाह हो जाने के पश्चात् वह राजदेवी कहलायी हो। और इसी कारण बिज्योल्यां के शिलालेख में 'राजदेवी' के नाम का

१—बीसलदेव रासो...सं० सत्यजीवन वर्मा...पृ० १६ भूमिका।

उल्लेख हुआ हो। यह भी संभव है कि कवि ने चूँकि राजदेवी के पितृगृह से उसका वर्णन आरम्भ किया, उसके पितृगृह में प्रचलित नाम को ही अधिक प्रिय समझ कर उसने अन्त तक इस नाम को चिरजीवित रखने के लिए उसका व्यवहार अपने ग्रन्थ में किया हो।

बीसलदेव चतुर्थ को ग्रन्थ के नायक मानने वालों का एक दल यह तर्क उपस्थित करता है कि जिस राजा भोज की कन्या का उल्लेख ग्रन्थ में है वह राजा भोज धार के परमार-वंशज महाराज भोज नहीं प्रत्युत जैसलमेर नगर के बसाने वाले महाराज जैसलदेव के भतीजे रावल भोजदेव थे जिनका समय सं० १२०५ के पश्चात् आरम्भ होता है। ये भोजदेव सुल्तान सहाबुद्दीन गोरी के सेनापति मज़ेज खाँ के साथ लड़ते-लड़ते काम आये थे। इस घटना का वर्णन निम्न दोहे से मिलता है :—

"तोड़ा धड़ तुरकाणरो, मोड़ो खान मजेज।
दाखै अनमो 'भोजरे', जादम करै न जेज॥"

बीसलदेव रासो में कवि ने स्वयं राजमती को कई स्थानों पर जैसलमेर की राजकुमारी भी कहा है। जैसे कि :—

(क) "जनमी गोरी तूँ जैसलमेर
परणी आव गढ़ अजमेर"
(ख) "गोरड़ी जैसलमेर की"

इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि राजमती जैसलमेर के महाराज भोजदेव की पुत्री थी न कि धार के प्रसिद्ध महाराज भोज की। मूल पुस्तक के लेखक ने अनेक स्थानों पर इसका स्पष्ट उल्लेख भी कर दिया था। किन्तु परवर्ती प्रक्षेपकार चारणों ने इसमें अपना प्रक्षिप्त पाठ मिलाते समय नामसाम्य के कारण प्रसिद्ध भोज ही को राजमती का पिता मानकर उसके वर्णन के अंश बाद में मिला दिये। इस प्रकार जैसलमेर आदि नगरों के नामों का इस पुस्तक में आ जाना भी कुछ इतिहास-विरुद्ध नहीं प्रतीत होता। द्वितीय और तृतीय खण्ड में सर्वत्र राजमती को जैसलमेर और मारवाड़ की राजकुमारी ही कहा गया है। प्रथम और चतुर्थ खण्ड में वह धार के राजा की पुत्री कही गयी है। इसका चतुर्थ खण्ड अनेक उपलब्ध प्रतियों में है ही नहीं, तृतीय खण्ड पर ही कथा समाप्त हो जाती है। अतः चतुर्थ खण्ड तो पूरा का पूरा प्रक्षिप्त है ही, प्रथम खण्ड का भी पर्याप्त अंश परवर्ती लेखकों की कल्पना से उत्पन्न प्रतीत होता है।[1]

---

१—हमारा हिन्दी साहित्य...भवानी शंकर त्रिवेदी पृ०—५२

लेकिन उपर्युक्त तर्क को उपस्थित करते हुए विद्वान् लेखक ने कहीं यह सिद्ध करने का प्रयास नहीं किया कि बीसलदेव चतुर्थ की रानी का नाम राजमती उसे इतिहास में मिला है अथवा जैसलमेर नगर के बसाने वाले महाराज जयसलदेव के भतीजे रावल भोजदेव की कन्या का नाम इतिहास में कहीं उसे राजमती मिलता है। तब फिर क्यों कर बीसलदेव चतुर्थ का सम्बन्ध भोजदेव ( रावल ) से स्थापित किया जाय। अब रही बात कवि द्वारा राजमती को जैसलमेर की राजकुमारी कहने की। इस सम्बन्ध में तो ग्रन्थ के रचयिता ने ही ऐसी द्विविधा पैदा कर दी कि किसी निष्कर्ष पर पहुँचना कठिन जान पड़ता है। जहाँ कवि ने राजमती को जैसलमेर की राजकुमारी कहा है वहीं ही वह राजा बीसलदेव के 'धार नगरी' में राजमती से ब्याह करने के लिये जाने की भी बात कहता है।[1] ऐसी स्थिति में प्रक्षिप्त का सहारा लेकर कुछ भी कहना ठीक न होगा। डा० माताप्रसाद जी गुप्त ने अनेक छान-बीन के पश्चात् केवल १२८ पदों को ही प्रामाणिक माना है। लेकिन इन्हीं प्रामाणिक पदों में ही जैसलमेर में राजमती के जन्म की बात तथा धार के राजा भोज की पुत्री होना दोनों बातें आती हैं। सम्भव है कि जैसलमेर विजय करने के लिये राजा भोज ( मालवाधिपति ) कभी गये हों और वहीं उन्हें कन्या-रत्न की प्राप्ति हुई हो और इसी कारण कवि ने ऐसा कहा हो अथवा यह भी सम्भव है कि राजमती को जैसलमेर की कुमारी कहकर कवि ने लक्षणा के सहारे यह कहने की चेष्टा की हो कि जैसलमेर की सुन्दरियों जैसी सुन्दर राजमती थी।

"मारवाड़ नरनीपजे, नारी जेसलमेर।
सिन्धा तुरही सांतरां, केरहल बीकानेर॥"

ग्रन्थ में वर्तमानकालिक क्रियाओं के प्रयोग के आधार पर कुछ विद्वान् ग्रन्थ के रचयिता को बीसलदेव का समकालीन तथा बीसलदेव को विग्रहराज चतुर्थ मानते हैं जिनका समय अनेक शिलालेखों तथा इतिहास से सं० १२२० से सं० १२३१ प्रमाणित हो चुका है।[2] लेकिन इस तर्क को मान लेने में यह असमंजस उपस्थित होता है कि ग्रन्थ का रचना काल जो कुछ प्रतियों में प्राप्त है और जिसके आधार पर उपर्युक्त

---

१—राजा उतर्‌य उबार मँझारि। मन माहें हरषियउ राजकुमारि॥१६॥
—बीसलदेव रासो—सं० माताप्रसाद गुप्त।

२—फीरोजशाह की लाट पर खुदवाया हुआ विग्रहराज चतुर्थ का लेख।
वि० सं० १२२० वैशाख सुदी गुरुवार॥

तर्क उपस्थित किया गया है वह 'बारह सै बहोत्तर' है जिसका अर्थ कुछ विद्वानों ने १२१२ तथा कुछ ने १२७२ लगाया है। अस्तु यदि 'बारह सै बहोत्तर' का अर्थ १२१२ माना जाय तब तो बीसलदेव चतुर्थ के राज्यकाल से ८ वर्ष पूर्व, और यदि १२७२ अर्थ लगाया जाय तो ४१ वर्ष बाद इस ग्रन्थ की रचना सिद्ध होती है; ऐसी अवस्था में कवि की समकालीनता का दावा कहाँ तक ठीक होगा यह विवाद का विषय बन जाता है। फिर डा० उदयनारायण जी तिवारी का तो यह भी कहना है कि जहाँतक क्रियाओं के प्रयोग का सम्बन्ध है, अनेक ग्रन्थ ऐसे मिलते हैं जिनमें समकालीन न होने पर भी वर्तमानकालिक क्रियाओं का प्रयोग मिलता है। प्रायः घटनाओं को सत्य का रूप देने के लिए ही कवियों ने ऐसा किया है।[1]

अजमेर के बसने का प्रश्न उठाकर कुछ विद्वान् कहते हैं कि चूँकि विग्रहराज तृतीय के समय अजमेर बसा नहीं था इसलिये इस ग्रन्थ के नायक बीसलदेव तृतीय नहीं हो सकते। ऐसे विद्वानों के मतानुसार अजमेर नगर विग्रहराज तृतीय के वंशज महाराज अजयराज ने बसाया था।[2] इसमें तो सन्देह नहीं कि वि० सं० ११६५ (ई० सं० ११०८) के लगभग चौहान अजयदेव ने अजमेर बसाकर उसे इस वंश की राजधानी बनाया। लेकिन कवि जहाँ गढ़ अजमेर का उल्लेख करता है वहीं बीसलदेव के लिये 'सइंभरिबाल' का भी।[3] और बीसलदेव, शाकंभरीश्वर या सांभरीराज अपने वंशज वासुदेव के अहिच्छत्रपुर से शाकंभरी (सांभर) में आकर अपना राज्य सं० ७४३ के लगभग कायम कर लेने के पश्चात् ही कहलाने लगे थे।[4] ज्ञात तो ऐसा होता है कि कवि को अजमेर बसने की तिथि का ज्ञान न था। और चूँकि कवि ने ग्रन्थ की रचना, विग्रहराज तृतीय के समर्थक

---

१—वीर काव्य—पं० उदयनारायण तिवारी—पृ० १६० ।

२—हमारा हिन्दी साहित्य—भवानीशंकर त्रिवेदी—पृ० ५१ ।

३—मारवाड़ का इतिहास—पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ—पृ० ६—१२ ।

४—गरब करि बोलियउ सइंभरि बाल ।
मो सारिषउ नहीं अवर भुआल ॥
म्हां घरि सइंभरि उग्रहइ ।
चिहुं दिसइं थांणा रे जेसलमेर ।
लाख तुरीय पाषर पडइ ।
गोरी राजकउ बइसणउ गढ़ अजमेर ॥ ३८ ॥ बीसलदेव रास
सं० डा० माताप्रसाद गुप्त ।

विद्वानों के मतानुसार करीब १५० वर्षों के पश्चात् की जब अजमेर बस चुका था इसलिये उसने अजमेर का उल्लेख कर दिया लेकिन बीसलदेव को सर्वदा सांभरीराज ही कहा। सांभरीराज कह कर कवि ने यह संकेत किया कि उसका उद्देश्य 'सपाद लक्ष' के राजा से है जिसमें नागौर आदि के प्रान्त और बहुत संभव है कि वह स्थान भी, जिसे बीसलदेव के वंशज अजयराज (अजयदेव) ने बसा कर उसका नाम अजमेर रखा, सम्मिलित रहा हो। और इसीलिये कवि ने शायद अपने काल के प्रचलित नाम अजमेर को लिखना विशेष उचित समझा इसके बदले कि उसके काल से डेढ़ सौ वर्ष पुराने नाम को वह लिखे। अथवा यह भी संभव है कि उस पुराने नाम से कवि परिचित ही न रहा हो।

दोनों रूपान्तरों में समान रूप से पायी जानेवाली घटनाओं में से दूसरी घटना राजा बीसलदेव की उड़ीसा यात्रा की है जिस पर ऐतिहासिक रूप से विचार किया जा सकता है। बीसलदेव तृतीय को ग्रन्थ के नायक मानने वाले विद्वानों ने इस घटना को कवि की कल्पना माना है क्योंकि इतिहास में या कहीं भी बीसलदेव तृतीय के उड़ीसा विजय करने का प्रमाण नहीं मिलता। लेकिन बीसलदेव चतुर्थ के पक्ष के समर्थकों का कहना है कि चूंकि विग्रहराज चतुर्थ के तीर्थ-यात्रा के प्रसंग में विन्ध्याचल से लेकर हिमालय तक के देशों को विजय करने का उल्लेख 'भारत के प्राचीन राजवंश'[1] में मिलता है, इसलिये कवि नाल्ह के ग्रंथ का नायक बीसलदेव चतुर्थ है।

किन्तु इस प्रमाण में कितना सत्य का अंश है यह कहना कठिन है। डा० सत्यजीवन वर्मा ने इसी प्रमाण को आधार मान कर इस प्रसंग से सम्बन्धित बीसलदेव की भावज की इस बात को कि "वह बीसलदेव उड़ीसा जाने के पूर्व भी सात बरस बाहर रहा था और इस प्रकार वह जन्म भर बाहर ही रहता है" असत्य एवं असंभव न मानते हुए कहा है कि चूकि बीसलदेव चतुर्थ अपनी वीरता और युद्ध कौशल ही के कारण अपने भाई का उत्तराधिकारी बनाया गया था इसलिए युद्धार्थ उसका सात वर्ष तक एक बार बाहर रहना असंभव नहीं।[2] इसमें तो संदेह नहीं बीसलदेव चतुर्थ, जिसका राजत्व काल वि० सं० १२१० से (क्योंकि इस समय का उसका लिखा हरकेलि नाटक मिलता है) वि० सं० १२२० तक माना जाता है, बड़ा पराक्रमी था। दिल्ली के फीरोज़

---

१—भारत के प्राचीन वंश—पृ० २४४।

२—बीसलदेव रासो—सं० सत्यजीवन वर्मा भूमिका—पृ० २०।

शाह की लाट पर बीसलदेव चतुर्थ द्वारा खुदवाए हुए लेख की पंक्तियों से यह भी ज्ञात होता है कि उसने आर्यावर्त्त को मुसलमानों से रहित कर विन्ध्य से लेकर हिमालय तक की भूमि विजय की। लेकिन इस शिलालेख में कहीं भी उड़ीसा विजय का प्रसंग नहीं आता। फिर आर्यावर्त को मुसलमानों से रहित करने का यह अर्थ नहीं होता कि भारत के प्रत्येक प्रान्त पर विजय प्राप्त की जाय। दिल्ली पर विजय प्राप्त करना ही यह अर्थ रखता था—कि सारे भारत-वर्ष पर विजय प्राप्त कर ली गई। और इतिहास के पन्ने तो यह भी सिद्ध करते हैं कि बीसलदेव चतुर्थ ने दिल्ली जिसमें हरियांक—आजकल हरियाना कहा जाने वाला प्रदेश—शामिल है तोमर राजपूतों से जीता था। इसके समय तक दिल्ली में मुसलमानों की राजधानी नहीं बनी थी। महमूद गज़नवी अवश्य समय-समय पर भारतवर्ष पर हमला करता था और लुटेरे के समान धन लूट कर अपने देश को लौट जाता था। संभव है कि इसके साथ बीसलदेव चतुर्थ को कोई लड़ाई हुई हो और इसको पराजित कर बीसलदेव ने आर्यावर्त को इसके जैसे लुटेरे से स्वतन्त्र किया हो और इसी का उल्लेख फिरोज़शाह की लाट में हो। अस्तु, किसी भी अवस्था में यह नहीं स्वीकार किया जा सकता कि बीसलदेव चतुर्थ का उड़ीसा गमन ऐतिहासिक रूप से प्रामाणिक है तथा यह भी नहीं कहा जा सकता कि युद्धार्थ बीसलदेव चतुर्थ उड़ीसा जाने के पूर्व सात वर्ष तक बाहर रहा। सम्भव है कि विन्ध्य से लेकर हिमालय तक के प्रदेशों को म्लेच्छों के आक्रमण से मुक्त करने में उसे अपने राज्य से बाहर जाने की भी आवश्यकता न पड़ी हो क्योंकि मुसलमानों के आक्रमण का द्वार तो अजमेर ही था और इस प्रकार उनके ( मुसलमानों के ) आक्रमण का सामना तो उसे अपने क़िले में ही बैठ कर करना पड़ा होगा। इसलिए उसके सात वर्ष तक बाहर रहने की कथा जिसका उल्लेख बीसलदेव रासो में हुआ है और जिसे श्री सत्यजीवन वर्मा ने सत्य प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है सत्य नहीं प्रतीत होती। इसके अतिरिक्त श्री सत्य-जीवन जी वर्मा के उस तर्क में तो कोई सार ही नहीं दिखाई पड़ता, जहाँ वे कहते हैं कि बीसलदेव का राजत्व काल सं० १२१० से १२२० तक माना जाता है, लेकिन इसने इन्हीं दश वर्षों में विन्ध्य से लेकर हिमालय तक की भूमि विजय की हो और आर्यावर्त को मुसलमानों से रहित किया हो, यह माननीय नहीं है।[1] क्योंकि अपने इस तर्क के लिये वे कोई पुष्ट प्रमाण नहीं उपस्थित करते।

---

१. बीसलदेव रासो—सं० सत्यजीवन वर्मा—भूमिका पृ० २०

उड़ीसा जाने की कथा के साथ बीसलदेव रासो में नाल्ह यह भी कहता है कि उड़ीसा जाते समय बीसलदेव ने अपना राज्य अपने भतीजे को सौंपा था। लेकिन कवि की यह उक्ति भी उसकी इतिहास से अनभिज्ञता सिद्ध करती है, क्योंकि इतिहास में कहीं भी बीसलदेव तृतीय या चतुर्थ द्वारा अपने भतीजे को राज्य सौंपने की कथा नहीं मिलती। लेकिन इस प्रसंग को भी सत्य प्रमाणित करने तथा ग्रन्थ के नायक बीसलदेव चतुर्थ को मानने के लिये श्री सत्यजीवन वर्मा जी यह तर्क उपस्थित करते हैं कि "बीसलदेव के उड़ीसा जाने का समय यदि हम विक्रम संवत् १२०७–८ ही मानें तो उस समय उसके पुत्र अमर गांगेय का जन्म नहीं हुआ था, यह मानना पड़ेगा। और यदि हम उड़ीसा प्रवास के बाद बीसलदेव का लौटना संवत १२१२ ही मानें, तो उस समय भी उसके पुत्र का होना नहीं मान सकते। संभव है कि उसके पुत्र का जन्म उसके पश्चात् हुआ हो। ऐसा हो भी सकता है, क्योंकि बीसलदेव के पश्चात् उसके पुत्र का कोई शिलालेख नहीं मिलता। इससे यह अनुमान होता है कि उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र की मृत्यु अल्प काल ही में हुई होगी। बीसलदेव और उसके पुत्र दोनों की मृत्यु संवत् १२२१ और १२२४ के बीच किसी समय हुई, यह निश्चित है।[1] अब यदि अमर गांगेय की अवस्था मृत्यु के समय दस या बारह वर्ष मानी जाय, तो उसका जन्म १२१२ के बाद ही होगा। अतएव बीसलदेव रासो के निर्माण काल के समय बीसलदेव के पुत्र का जन्म नहीं हुआ था, इसीलिये उसे अपने भतीजे को राजभार सौंपना पड़ा था।

लेकिन इतिहास से यह बात सिद्ध होती है कि बीसलदेव चतुर्थ के, जिसकी मृत्यु सं० १२२० ( ई० सन् ११६३ ) में हुई, बाद उसका पुत्र अमर गांगेय राजगद्दी पर बैठा। लेकिन जगदेव के पुत्र पृथ्वी भट्ट ( पृथ्वीराज द्वितीय ) ने उससे राजगद्दी छीन ली और स्वयं राजा बन बैठा। मेवाड़ राज्य के जहाजपुर जिले के धौड़ गाँव के पास रूठी राणी के मन्दिर के स्तम्भ पर वि० संवत् १२२५ का एक लेख खुदा है। जिसमें पृथ्वीराज को अपने भुजबल से साकम्भरी के राजा को जीतने वाला लिखा है।[2] इससे यही सिद्ध होता है कि

१—बीसलदेव रासो—सं० सत्यजीवन वर्मा—भूमिका पृ० २२।

२—अजमेर हिस्टोरिकल एण्ड डिस्क्रिप्टिव लेखक : एच० बी० सारदा—पृ० १४५

वि० सं० १२२५ में जो काल बीसलदेव चतुर्थ की मृत्यु के प्रायः पाँच या छः वर्षों के बाद आता है, पृथ्वी भट्ट ने अमर गांगेय से राज्य छीना। ऊपर कहा जा चुका है कि बीसलदेव चतुर्थ की मृत्यु सं० १२२० में हुई। अतः १२२१ से लेकर १२२५ तक अमर गांगेय ने राज्य किया और तब पृथ्वीभट्ट ने उससे राज्य छीना। इसमें संदेह नहीं कि राजगद्दी पर बैठने के समय अमर गांगेय नाबालिग था लेकिन उसका जन्म ही १२१२ में नहीं हुआ था यह कैसे माना जा सकता है। कल्पना के आधार पर यह कहना कि बीसलदेव चतुर्थ सं० १२०७ या १२०८ में उड़ीसा विजय करने गया और सं० १२१२ में वहाँ से लौटा ठीक नहीं है, क्योंकि बीसलदेव चतुर्थ का समय १२१० से १२२० तक था। यदि किसी भी रूप में यह मान लिया जाय कि बीसलदेव उड़ीसा गया था तब भी यह मानना पड़ेगा कि उसका उड़ीसा गमन निश्चय ही सं० १२१० से लेकर १२२० के भीतर हुआ होगा। ऊपर कहा जा चुका है कि राजगद्दी पर बैठने के समय बीसलदेव चतुर्थ का पुत्र अमर गांगेय नाबालिग था। यदि उसकी नाबालिगी की अवस्था राजगद्दी पर बैठने के समय दस वर्ष की भी मान ली जाय तो भी यही बात सिद्ध होती है कि उसका जन्म बीसलदेव के उड़ीसा गमन के समय तक हो चुका था। ऐसी स्थिति में बीसलदेव का अपने पुत्र को राजगद्दी न सौंप कर भतीजे को राजगद्दी सौंप कर जाने की बात की कल्पना केवल कवि-कल्पना मात्र है। फिर बीसलदेव चतुर्थ द्वारा उड़ीसा गमन के समय अपने भतीजे अर्थात् जगदेव के पुत्र पृथ्वीभट्ट को राज्य सौंपने के बात यों भी खरी नहीं उतरती कि जिस बीसलदेव ने अपने पिता की हत्या करने वाले अपने भाई जगदेव से राज्य छीन लिया था और उसे देश निकाला कर दिया था वही बीसलदेव उसको या उसी के पुत्र को क्योंकर राज्य सौंप सकता था।

बीसलदेव रासो के दोनों रूपान्तरों में समान भाव से यह कथा पाई जाती है कि बीसलदेव उड़ीसा जाने के पूर्व राजमती से बातचीत करते समय उसे बारह वर्ष की गोरी कह कर सम्बोधित करता है। इस कथा का सम्बन्ध यद्यपि इतिहास से विशेष नहीं है फिर भी ऐतिहासिक रंग चढ़ाने के हेतु श्री सत्य-जीवन जी वर्मा ने 'बारह बरस की गोरड़ी' का अर्थ युवती स्त्री से न लेकर यह माना है कि राजमती की अवस्था ब्याह के समय अल्प अर्थात् बारह वर्ष की थी क्योंकि "हिन्दुओं में उस समय अधिकतर लोग 'अष्टवर्षा भवेद् गौरी

दशवर्षा च रोहिणी' पर अन्ध विश्वास करते थे।"[1] किन्तु जिस प्रसंग के साथ उपर्युक्त पंक्ति का उल्लेख है उससे तो यही सिद्ध होता है कि बीसलदेव राजमती के सौन्दर्य की ओर इंगित कर रहा है, न कि बारह वर्ष की अवस्था में उसके विवाह की ओर। बारह वर्ष की अवस्था का उल्लेख कवि इसलिए करता है कि इस अवस्था में नारी का सौन्दर्य एक विशेष प्रकार का होता है। यह अवस्था ऐसी होती है जब बाल्यावस्था का प्रस्थान तथा किशोरावस्था का आगमन होता है। और ऐसी स्थिति में सौन्दर्य का निखर कर मनमोहक हो उठना स्वाभाविक होता है। फिर कवि-जगत् तो इस अवस्था का सर्वदा प्रशंसक रहा है। अस्तु, इस अवस्था का उल्लेख तो ऐसा ज्ञात होता है कि कवि नाल्ह ने कवि परम्परा के निर्वाह के लिये ही किया है। अवस्था के क्रम को लेकर किसी ऐतिहासिक तथ्य से उसे जोड़ना उचित नहीं जान पड़ता और न तो इससे बीसलदेव चतुर्थ से कोई सम्बन्ध स्थापित कर ग्रन्थ की रचनातिथि वि० सं० १२१२ मानना ही उचित है।

बीसलदेव रासो की दोनों रूपान्तरों में समान रूप से पायी जाने वाली उपर्युक्त ऐतिहासिक घटनाओं के अतिरिक्त रूपान्तर नं० २ में कुछ और ऐसी घटनाएँ हैं जिनको लोग इतिहास से सम्बन्धित बताते हैं। ऐसी घटनाओं में से प्रथम घटना बीसलदेव द्वारा अपने पिता के श्राद्ध और पिंडदान की है जिसे वह उड़ीसा जाने के पूर्व करता है। इस घटना के जरिये श्री सत्यजीवन जी वर्मा ने यह सिद्ध किया है कि बीसलदेव का उड़ीसा प्रवास बारह वर्ष नहीं माना जा सकता। कवि ने यों ही बारह वर्ष लिख दिया है जैसे राम के प्रवास के चौदह वर्ष।[2] निःसन्देह इस सम्बन्ध में श्री सत्यजीवन जी वर्मा द्वारा उपस्थित किया हुआ तर्क स्तुत्य है लेकिन इस घटना का इतिहास के साथ योग करने का उनका प्रयास निष्फल परिश्रम है। इस सम्बन्ध में उनका यह मानना कि बीसलदेव का उड़ीसा गमन १२०७ या १२०८ में हुआ, इतिहास की ग्रन्थियों को खोलने के बजाय और कस देता है।

दूसरी घटना बीसलदेव की अवस्था से सम्बन्धित है जो बीसलदेव के उड़ीसा गमन के पश्चात् राजमती द्वारा पांडे को पत्र लेकर उड़ीसा जाते समय

---

१—नोट—यह अंधविश्वास हिन्दुओं में मुस्लिम काल से प्रारम्भ हुआ है।
२—बीसलदेव रासो—सं० सत्यजीवन वर्मा—पृ० १८ भूमिका।

बताया जाता है। राजमती पांडे से कहती है कि उसके प्रिय को पहचानने का निशान यही है कि उसका प्रिय बीसलदेव बाइस वर्ष का जवान है। यद्यपि बीसलदेव की यह अवस्था श्री सत्यजीवन जी वर्मा को किसी अंश तक मान्य नहीं है फिर भी उन्हें कवि नाल्ह के कथन में कुछ सत्य का अंश दिखाई पड़ता है। वे कहते हैं कि "बीसलदेव अधिक अवस्था को प्राप्त होकर नहीं मरा, क्योंकि उसका पुत्र उसकी मृत्यु के समय अल्प अवस्था का था।"[1] इसमें सन्देह नहीं कि बीसलदेव के पुत्र अमरगांगेय की मृत्यु अल्प अवस्था में हुई जैसा कि इतिहास से सिद्ध होता है लेकिन इससे इस निष्कर्ष पर पहुँचना कि बीसलदेव की अवस्था भी छोटी थी उचित नहीं जान पड़ता। बीसलदेव की अवस्था का हिसाब किसी हद तक लगाना सम्भव था यदि हमें इतिहास में उसके पिता की अवस्था का कोई उल्लेख मिलता। यों इतिहास में अर्णोराज ( बीसलदेव चतुर्थ के पिता ) का राज्यकाल वि० सं० ११९७ से १२०८ तक माना गया है जो गणना करने पर ११ वर्ष होता है। और इसी प्रकार बीसलदेव चतुर्थ का भी राज्यकाल वि० सं० १२१० से १२२१ तक माना जाता है जो गणना करने पर ११ वर्ष होता है। यदि बीसलदेव रासो में दी हुई बीसलदेव की अवस्था उड़ीसा गमन के समय २२ वर्ष की मानी जाय तो यह मानना पड़ेगा कि उसका जन्म वि० सं० ११८७ से पूर्व हुआ होगा जो कि पूर्ण रूप से कल्पना पर आधारित होगा। और यदि उसका जन्म काल उसके पिता के राज्यारम्भ में माना जाय तो यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि उसकी मृत्यु २२ वर्ष की अवस्था में हुई होगी। ऐसी स्थिति में बारह वर्षों तक उसका उड़ीसा में रहना अथवा उसकी अवस्था का २२ वर्ष का उल्लेख सब कुछ कवि कल्पना ठहरता है। उचित तो यह जान पड़ता है कि २२ वर्ष की अवस्था के उल्लेख से कवि का तात्पर्य उसकी युवावस्था से है।

तीसरा प्रसंग बीसलदेव रासो में आनासागर के उल्लेख का है जो कि बीसलदेव को 'धार' से लौटते समय रास्ते में मिला था। इस घटना को सत्य का रूप देकर बीसलदेव रासो के नायक को बीसलदेव चतुर्थ बताने वाले विद्वानों ने यह तर्क उपस्थित किया है कि चूँकि आनासागर बीसलदेव चतुर्थ के पिता अर्णोराज ने बनवाया था और यह बीसलदेव तृतीय के समय वर्तमान नहीं था इसलिये बीसलदेव रासो के नायक बीसलदेव चतुर्थ थे नकि बीसलदेव

---

१— बीसलदेव रासो सं० सत्यजीवन वर्मा—पृ० २४ भूमिका।

तृतीय। इतिहास में अवश्य अनासागर के लिये यह लिखा गया है कि इसे सम्राट् पृथ्वीराज के दादा अर्णोराज या अनाजी ने बनवाया था।[1] लेकिन डा० श्यामसुन्दरदास जी का कहना है कि अनाजी द्वारा बनवाया गया अनासागर उस अनासागर से बिल्कुल भिन्न हैं जहाँ बीसलदेव ने धार से लौटते समय विश्राम किया था। धार से लौटते समय बीसलदेव ने जिस अनासागर पर विश्राम किया था वह अनासागर हिन्दुओं की 'अन्ना' या 'अन्नपूर्णादेवी' के नाम पर एक प्राकृतिक झील है जिसके किनारे पुराकाल में 'वाण' ऋषि रहते थे।[2] बीसलदेव रासो में उल्लिखित 'अनासागर' के वाद-विवाद में पड़ना उस समय बिल्कुल निरर्थक जान पड़ता है जब हम यह देखते हैं कि रूपान्तर नं० २ के जिस सर्ग ( चतुर्थ सर्ग ) में इसका उल्लेख है वह पूर्ण सर्ग ही प्रक्षिप्त है।

उपर्युक्त ऐतिहासिक घटनाओं के विवेचन से निष्कर्ष यह निकलता है कि बीसलदेव रासो में उल्लिखित घटनाओं का सम्बन्ध इतिहास से बहुत कम है अथवा यह भी कहा जा सकता है कि ग्रन्थ के रचयिता को इतिहास का ज्ञान यथेष्ट न था। अतः इन घटनाओं के आधार पर बीसलदेव रासो के निर्माणकाल का निर्णय करना खतरे से खाली नहीं।

## काव्यागत कथा एवं काव्य का रचयिता

नारी के चरित्र को समझना साधारण मनुष्यों के लिए तो दूर काव्य के मूल वेदों के रचने वाले कवियों[3] के लिए भी एक समस्या है। ऐसा प्रतीत होता है कि नारी के चरित्र की विषमताओं को देखकर ही किसी कवि ने कहा था कि "स्त्रियाश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति कुतो मनुष्यः।" बीसलदेव रासो की कथा भी रानी राजमती के चरित्रविशेष का वह उद्घाटन है जिसके कारण चौहानवंशी पराक्रमी राजा बीसलदेव को भी अपना राजपाट छोड़ कर बारह वर्ष तक बाहर रहना पड़ा था। नारी की वाणी ही उसके द्वारा प्राप्त किये हुए सारे सद्गुणों को नष्ट कर देती है। कवि नारद कहता है कि :—

---

१—Ajmer Historical & Descriptive—H. B. Sarada P. 60

२—हिन्दी हस्तलिखित खोज ग्रन्थों की रिपोर्ट सन् १९०१ पृ० ७८।

३—वेद काव्य का मूल है, अतएव सच्चिदानन्द घन श्री परमेश्वर द्वारा ही लोक में सबसे प्रथम इसकी प्रवृत्ति हुई है।

काव्यकल्पद्रुम—प्रथम भाग पृ० ८.

स्त्रीय चरित्र धण लष लहइ।
एक ही अच्चर सरब बिणास ।।

कवि कथा का प्रारम्भ गणेश की वन्दना और सरस्वती से यह वर माँगते हुए करता है कि वह उसकी भूली हुई काव्यशक्ति को उसे लौटा दें ताकि वह ग्रन्थ की रचना करने में समर्थ हो सके। तत्पश्चात् कवि राजा भोज की सभा का वर्णन करता है। महाराज भोज की रानी उनसे प्रस्ताव करती है कि वे अपने अच्छे दिन रहते राजकुमारी का विवाह कर दें। रानी के इस प्रस्तावानुसार राजा ज्योतिषी को बुलाकर अपनी कन्या के लिये सुयोग्य वर खोजने के लिये आग्रह और निवेदन करता है,[1] तथा यह भी कहता है कि वह ( ज्योतिषी ) वीर विचक्षण बीसलदेव चौहान को, जो हर प्रकार से उसकी कन्या के योग्य है, उसकी कन्या के लिये वर चुने। ज्योतिषी द्वारा शुभ सूचना प्राप्त होने पर राजा भोज लग्न निश्चित करता है और लग्न की सुपारी ब्राह्मण और भाँट के हाथ अजमेरगढ़ भेजता है। अजमेरगढ़ पहुँचकर ब्राह्मण लग्न की सुपारी बीसलदेव को देता है जिसे प्राप्त कर बीसलदेव हर्षित होता है और कहता है कि परमार जाति की कन्या के कुल में आने पर चौहान कुल का उद्धार हो जायगा। यह कहकर बीसलदेव ब्राह्मण और भाँट को नाना प्रकार की बहुमूल्य भेंट देकर उनको विदा करता है।

निश्चित तिथि पर बारात अजमेरगढ़ से प्रस्थान करती है। बारात में इतने अधिक घोड़े, हाथी, सैनिक तथा बराती हैं कि उनके पदों की धूल उड़ने से सूर्य आच्छादित हो जाता है और इस बड़ी बारात के साथ राजा बीसलदेव धार नगरी में पहुँचता है। राजमती राजा बीसलदेव को देखकर बहुत हर्षित होती है तथा अपनी सखियों से कहती है कि सम्पूर्ण कलाओं से युक्त पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति, स्वर्ग के देवताओं और मनुष्यों को मोहित करने वाले तथा गोकुल में प्रत्यक्ष गोविंद की भाँति बीसलदेव की आरती उतारो

---

१—रूपान्तर नं० २ में राजा भोज की अनुमति से उनका पुरोहित वर ढूंढ़ता हुआ चारों ओर जाता है। जैसलमेर, तोड़ा, अयोध्या, दिल्ली, मथुरा आदि स्थानों में जाकर राजमती के लिये वर ढूंढ़ता है लेकिन उसे राजमती के अनुरूप कोई वर इन स्थानों में नहीं मिलता। तब वह अजमेर जाता है और बीसलराय को देखता है। इन्हें देखकर वह इनको राजमती के उपयुक्त हर प्रकार से पाता है और इसकी सूचना राजा भोज को देता है।

जाय। इसी बीच बारात राजद्वार पर आती है। राजा बीसलदेव तोरण के नीचे सूर्य के समान उदित होता है और सजी-बजी स्त्रियाँ उसकी आरती उतारती हैं। शुभ मुहूर्त में राजा बीसलदेव और कुमारी राजमती का पाणिग्रहण सम्पन्न होता है। विवाह-मण्डप में बीसलदेव और राजमती कृष्ण और रुक्मिणी की तरह सुशोभित होते हैं।

मालवा देश में बड़े उत्सव मनाये जाते हैं। भाँवर के समय पहले फेरे के पायज में बीसलदेव को राजा भोज आलीसर ( स्थान विशेष ) तथा मालदेश ( स्थान विशेष ) देता है। दूसरे फेरे पर राजकुमारी की माता भानुमती अपने दामाद को अर्थ, द्रव्य का भण्डार, सपादलक्ष देश, तोड़ा, टउंक, बूँदी और कुडालदेश देती है। तीसरे फेरे पर राजा भोज राजमती के साथ ताजी और केकांण ( घोड़े ) मंडोवर का देश तथा समुद्र के साथ सोरठ और समस्त गुजरात देता है।[1] पाणिग्रहण सानन्द समाप्त होता है। बीसलदेव अपनी सास को नमस्कार करने के लिये जाता है और रानी भानुमती 'अजमेर' में अविचल राज्य करने का आशीर्वाद उसको देती हैं।

पहिरावनी (वस्त्र-भूषणादि पहनाने का रस्म) होती है। सुहावनी धार नगरी को छोड़कर धार का दीपक ( राजमती ) अजमेर गढ़ को प्रदीप्त करने चलता है।[2] बारात के लौटने पर अजमेर गढ़ में बड़ा हर्ष मनाया जाता है और राजा अपने मंत्री से कहता है कि "या तो मुझसे सृष्टिकर्ता प्रसन्न हुआ या मैंने विधि का लिखा प्राप्त किया, जो मैं राजा भोज की चौरी पर चढ़ा अर्थात् राजा भोज की कन्या का पाणिग्रहण किया।"[3]

---

१—नोट—रूपान्तर नं० २ में फेरों के समय पायज स्वरूप दिये हुए स्थानों के नाम में अन्तर है। इस रूपान्तर के अनसार प्रथम फेरे में 'आलीस' और कुडाल देश देने का, दूसरे फेरे में घोड़े, धन, मडोवर, सौराष्ट्र और गुजरात देने का, तीसरे फेरे में सांभर, तोड़ा, और टोंक देने का तथा चौथे फेरे में चित्तौड़ देने का वर्णन है। रूपान्तर नं० १ में चौथे फेरे का कोई वर्णन ही नहीं है।

२—रूपान्तर नं० २ में विवाह के पश्चात् अजमेर लौटते समय रास्ते में 'अनासागर' मिलने का उल्लेख है। लेकिन ऐसा कोई उल्लेख रूपान्तर नं० १ में नहीं है।

३—नोट—रूपान्तर नं० २ में प्रथम खण्ड की कथा यहीं समाप्त होती है और द्वितीय खण्ड की कथा कवि पुनः गणेश की वंदना करके आरम्भ करता है।

एक दिन राज्य तथा धन-सम्पत्ति के सम्बन्ध में रानी राजमती तथा बीसलदेव में वाद-विवाद चल पड़ता है। राजा गर्वपूर्वक कहता है कि उसके समान दूसरा भूपाल नहीं है। रानी इस गर्वोक्ति को सुनकर कहती है कि उसका यह गर्व व्यर्थ है, क्योंकि उससे विशेष धनी तो उड़ीसा का राजा है जिसके राज्य में हीरे ही हीरे खानों से निकलते हैं। उड़ीसा देश की यह वार्ता सुनकर राजा रानी से कहता है कि उसका ( रानी का ) जन्म तो जेसलमेर में हुआ और विवाह अजमेर में, अतएव वह उड़ीसा देश के सम्बन्ध में उपर्युक्त बातें क्योंकर जानती है। इस विषय में जब तक वह नहीं बतावेगी तबतक वह ( राजा ) अन्न-पानी नहीं ग्रहण करेगा। राजा के इस आग्रह पर रानी अपने पूर्व जन्म की कथा बतलाती है कि कैसे वह पूर्व जन्म में हरिणी के रूप में उड़ीसा में रहती थी और कैसे एक अहेरी द्वारा मारे जाने पर उसने उड़ीसा में फिर जन्म न देने की दैव से प्रार्थना की थी तथा उसका धार नगरी में जन्म हुआ था।

रानी की यह बात सुनकर राजा कहता है कि "हे गोरी तूने उपर्युक्त बातें कहकर मेरी निंदा की। अतः अब मैं तुझे छोड़कर बारह वर्षों तक प्रवास करूँगा। ताकि मैं भी हीरे की खान अपने घर ला सकूं। राजा के इन वचनों को सुनकर रानी बड़ी दुखी होती है और कवि इस स्थान पर ऐसी परिस्थितियों के उपस्थित होने पर नारी द्वारा अपने पति को प्रवास से रोकने के हेतु अपनाये गये सभी उपायों का वर्णन रानी राजमती से करवाता है। लेकिन राजा उसकी किसी बात पर ध्यान नहीं देता और प्रवास के लिये हठ करता है। अन्त में राजमती की भावज भी राजा को अनेक प्रकार से समझा-बुझा कर और कुछ कड़ुवी बातें कहकर उसे परदेश गमन से रोकने की चेष्टा करती है। फिर भी राजा परदेश गमन का हठ नहीं त्यागता।

राजा ज्योतिषी को बुलाकर यात्रा के लिये शुभ दिन और मुहूर्त पूछता है। लेकिन रानी ज्योतिषी से इसके पहले ही राजा की यात्रा का मुहूर्त चार महीने पश्चात् बतलाने का आग्रह कर चुकी थी क्योंकि उसे पूर्ण विश्वास था कि इन चार महीनों के अन्दर वह अपने पति को परदेश जाने से रोक सकने में समर्थ हो सकेगी। ज्योतिषी रानी के आग्रहानुसार ही राजा को चार महीने पश्चात् का यात्रा का मुहूर्त बतलाता है।

कार्तिक मास में ज्योतिषी द्वारा बताये गये शुभ मुहूर्त में राजा परदेश गमन करता है। भीगे हुए नेत्रों से रानी राजा को विदा करती है और नीति की शिक्षा देती है। राजा को विदा करके रानी की अवस्था बड़ी दुःखद हो जाती

है। राजा के विरह में उसे अपने तन-मन का भी स्मरण नहीं रहता। सखियाँ उसे बहुत समझाती हैं लेकिन उसकी विरह वेदना किसी प्रकार कम नहीं होती।[1] कवि इसके पश्चात् बारह महीनों का वर्णन करते हुए प्रत्येक महीने में रानी के विरह वेदना की विभिन्न परिस्थितियों का मर्मस्पर्शी वर्णन करता है। रानी की दशा तो राजा के विरह में इधर खराब होती है उधर राजा को रास्ते में शुभ शकुन होते हैं और वह अपनी यात्रा निर्विघ्न समाप्त करता चलता है।

क्रमशः समय व्यतीत होता रहता है लेकिन रानी की व्यथा बढ़ती ही जाती है। उसके यौवन की दावाग्नि विरहाग्नि को द्विगुणित कर देती है। अन्त में वह राजा के पास एक दूत भेजती है। दूत को अपने पति की पहचान बताती है और एक मर्मस्पर्शी पत्र राजा को देने के लिये उसे देती है। उपालंभ और दुःख से यह पत्र परिपूर्ण है। दूत पत्र लेकर राजमती को वचन देता है कि वह दुःख न करे क्योंकि वह उसके स्वामी को अवश्य लेकर लौटेगा। रानी उसे शकुन की सामग्री देती और विदा करती है।

सातवें महीने दूत उड़ीसा पहुँचता है। राजा को रानी का पत्र देता है और कहता है कि "रानी राजमती ने यह संदेश भेजा है कि हे स्वामी ! तुम घर आओ। क्योंकि पुनः इस जीवन में यौवन लाभ कहाँ करोगे ?" पुनः दूत कहता है कि "हे राजा, यदि तुम आज नहीं चलते हो तो उस स्त्री का हृदय फट जायगा और वह ( राजमती ) मर जायगी।" राजा पंडित के इन शब्दों को सुनकर व्याकुल हो जाता है और उड़ीसा के राजा से घर लौटने की अनुमति चाहता है। उड़ीसा का राजा अपनी रानी को बुलाकर बीसलदेव के स्वदेश गमन की बात कहता है। रानी अनेक प्रकार से बीसलदेव को घर जाने से रोकती है। लेकिन बीसलदेव किसी प्रकार भी अब रुकने को तैयार नहीं होता। तब उड़ीसा का राजा बीसलदेव से कहता है कि उसके नगर में एक ऐसा अपूर्व योगी है जो बहुत शीघ्र सांभर जा सकता है। बीसलदेव इस समाचार को सुनकर एक दिन के लिए उड़ीसा में रुक जाता है और उस योगी के हाथ राजमती के पास अपने आने का समाचार भेजता है।

योगी राजा बीसलदेव का पत्र लेकर उड़ीसा से रवाना होता है और राजमती की बायीं बाँह तथा आँख फड़क-फड़क कर इस बात की सूचना देती हैं कि या तो उसके स्वामी मिलेंगे या उनका कोई प्रेमपूर्ण पत्र ही प्राप्त होगा। योगी-

१ नोट—रूपान्तर नं० २ में द्वितीय खण्ड की कथा यहीं समाप्त होती है।

राजमती के शुभ शकुनों को सत्य प्रमाणित करता हुआ अजमेर पहुँच जाता है और राजमती को राजा का पत्र देता है। पत्र को राजमती गले से लगा लेती है और योगी को अच्छे भोजन आदि कराकर अपने प्रियतमकी बातें पूछती है। योगी रानी को आज के तीसरे दिन राजा के अजमेर पहुँचने का शुभ समाचार देता है और अनेक प्रकार से रानी द्वारा पुरस्कृत होकर अपने स्थान को लौटता है।

योगी के कथनानुसार राजा बीसलदेव तीसरे दिन अजमेर लौटता है। अजमेर में उस दिन बड़ी खुशियाँ मनायी जाती हैं। रानी राजमती के हर्ष की कोई सीमा नहीं रहती और वह यह सोचकर अपने मन में और भी हर्षित होती है कि पति के प्रवास की इस लम्बी अवधि में उसे कोई कलंक नहीं लगा जो कि इस यौवन और बढ़ती हुई विरह ज्वाला में लगना बहुत सहज और स्वाभाविक था। कवि इसके पश्चात् कुछ पंक्तियों में प्रेम और प्रेमिका को उन दशाओं तथा बातों का वर्णन बड़े स्वाभाविक रूप से करता है जो प्रायः लम्बी अवधि के प्रवास के पश्चात् प्रेमी और प्रेमिका में होती हैं। अन्तिम पंक्तियों में कवि यह शुभकामना प्रकट करते हुए कि जिस प्रकार रानी राजा से मिली उसी प्रकार संसार में सभी मिलें ग्रन्थ समाप्त करता है।

प्रथम रूपान्तर की कथा उपर्युक्त स्थान पर शेष हो जाती है। लेकिन द्वितीय रूपान्तर में इसके पश्चात् चतुर्थ खण्ड की कथा आरम्भ होती है। इस खण्ड में कवि हनुमान की वन्दना करके धार नगरी से राजा भोज का आना वर्णन करता है। बीसलदेव के अजमेर पहुँचने पर उसका भतीजा राजा बीसलदेव का स्वागत करता है। राजा उसे युवराज के पद पर स्थापित कर चितौड़ में उसे रहने का स्थान देता है। फिर राजा भोज को अजमेर आने के लिये पुरोहित के हाथ निमन्त्रण भेजता है। राजा भोज बीसलदेव के निमन्त्रण पर अजमेर आता है। दोनों राजा मिलकर अतीव प्रसन्न होते हैं। अजमेर में भी आनन्द मनाया जाता है। राजा भोज कुछ दिनों तक अजमेर में रहकर अपनी राजधानी को लौट जाता है, और राजमती को अपने साथ ले जाता है। तीन महीने पश्चात् फिर रानी राजमती को लेने बीसलदेव धार जाता है और रानी को लेकर वापस लौटता है। चतुर्थ खण्ड की कथा कवि यहीं पर यह आशीर्वाद देकर समाप्त करता है कि "जब तक पृथ्वी पर सूर्य उदय होते रहें, जब तक गंगा में जल प्रवाहित होता रहे, जबतक पृथ्वी पर जगन्नाथ रहें, तबतक राजा तुम अजमेर पर अविचल राज्य करते रहो।"

# बीसलदेव रासो का रचयिता

बीसलदेव रासो के रचना-काल की गुत्थी को सुलझाना जितना जटिल है उससे कम जटिल उसके प्रणेता के प्रादुर्भाव-काल नाम और जाति की गुत्थी का सुलझाना नहीं। बीसलदेव रासो की यद्यपि अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्य हैं लेकिन उनमें से किसी भी प्रति में कवि के प्रादुर्भाव-काल का ऐसा संकेत नहीं मिलता जिसके आधार पर निश्चित रूप से कहा जा सके कि कवि का जन्म अमुक तिथि को हुआ था। इन हस्तलिखित प्रतियों में ग्रन्थ का रचना-काल अवश्य दिया हुआ है जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि ग्रन्थों के रचयिता ने भी उसी काल में जन्म ग्रहण किया होगा; लेकिन इस बात को स्वीकार करने में सबसे बड़ी समस्या हस्तलिखित प्रतियों में प्राप्त रचना-काल की वे तिथियाँ हैं जो विभिन्न प्रतियों में विभिन्न रूपों में पायी जाती है। समस्त हस्तलिखित प्रतियों में प्राप्त रचना-तिथि के आधार पर मुख्यत: प्रतियों के दो विभिन्न भाग किये जा सकते हैं—प्रथम भाग में वे सभी प्रतियाँ आ जायेंगी जिनमें रचना-काल का उल्लेख ११वीं शती है, और दूसरे भाग में अन्य वे सभी प्रतियाँ आवेंगी जिनका रचना-काल १२वीं शती ठहरता है। जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। अस्तु ऐसी परिस्थिति में कवि का जन्म-काल ११वीं और १२वीं शती दोनों मानना पड़ेगा, जिसे स्वीकार करना सम्भव नहीं। तब यदि रचना-तिथि का निर्णय कर लिया जाय तो कवि के जन्म-काल का भी निर्णय करना सहज हो जायगा।

रचना-तिथि का निर्णय ग्रन्थ में प्राप्त ऐतिहासिक तत्वों और भाषा के आधार पर किया गया है, तथा इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया है कि इसकी भाषा ११००-१२०० वि० सं० की है और इसका नायक बीसलदेव तृतीय है। लेकिन इस निष्कर्ष पर पहुँच कर भी कवि के जन्म-तिथि की समस्या ज्यों की त्यों रह जाती है क्योंकि गणना के अनुसार हस्तलिखित प्रतियों में प्राप्त रचना-तिथियों में से सर्वाधिक प्रामाणिक तिथि वि० स० १२१२ ठहरती है। इसी समस्या को सुलझाने के लिए सम्भवतः श्री सत्य जीवन जी वर्मा ने ग्रन्थकार को बीसलदेव चतुर्थ विग्रहराज चतुर्थ का, जिनका समय वि० स० १२१०-१२२० माना जाता है, समकालीन माना है। प्रगट किये गये अपने इस मत के प्रमाण में श्री वर्मा जी ने दो तर्क उपस्थित किये हैं—पहला तो ग्रन्थ में प्रायः सर्वत्र वर्तमानकालिक क्रिया का प्रयोग किया जाना और दूसरा रचना-तिथि के सम्बन्ध में आयी

हुई पंक्ति बारह सौ बहोत्तर का अर्थ १२१२ लगाना[1]। लेकिन उनके इन दोनों तर्कों में से प्रथम तर्क का खण्डन निम्नलिखित विद्वानों ने इस प्रकार किया है। प्रसिद्ध विद्वान श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने इसका खण्डन करते हुए कहा है कि भाषा का प्रयोग कवि की रुचि पर निर्भर है। जैनों के धर्मग्रन्थ प्राकृत भाषा में होने के कारण जैन लेखक अपने काव्यों में प्राकृत शब्दों की भरमार करते रहे हैं। जिससे उनकी भाषा दुरूह हो गयी है। चारण, भाट आदि प्राकृत से अधिक परिचित न होने के कारण अपनी रचनाएँ प्रचलित भाषा में करते थे, जिससे इन दोनों प्रकार के लेखकों की पुस्तकों की भाषा में अन्तर होना स्वाभाविक ही है। भाषा की कसौटी सदियाँ नहीं है। एक ही समय में कोई सरल भाषा में अपनी रचना करता है तो कोई कठिन भाषा का प्रयोग करता है[2]।

डा० उदयनारायण तिवारी ने भी ओझा जी के मत को पुष्ट किया है[3] और यह भी कहा है कि जहाँ तक क्रियाओं का सम्बन्ध है अनेक ग्रन्थ ऐसे मिलते हैं जिनमें समकालीन न होने पर भी वर्तमानकालिक क्रियाओं का प्रयोग मिलता है। प्रायः घटनाओं को सत्य का रूप देने के लिये ही कवियों ने ऐसा किया है।

श्री वर्मा जी का दूसरा तर्क जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है कुछ हद तक ठीक है क्योंकि वि० सं० १२१२ की गणना करने पर जेठ वदी नवमी को बुधवार पड़ता है। लेकिन इस तिथि और संवत् को ठीक मानने का यह अर्थ नहीं कि इस रासो के रचयिता ने वीसलदेव चतुर्थ के सम्बन्ध में कहा है और ग्रन्थ का नायक विग्रहराज चतुर्थ है क्योंकि ग्रन्थ में पायी गयी कथा इस बीसलदेव से सम्बन्धित नहीं है वरन ऐतिहासिक आधार पर कथा का सम्बन्ध तृतीय वीसलदेव से है।

अस्तु; उपर्युक्त सभी प्रमाणों द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि इस ग्रन्थ के रचयिता का प्रादुर्भाव-काल १३वीं शती का पूर्वार्द्ध था। उसकी भाषा प्राचीन थी अर्थात् ११००-१२०० वि० सं० की थी तथा उसके ग्रन्थ के नायक थे बीसलदेव। तृतीय अन्तःसाक्ष्य के अभाव में जहाँ कवि के प्रादुर्भाव-काल का निर्णय करना जटिल है वहीं उसकी रचना में यत्र-तत्र उसके नाम के उल्लेख के कारण यह सिद्ध होता है कि इस रासो की रचना करने वाला कोई नरपति

---

१—वीसलदेव रासो—पृ० ७।

२—नागरीप्रचारिणी पत्रिका—सं० १९८५ पृ० १०१।

३—वीर काव्य पृ० २००।

नामक कवि था। लेकिन इस नाम के सम्बन्ध में भी डॉ० उदयनारायणजी तिवारी तथा श्री सत्यजीवन जी वर्मा जैसे विद्वानों का मत है कि नरपति कवि का मुख्य नाम तथा नाल्ह कौटुम्बिक नाम प्रतीत होता है।[1]

इसी प्रकार रासो की निम्न दो पंक्तियों को उद्धृत कर यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि नरपति और नाल्ह दो विभिन्न व्यक्ति थे और नरपति द्वारा गाई गई इस रासो को नाल्ह ने फिर से गाया।

कर जोड़ि नरपति कहई।
नाल्ह कहई जिण लावई खोड़ि॥

कवि के नाम के सम्बन्ध में ये भ्रम सं० १६६९ में लिखी गई प्रति तथा इससे मिलती-जुलती अन्य प्रतियों में कवि के दोनों नामों के उल्लेख के कारण उत्पन्न हो गये हैं लेकिन ऐसी प्रतियों में चूँकि बीसलदेव तृतीय और रानी राजमती की प्रेमगाथा चार खण्डों में गायी गयी है इसलिये इनकी प्रामाणिकता में सन्देह उत्पन होता है। और, तब इन प्रतियों के आधार पर नरपति और नाल्ह को दो विभिन्न कवि मानना उपयुक्त न होगा। उपर्युक्त दोनों पंक्तियाँ भी सं० १६६९ में लिखी गई प्रति से उद्धृत की गई हैं। इन पंक्तियों का अर्थ साधारण रूप से एक ही व्यक्ति के नाम का बोधक है; खींच तान कर इसका अर्थ दो विभिन्न व्यक्तियों के लिये लगा भले ही लिया जाय। फिर १६६९ वाली प्रति से अधिक प्रामाणिक और प्राचीन प्रति १६३३ वाली प्रति के, जो अबतक की प्राप्त प्रतियों में प्राचीनतम है, आधार पर यही कहा जा सकता है कि नरपति और नाल्ह दोनों एक ही व्यक्ति थे। इस प्रति में कवि का नाम 'नरपति' पहले पद के अतिरिक्त और कहीं नहीं आता।[2]

इसी प्रकार नाल्ह भी इसकी पद्य-संख्या ४,५ और इसके अतिरिक्त कहीं नहीं मिलता[3] उसके द्वारा यही सिद्ध होता है कि कवि का प्रचलित नाम नाल्ह था।

---

१—वीरकाव्य पृ० १९०।

२—करि जोड़ि नरपति भणई।
जाणि करि रोहणी जिमि तपउ सूरि॥१॥

३—तइ तूठी अक्षर जूरइ।
नाल्ह रसायण रस भरी गाइ।
तुणी कई सारदा त्रिभुवन माय॥५॥
संवत् सहस सत्तिहित्तरइ जाणि।
नाल्ह कवीसरि कही अमृत वाणि॥२४॥

क्योंकि प्रचलित होने के कारण ही इस नाम का उपयोग एक स्थान से अधिक स्थानों में किया गया है और नरपति कवि का उपनाम इसलिये प्रतीत होता है कि इसका प्रयोग केवल एक स्थान पर हुआ है और वह भी हुआ केवल तुक के मेल के लिये ही।

कवि का नरपति नाम 'उपनाम' कतिपय विद्वानों में यह भ्रम उत्पन्न किये हुए है कि कवि कोई राजा था।[1] ऐसे भ्रम का कारण केवल एक यही हो सकता। है कि नरपति का शाब्दिक अर्थ राजा होता है। लेकिन जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि इस शब्द का प्रयोग प्राप्त प्रतियों में प्राचीनतम प्रति में केवल एक स्थान पर हुआ है और उस स्थान पर इसका अर्थ कदापि राजा नहीं हो सकता, इसलिये इस शब्द का अर्थ राजा लगाकर नाल्ह और नरपति को दो विभिन्न व्यक्ति मानना उचित न होगा। लेकिन यदि किसी कारणवश नरपति का अर्थ राजा लगाना ही, विद्वानों द्वारा उचित समझा जाय तब भी श्रेयस्कर यही होगा कि नाल्ह और नरपति को दो विभिन्न व्यक्ति न मानकर नरपति को नाल्ह की उपाधि समझी जाय, जो बहुत कुछ सम्भव है कि उसे प्राप्त हुई होगी उसके गुणों के कारण। और यों भी कवि नरपुंगव तो होते ही हैं।

## कवि की जाति

कवि के नाम की तरह कवि की जाति के सम्बन्ध में भी विद्वानों के विभिन्न मत हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार कवि भाट जाति का था।[2] श्रीसत्य-जीवन वर्मा जी भी इसी मत को पुष्ट करते हुए कहते हैं कि नरपति साधारण भाट था जो इधर उधर तुकबंदियाँ करके गाता फिरता था। और अपने इस मत की पुष्टि में वे डा० गौरीशंकर हीराचन्द जी ओझा द्वारा प्राप्त एक पत्र का उल्लेख करते हैं जिसमें डा० ओझा ने उन्हें लिखा है कि राजपूतों में अभी तक नरपति, महीपति आदि नाम मिलते हैं, जिन्हें अब नापा, महपा कहते हैं[3] किन्तु इस

---

१—सेलेक्शन्स फ्रॉम हिन्दी लिटरेचर—लाला सीताराम बी० ए०—पृ० ३८–३६।

२—हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० २७–२८।

३—बीसलदेव रासो—सं० सत्यजीवन वर्मा—पृ० ४५ भूमिका।

मत का खण्डन श्री अगरचन्द जी नाहटा[1] तथा डा० उदयनारायण जी तिवारी[2] ने यह कह कर किया है कि ग्रन्थ में उसे व्यास या जोइसी लिखा गया है। राजपूताने में ये दोनों जातियाँ ब्राह्मण वर्ग के अन्तर्गत हैं। हमें नाल्ह ब्राह्मण ही जान पड़ता है। ग्रन्थ की प्राप्य प्राचीनतम प्रति सं० १६३३ में इसी शब्द का उल्लेख पद्य संख्या ५१, २४५ आदि कई पदों में है।[3] यह शब्द संस्कृत शब्द 'ज्योति' का अपभ्रंश है। ज्योतिषी किस जाति के होते थे इस सम्बन्ध में सर एथेलस्टन वेन्स का मत है कि "ज्योतिषी चूँकि ब्राह्मण जाति के ही होते हैं इसलिये जनगणना के समय इनकी पृथक् गणना नहीं होती है। ये राजाओं और महाराजाओं द्वारा सर्वदा सम्मान की दृष्टि से देखे जाते हैं तथा इनके जीवन-यापन का प्रबन्ध भी इन्हीं राजाओं और महाराजाओं द्वारा राज्य की ओर से होता है। इनका कार्य जन्मपत्री बनाना और गार्हस्थ्य जीवन-सम्बन्धी प्रत्येक कार्य के लिये शुभ मुहूर्त आदि बताना होता है। इनके अतिरिक्त ज्योतिषियों का एक वर्ग और होता है जो 'जोशी' कहलाता है। ये अपना जीवननिर्वाह हाथरेखा और भाग्यरेखा की गणना, दुष्ट ग्रहों के लिये प्राप्त दान तथा ग्रहण आदि के अवसर पर प्राप्त दान से करते हैं। गणना के समय इनका पृथक् उल्लेख यही सिद्ध करता है कि ये किसी जातिविशेष के नहीं होते हैं। इस वर्ग का निर्माण कई जातियों के मिश्रण के फलस्वरूप हुआ है।

सर वेन्स द्वारा दी गयी ज्योतिषियों की जाति की उपर्युक्त कसौटी पर यदि नाल्ह की जाति को कसा जाय तो यह स्पष्ट सिद्ध होगा कि वह ब्राह्मण था। जोइसी शब्द के उल्लेख से तो उसका ब्राह्मण होना स्पष्ट है ही इसके अतिरिक्त भी उसके काव्य में आयी हुई निम्न पंक्तियाँ यही सिद्ध करती हैं कि वह ज्योतिष विद्या का ज्ञाता था। काव्य प्रारम्भ करते ही वह कहता है कि

आणि करि रोहणी जिमि तपउ सूरि।
भवण नइ देषउरे रवि तपइ ॥१॥

---

१—राजस्थानी—भाग ३, अंक ३—पृ० २१।

२—वीर काव्य—पृ० १८०।

३—रोहनी नक्षत्र सोहामणउ।
सो दिन गिणि जोइसी जोड़इ रास॥
"सुदिन देई म्हाका जोइसी।
काढ़ि पतड़उ अरू बोलिमइ साची।"

और इस प्रकार वह अपने ज्योतिष ज्ञान को प्रकट करते हुए उस चेत्रात्मक रोहिणी नक्षत्र की ओर संकेत करता है जो क्रान्ति वृत्त का ही एक भाग है और जिसका स्पर्शात्मक संबंध सूर्य के साथ प्रतिवर्ष एक बार होता ही रहता है और जिसका फल शास्त्रों में प्रायः शुभ माना गया है। इस प्रकार जहाँ कवि ने अपने ज्योतिष-ज्ञान को प्रकट किया है, वहाँ उसने गणपति की वन्दना के साथ सौंदर्य, आकर्षण और शुभ के प्रतीक रोहिणी नक्षत्र का यश के प्रतीक सूर्य से सम्बन्ध बताकर इस ओर भी संकेत किया है कि उसका यह काव्य सुन्दर, आकर्षक, मंगलमय तथा यश का देने वाला है।

एक दूसरे पद्य में राजा[1] बीसलदेव के विदेश गमन के लिये शुभ तिथि को बताते हुये कवि ने फिर अपने ज्योतिषी होने का प्रमाण दिया है। अस्तु, इन प्रमाणों के रहते हुए कवि को ज्योतिषी स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं उठायी जा सकती और तब कवि को ब्राह्मण मानना ही ठीक होगा। यहाँ यह कहना असंगत न होगा कि इस रासो में ऐसे अनेक स्थल आये हैं जहाँ यदि कवि 'जोसी' वर्ग का होता तो दानादि द्वारा दुष्ट ग्रहों की शान्ति की बात करता। लेकिन ऐसा उसने किया नहीं है। इसलिये वह 'जोसी' वर्ग का नहीं था यह सिद्ध है।

सं० १६३३ वाली प्रति में जिस प्रकार जोइसो-जोइसी आदि शब्द कवि के साथ युक्त हैं उसी प्रकार सं० १६६९ वाली प्रति में व्यास शब्द युक्त है कवि के साथ। व्यास शब्द पुलिंग है और बना हुआ है वि + अस् + घञ् के संयोग से जिसका अर्थ होता है पाठक ब्राह्मण। 'शब्दकल्पद्रुम' में भविष्य पुराण के एक पद को उद्धृत करके व्यास के लक्षणों को बतलाया गया है।

विस्पष्टमद्रुतं शान्तं स्पष्टाक्षर पदं तथा।
कलस्वरसमायुक्तं रसभावसमन्वितम् ॥

---

१—मास च्यार राजा दिन नहीं।
तिथि तेइस अरू मंगलवार ॥
इग्यारयउ चन्द्र थारा घोडलाजोग ॥
नीका लाभइ नहीं।
पूषि नक्षत्र अरू कातिक मास ॥
तिणा दिन राजा के गम करउ ॥
तउ आगलउ राउ पूरइ थारी आस ॥५॥

बुध्यमान : सदृथं वै ग्रन्थार्थं कृतगशो नृप ।
ब्राह्मणादिषु सर्वेषु ग्रन्थार्थं चार्पयेन्नृप ।।
यः एव वाचयेद् ब्रह्मन् स विप्रो व्यास उच्यते ।

अर्थात् अन्य अनेक लक्षणों के साथ-साथ व्यास का ब्राह्मण होना भी आवश्यक है। मोनियर-विलियम्स ने भी अपने द्वारा सम्पादित शब्दकोष Sanskrit English Dictionary में लिखा है कि "Vyas—Masc = A Brahmin who recites or expounds the Puranas etc. in public. हिन्दी शब्द सागर में भी उपर्युक्त अर्थ की पुष्टि की गयी है। इसमें कहा गया है कि व्यास वह ब्राह्मण है जो रामायण, महाभारत या पुराणों आदि की कथा लोगों को सुनाता हो।

अस्तु, कवि को चाहे 'जोइसी' 'जोइसो' कहा जाय अथवा व्यास, इसमें सन्देह नहीं कि वह उच्चकुलीन ब्राह्मण था।

## काव्य-सौष्ठव

बीसलदेव रासो हिन्दी जगत् की वह अमूल्य निधि है जो हमें आज से शताब्दियों पूर्व के भारत की अवस्था का दिग्दर्शन कराने में समर्थ है। जहाँ इसमें कोलाहलपूर्ण ऐतिहासिक वाद-विवादों की सृष्टि होती है, ताम्रपत्रों, वंशावलियों तथा शिलालेखों के जाँच की आवश्यकता पड़ती है वहीं काव्यगत रस, अलंकार, छन्द तथा वस्तु वर्णन आदि की अभिव्यञ्जना का समावेश भी है। खेद है कि कुछ विद्वानों ने इस ग्रन्थ को काव्य की कसौटी पर भलीभाँति न कस कर इसका साहित्यिक मूल्य न्यून समझा है।[1] अस्तु, इसके साहित्यिक मूल्यांकन के लिए आवश्यक यह है कि समूचे ग्रन्थ को काव्य की कसौटी पर कसा जाय।

---

१. क—यह कोई काव्य ग्रंथ नहीं केवल गाने के लिए रचा गया था।
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—हि० सा० इ०-पृ० ३०।

ख—इसका विशेष साहित्यिक मूल्य नहीं है।—श्री सत्यजीवनवर्मा—बीसलदेव रासो पृ० ४३।

ग—न तो इसमें किसी प्रकार का साहित्यिक सौष्ठव है और न वर्णनों में किसी प्रकार की रोचकता मिलती है।—डॉ० उदयनारायण तिवारी—वीर काव्य—पृ० १८६।

# वस्तु-वर्णन

काव्यों में प्रायः ऐसा देखा जाता है कि विवरण के लिये कवि या तो स्वयं वस्तुओं का वर्णन करता है अथवा पात्रों द्वारा उनका वर्णन करवाता है। वस्तु-वर्णन की कुशलता काव्य में जीवन डालकर उसे सरस बनाने में समर्थ होती है। बीसलदेव रासो में फुटकर वर्णनों का ताँता तो नहीं है लेकिन दो-चार स्थल ऐसे अवश्य हैं जहाँ कवि ने स्वयं वस्तुओं का वर्णन किया है अथवा पात्रों द्वारा उनका वर्णन करवाया है। देखिये :—

विवाह वर्णन—रासो में राजमती और बीसलदेव के विवाह का वर्णन हमें विस्तारपूर्वक मिलता है। हिन्दू जाति की परम्पराओं के अनुसार कन्या के बढ़ते ही उसके घरवालों को कन्या के विवाह की व्यग्रता (विशेष कर उसकी माता को) से प्रारम्भ कर वर की खोज, ब्राह्मण द्वारा लग्न भेजना, तिलक, बारात की तैयारी तथा यात्रा, अगवानी, कन्यादान, भांवरी, दान, दहेज और वधू की विदाई आदि के वर्णन पढ़ने को मिलते हैं। विवाह का वर्णन कवि ने तत्कालीन भारत के दो प्रमुख शासकों विग्रहराज और भोज की मर्यादा के अनुकूल किया है। इसलिए इस वर्णन में हमें राजसी ठाट बाट का चित्र मिलता है। सांभर नरेश की बारात का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि—

"पूजियो गणपति चालीधर जान।
लहैइ चउरासीय दुण जी मान॥
असी सहस घोड़ा चढ़ा।
साठ सहस पालकी अपारि॥
गूजर गउड़ चाल्या घणा।
रावराणं तण अंत न पार॥"

विवाह वर्णन में जहाँ कवि ने राजसी ठाट-बाट का दृश्य उपस्थित किया है वहीं प्रथम, द्वितीय, तथा तृतीय भांवर के समय राजा भोज द्वारा सांभर नरेश को दहेज स्वरूप देशों को दिखाते समय यह भूल गया कि वह जिन देशों का दहेज दिखा रहा है वे राजा भोज के अधिकार में थे भी या नहीं।

षड् ऋतु—बारह मास वर्णन—राजा बीसलदेव के प्रवास-काल के पश्चात् रानी राजमती के विरह का वर्णन करते समय कवि ने षड्ऋतुओं का वर्णन, उनमें प्राकृतिक उद्दीपन होने के कारण, रानी के विरह की व्यथा को प्रभावोत्पादक बनाने के लिये किया है। विरहाग्नि राजमती को प्रत्येक मास में सताती है।

विरह में राजमती का शरीर क्षीण हो गया है, और उसे माघ मास में तुषार-पात के कारण दग्ध वनखण्ड को देखकर संसार दग्ध हुआ दिखाई पड़ता है। देखिये, वह कहती है :—

"माह मास इसीय पड़इ ठंडार।
दाधा छइ वनषण्ड कीधा हो छार।
आप दहंती जग दहयउ।
म्हा की चोलीय माहि थो दाधउ छइ गात्र।
घणीय विहुणी घण तांकिजइ।
तूँ तउ उवइठाउ रे आविज्यो करह पलाणी
जोवन छत्र उमाहियउ।
म्हाकी कनक काया माहे फेरबी आण।"

रानी राजमती को माघ की तरह वर्ष का प्रत्येक मास पीड़ा पहुँचाता है और वह विरहाग्नि में जल-जल कर छटपटाती है। अन्त में वह ईश्वर से मर्म भरी प्रार्थना करती है। वह 'उळगाणा की नारी' ( प्रवासी की पत्नी ) को छोड़कर और जिसका भी चाहे सृजन करें। देखिये कसक, व्यथा और दर्द भरा उसका उलाहना—

"अस्त्री जनम काइ दीयउ रे महेस।
अवर जनम थारइ घणा रे नरेस।
वनिन सिरजी रोझडी।
घणहन सिरजी धवलीय गाइ।
वनिहन सिरजी कोइली।
हउ बइसती आंबा नइ चम्पा की डाल।
भषती दाष बिजोरडी।
तइतउ काइ सिरजी उलगाणा की नारि॥"

कवि नाल्ह का प्रस्तुत षड्ऋतु-वर्णन न तो कवि जायसी के पद्मावत के 'षड्ऋतु-वर्णन और नागमती वियोग-खण्ड' के लम्बे-चौड़े वर्णन के समान ईश्वर से मिलन और उनके वियोग के मिस है, न भक्तप्रवर तुलसी के मानस के किष्किंधा काण्ड के पावस और शरद् के वर्णन की भाँति नीति और भक्ति का उपदेशक, और न रीतिकालीन कवियों की तरह शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों के घटाटोप में मन और बुद्धि को कुछ क्षणों के लिए आच्छादित करने वाला, वरन्

है अपने ढंग का आकर्षक, मुख्य कथा से जुड़ा हुआ स्वाभाविक और प्राकृतिक, तथा हृदय पर गहरा प्रभाव डालने वाला। यहाँ इस कथन में भी अतिशयोक्ति न होगी कि षड्ऋतु-वर्णन की परम्परा का आरम्भ करने का श्रेय हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम कवि नाल्ह को ही है; यदि हम बीसलदेव रासो को हिन्दी साहित्य का प्राचीनतम ग्रंथ मानते हैं, जिसे ऐसा मानने में हमें तब तक कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए जब तक इसे खण्डित करने के लिए कोई पुष्ट प्रमाण न मिल जाय।

## चरित्र-चित्रण

श्रव्य काव्यों में महाकाव्य के अतिरिक्त अन्य काव्यों में समग्र रूप से किसी चरित्र का चित्रण सम्भव नहीं होता। चरित्र-चित्रण के दो प्रकार होते हैं एक 'आदर्श' और दूसरा 'यथार्थ'। आदर्श चरित्र-चित्रण में कवि अपनी भावना के अनुसार अपने काव्य के नायक अथवा नायिका के चरित्र में किसी प्रकार का दोष अथवा कोई त्रुटि नहीं आने देता। लेकिन 'यथार्थ' चरित्र के चित्रण के लिये कवि को अपने काव्य के लिये ऐसे नायक या ऐसी नायिका को चुनना पड़ता है जिसका सम्बन्ध संसार में नित्य प्रति देखे जाने वाले चरित्र के यथातथ्य रूप से होता है। 'आदर्श' चरित्र के भी दो प्रकार हैं—एक तो जातीय, राष्ट्रीय, सामाजिक और धार्मिक विचारों का अधिक से अधिक पूर्ण रूप से समन्वय करने वाला 'लोकादर्श चरित्र' जैसे रामचरित्र मानस के राम का और दूसरा उक्त ढंग के समन्वय या लौकिक औचित्य की भावना को गौण करके कोई एक भाव पराकाष्ठा तक पहुँचाने वाला 'एकान्तिक आदर्श चरित्र'।[1] ऐसे एकान्तिक चरित्र धर्म और अधर्म दोनों के आदर्श हो सकते हैं जैसे धर्म के आदर्श सीता, भरत, हनुमान आदि एवं अधर्म का आदर्श रावण। बीसलदेव रासो के नायक और उसकी नायिका का चरित्र-चित्रण 'यथार्थ' की कोटि में आता है।

इस रासो के नायक राजा बीसलदेव एक ऐतिहासिक पुरुष हैं। ग्रंथ की रचना-तिथि पर विचार करते हुए विशद रूप से इस बात पर भी विचार किया गया है कि ग्रन्थ के नायक कौन से बीसलदेव हो सकते हैं, तथा इस निष्कर्ष पर भी पहुँचना पड़ा है कि इस रासो के नायक बीसलदेव तृतीय हैं। यहाँ

---

१. रेवातट—पृथ्वीराजरासो—सं० डा० विपिनविहारी त्रिवेदी—भूमिका पृ० ४२।

उन ऐतिहासिक तथ्यों की पुनरुक्ति न होगी यदि यह कहा जाय कि इतिहास में बीसलदेव चतुर्थ का जो चरित्र हमें प्राप्त होता है उसका कोई वर्णन इस रासो में नहीं है। इतिहास के अनुसार बीसलदेव चतुर्थ बड़ा वीर और प्रतापी राजा था। उसने मुसलमानों से कई लड़ाइयाँ लड़ी थीं और उत्तर-पश्चिम भारत में पुनः एक बार हिन्दू राज्य की स्थापना की थी। दिल्ली और हाँसी प्रदेश भी इसने अपने राज्य में मिलाया था।[2] इसके वीर चरित्र का बहुत कुछ वर्णन इसके राजकवि सोमदेव रचित 'ललित विग्रहराज नाटक' ( संस्कृत ) में है।[3] ऐसे पराक्रमी राजा के वीर चरित्रों के चित्रण का चूँकि इस रासो में अभाव है इसलिए ऊपर इस बात की सम्भावना प्रगट की गयी है कि इस रासो का सम्बन्ध बीसलदेव चतुर्थ से नहीं है।

बीसलदेव तृतीय का चरित्र इतिहास में बीसलदेव चतुर्थ के समान म्लेच्छों से आर्यावर्त का उद्धार करने वाला अथवा विन्ध्य से लेकर हिमालय तक अपना राज्य स्थापित करने वाला नहीं चित्रित किया गया है। अस्तु, बहुत कुछ सम्भव है कि इसी कारण प्रस्तुत रासोकार ने इस खंडकाव्य की रचना करते समय बीसलदेव तृतीय के गुजरात आक्रमण के समय चालुक्यवंशीय राजा कर्ण से युद्ध को गौण रखकर उसके जीवन की एक स्वतः पूर्ण घटना परमारवंशीय राजा भोज की कन्या के साथ विवाह को प्रधानता दी। बीसलदेव के चरित्र का विकास इस रासो में रानी राजमती के विवाह के पश्चात् से आरम्भ होता है। विवाह के पश्चात् रानी द्वारा सिर्फ इतना ही कहने पर कि बीसलदेव के समान और उनसे बढ़कर भी इस भू-खण्ड पर और अन्य नृप हैं, राजा प्रण करता है कि वह अवश्य उन राजाओं को जीतेगा और अपने राज्य को हर प्रकार से समृद्ध बनायेगा। अपने इस प्रण की रक्षा के हेतु वह जिस रानी को ब्याह कर वह कुछ मास पूर्व ही लाया है और जो अनन्य सुन्दरी है उसके रूप और यौवन की कुछ परवाह नहीं करता और बारह वर्षों का उड़ीसा प्रवास हीरे

---

२. आर्यावर्तं यथार्थं पुनरपि कृत्वा म्लेच्छविच्छेदनाभि-
देंवः शाकम्भरीन्द्रो जगति विजयते वीसलः क्षोणिपालः ॥
ब्रूते सम्प्रति चाहुमाणतिलकः शाकम्भरीभूपतिः
श्रीमान्विग्रहराज एष विजयी सन्तानजानात्मनः। —फीरोजशाह की
लाट (दिल्ली) पर वि० सं० १२२० वैशाख शुक्ला १५ का लेख

३. Indian Antiquary vol. XX P. 20 । —D. Keilhorn.

को खान को प्राप्त करने के लिए करता है। उड़ीसा पहुँच कर राजा बीसलदेव को अपने कार्य में सिद्धि बिना किसी लड़ाई के ही प्राप्त हो जाती है और वह उड़ीसा के प्रधान के यहाँ एक अति सम्मानित अतिथि के समान रहता है। कुछ समय पश्चात् रानी राजमती का यह समाचार दूत के हाथ प्राप्त होने पर कि अब रानी राजमती का जीवित रहना राजा के विरह में असम्भव है राजा उड़ीसा से लौटने की तैयारी करता है। उड़ीसा के राजा तथा रानी उसको रोकना चाहते हैं। रानी तो बीसलदेव से यहां तक कहती है कि वह अब सांभर लौटकर न जाय और उड़ीसा में ही उसके विवाह का प्रबन्ध सुन्दरी से सुन्दरी कन्या के साथ होने का कर दिया जायगा। लेकिन राजा बीसलदेव उड़ीसा प्रवास के समय रानी राजमती को दिये गये अपने वचन की दृढ़तापूर्वक रक्षा करता है और उड़ीसा की रानी द्वारा किये गये प्रस्ताव को अस्वीकार कर असंख्य धन लेकर अजमेर लौट जाता है। इतिहास में कहीं भी बीसलदेव तृतीय के उड़ीसागमन की कथा नहीं मिलती। ऐसा ज्ञात होता है कि कवि ने राजा बीसलदेव के के चरित्र के विकास के हेतु ही इस कथा का सृजन कल्पना के आधार पर किया है। कल्पना की सहायता भले ही कवि ने बीसलदेव के चरित्र चित्रण में ली हो लेकिन इसे तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि बीसलदेव तृतीय के जीवन-चरित्र का यह अंश अधूरा ही रह जाता यदि कवि ने इस ग्रन्थ की रचना न की होती। साहित्य की रक्षा इसीलिए किसी देश अथवा जाति के लिए (इतिहास को भी साहित्य के अन्तर्गत ही मैं मानता हूँ) स्वतन्त्रता से बढ़कर होती है।

रानी राजमती के चरित्र को कवि ने स्त्री-सुलभ गुणों से पूर्ण चित्रित किया है। राजमती की प्रगल्भता से ही इस रासो का प्रारम्भ होता है। वह राजा बीसलदेव के गर्वयुक्त कथनों को नहीं सह सकती और ऐसा चुभता हुआ प्रत्युत्तर[1] उन्हें देती है कि राजा को अपना राज्य छोड़ कर विदेश गमन करना पड़ता है। लेकिन जहाँ उसमें इतनी प्रगल्भता है वहीं उसका हृदय स्त्रियोचित

१—गरव न कीजइ धणी संभरि वालि।
तुहू समां छइ घणारि भूवाल।
ऐक उड़ीसा कउ धणी।
वचइ माका मानि न मानि।
जउ थारइ साभरिउ ग्रहइ।
तिम्हउआ घरि उग्रहइ हीरा की षाणि ॥ ४१ ॥

कोमल भावनाओं से भी पूर्ण है। वह राजा के विरह को सहन करने के लि तैयार नहीं है, और इसीलिए कहती है कि—

"म्हे विरा क्या बोलियउ दोस।
पग को पाणही सं कसउ रोस।
कीडो उपरि कटकी किसी।
म्हे हस्या थे करि जाणीयउ साच।
उभी मेल्हि उलग चलउ।
जल विहुणीय किम जीवइ मछ ॥ ४३ ॥"

लेकिन उसकी यह चातुरीपूर्ण बातें उसे राजा के विरह से वंचित करने असमर्थ होती हैं। अतः वह अपने उस अस्त्र का प्रयोग करती है जिस पर प्रत्ये स्त्री को ऐकांतिक भरोसा होता है लेकिन उसका वह अस्त्र भी चूक जाता जिसे वह अपनी सहेलियों से राजा के विछोह के पश्चात् स्वीकार करती है—

सुणउ सहेलीय म्हारीय बात।
कंचूउ षोलि दिषाया गात्त।
त्रिय चरित्र मइ लष किया।
म्हरिय राउ न जाणए बात।...

अपने इस अस्त्र के चूक जाने के पश्चात् भी वह राजा के उड़ीसा प्रवास व रोकने का प्रयत्न जारी रखती है। राजज्योतिषी से प्रवास के लिये चार मा पश्चात् की तिथि देने के उसके आग्रह में उसके चरित्र का प्रगाढ़ पति-प्रेम प पतिव्रता हिन्दू पत्नी का पति द्वारा अनादर होने पर भी पति के प्रति शु कामना सन्निहित है।

चार मास के बाद निश्चित तिथि पर जब राजा उड़ीसा गमन के लि तैयार होता है, रानी अपने विरह के समय आने वाले दुखों को भूलकर अप नीतिपूर्ण उदात्त चरित्र का परिचय देते हुए राजा को शिक्षा देती है कि—

"उलग जाण की थरीय जगीस।
राज चालण की देइछइ सीष।
इणि विधि राज माहे संचरे।
बइठा राजा सभा परधान।
तिगि सं मीठा बोलिज्यो।
नाई साहणी दूणउ मान।

बाढ़िय सरिसउ मति हुसउ।
तठइ राइ बोलाइसी भीतर गोठि।
राजमत करि बोलीज्यो।
काक नइड़ा अरू नीची दिठि। ८८॥"

राजा के उड़ीसा गमन के पश्चात् रानी राजमती राजा के विरह में व्याकुल हो जाती है। वर्ष की किसी ऋतु में उसे शान्ति नहीं मिलती। वह पूर्णयौवना है और युवावस्था में पति का बिछोह कितना दुःखदायी होता है यह तो एक विरहिणी नारी ही बता सकती है। ऐसी परिस्थिति में प्रायः देखा जाता है कि नारियाँ पातिव्रत धर्म को ताख पर रखकर स्वैराचार की ओर प्रेरित हो जाती हैं। लेकिन राजमती एक आदर्श पतिव्रता हिन्दू नारी की भाँति इन विकट परिस्थितियों का सामना करती है और कुटनी द्वारा भ्रष्ट आचरण के प्रस्ताव को ठुकरा देती है।[1]

अन्त में रानी राजमती के सुख के दिन लौटते हैं। बीसलदेव उड़ीसा से अगाध द्रव्य लेकर लौटते हैं। रानी को उन निर्जीव द्रव्यों को तो नहीं पर अपने सजीव द्रव्य को पाकर अत्यन्त खुशी होती है। कवि नाल्ह मुखरा, प्रगल्भा, नीति-निपुणा, तथा प्रतिव्रतपरायणा राजमती के चरित्र-चित्रण में प्रत्येक दृष्टि से सफल हुआ है।

इस रासो में उपर्युक्त दोनों चरित्रों को छोड़कर अन्य चरित्रों का विकास नहीं हुआ है।

## रस

हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने रासो काल को 'वीरगाथा' काल की संज्ञा दी है। निस्सन्देह यदि 'पृथ्वीराज रासो' को इस काल का प्रतीक ग्रन्थ

---

१—असीय वरस की बुढइ वेसि।
दंत पड्या तिरि पाडुरा केस।
आइ आवीसइ संचरी।
गलि लागइ अरू रूदन करंति।
किमदिन काढइ भाणिजी।
राति दिवस मोनइ थारीय चीत।
जेतइ आवइ सांभर धणी।
तेतइ चंचल पाठव करउ थे मीत॥१३७॥

स्वीकार कर लिया जाय तो इतिहासकारों द्वारा दिया गया उपर्युक्त नाम सार्थक सिद्ध हो सकता है। लेकिन 'बीसलदेवरासो' जिसे इस काल का प्राचीनतम ग्रन्थ मानने में दो मत नहीं हो सकते, एक ऐसा ग्रन्थ है जिसमें वीर रस का तो सर्वदा अभाव है और है श्रृंगार रस की प्रधानता। अतएव प्राचीनतम ग्रन्थ होने के नाते यदि यह काव्य रासो काल का प्रतीक ग्रन्थ माना जाय तब तो इस काल को वीरगाथा काल कहना कहाँ तक सार्थक होगा यह विवादग्रस्त प्रश्न हो जाता है।

'बीसलदेवरासो' चूँकि श्रृंगार रस प्रधान काव्य है इसलिए इसमें श्रृंगार रस खोजने का प्रयास नहीं करना पड़ता। संयोग और वियोग श्रृंगार से सारा ग्रन्थ परिपूर्ण है। संयोग श्रृङ्गार का तो कम लेकिन वियोग श्रृङ्गार का अभाव ग्रन्थ में परिलक्षित नहीं होता। कहा तो यह भी जा सकता है कि वियोग श्रृङ्गार की ही प्रधानता है। वियोग श्रृङ्गार का चित्र इस खण्ड काव्य में हमें बीसलदेव के रानी राजमती के विवाह के पश्चात् उड़ीसा गमन पर मिलता है। रानी राजमती का विवाह राजा के साथ उसकी बारह बरस की अवस्था में होता है। विवाह के तुरन्त पश्चात् ही राजा के परदेश गमन से राजमती को विरह का सामना करना पड़ता है। प्रोषितपतिका नायिका राजमती के विरह को षट्ऋतु में घटने वाली प्राकृतिक घटनायें उद्दीप्त करती हैं। सावन का सुन्दर महीना है। वर्षा-ऋतु आरम्भ हो गयी है। पानी की छोटी-छोटी बूँदें पड़ रही हैं। युवतियाँ कजली गा रही हैं। पपीहा 'पी कहाँ—पी कहाँ' की रट लगाये हुए है। लेकिन ये सारे सुन्दर दृश्य विरहिणी राजमती के हृदय में शूल पैदा करते हैं। वह कहती है –

सावण बरसइं लइ छोटिय धार।
प्रीयविण जीविजइ किसइ आधारि।
सइ को खेलइ काजली।
तठइ चीडीय कमडीय पंखिया जाल।
बाबीहा पीय पीय करइ।
मोनइ अणव लावइ सावण मास॥ २९॥

विप्रलंभ श्रृङ्गार के प्रवासहेतुक वियोग के भविष्यत् प्रवास का चित्र अंकित करते हुए कवि बीसलदेव के भविष्यत् प्रवास से व्याकुल राजमती के मुख से कहलाता है—

हिव छंडी स्वामी थाहरी आस ।
जोगणि होइ सेवं वनवास ।
कइ तप तपं बणर रसी ।
कइ सरीर संपउ देसि केदारि ।
कइहि, हिमालइ माहि गिलउ ।
स्वामी धण मरिसी गंग नइ वारि ॥ ७० ॥

संताप, निद्रा-भंग, कृशता, प्रलापादि विप्रलम्भ शृङ्गार के अनुभाव के कारण प्रवत्स्यत्पतिका नायिका की कृशता के चित्र अनेक लक्षण और लक्ष्य ग्रन्थों के रचयिता आचार्यों तथा रीतिकालीन कवियों द्वारा उपस्थित किए गये हैं। रासो का नाल्ह भी यद्यपि न तो लक्षण या लक्ष्य ग्रंथ की रचना कर रहा था और न उसका उद्देश्य नायिकाभेद की रचना करना था, फिर भी रानी राजमती की कृशता का चित्र जो उसने चित्रित किया है वह रीतिकालीन कवियों अथवा उर्दू के शायरों के ऐसे चित्रित किये गये चित्र से किसी रूप में कम नहीं है। रानी राजमती राजा के विरह में इतनी कृशगात हो गयी है कि उसकी अँगुली की अंगूठी उसकी बांह में आ जाती है।[1] देखिये कवि कहता है कि—

गोरडी बइठी छइ बंभणक जाइ ।
करि जोडी थारइ लागू पाइ ।
राजमती करइ वीनती ।
पंड्या कहिज्यो धण का नाह नइ जाइ ।
आँगुली थाकी मुदड़ी ।
ढलिकन आवइ हो धणकीय बाह ॥ १४२ ॥

रसराज शृङ्गार का जो निखरा सौन्दर्य हमें वियोग में देखने को मिलता है

---

१—सुनहु स्याम ब्रज में लगी दसन दसा की ज्योति ।
जहँ मुंदरी अंगुरीन की वाह में ढीली होति ॥

× × ×

तुम पूछत कहि मुद्रिके, मौन होत यहि नाम ।
कंकन की पदवी दई तुम बिन या कहँ राम ॥—केशव

× × ×

जीवन की अब हे कपि आस न मोहिं ।
कनगुरिया की मुँदरी कंकन मोहि ॥—तुलसीदास

वह सम्भवतः संभोग में नहीं मिलता, और इसीलिए शायद किसी शायर ने कहा है कि 'जो मजा इन्तजार में देखा, वह नहीं वस्लेयार में देखा।' वियोग के पश्चात् सम्भोग का होना स्वाभाविक है। अस्तु, कवि नाल्ह ने वियोग के वर्णन को प्राथमिकता देकर अपने कवि हृदय का परिचय देते हुए परम्परा के निर्वाह के लिए ग्रन्थ को समाप्त करते-करते सम्भोग श्रृङ्गार का चित्र भी अंकित कर दिया है। नायक नायिका के पारस्परिक अवलोकन, आलिंगन आदि असंख्य भेदों को सम्भोग श्रृङ्गार के अन्तर्गत माना गया है, तथा कहीं यह नायिकारब्ध और कहीं नायकारब्ध होता है। इस रासो में नायकारब्ध सम्भोग श्रृंगार का उदाहरण ही हमें प्राप्त होता है। बीसलदेव बारह वर्षों के प्रवास के पश्चात् लौटकर जब रानी राजमती से मिलता है तो उसकी अंग शोभा बीसलदेव के मन में उद्दीपन भाव उत्पन्न करती है। उसके वक्षस्थल पर राजा का हाथ अनुभाव तथा राजा द्वारा उसका आलिंगन व्यभिचारी भाव हैं। नायकारब्ध सम्भोग श्रृंगार के इस चित्र का कवि ने अपने शब्दों में इस प्रकार वर्णन किया है—

बारा वरसा घरि आवीयउ राउ।
हियडलइ हाथ गल्या माहे बाह।
अवली सवली चूंवणी।
अति रंग थी राजा लीयउ टीपि।
सही सहेली चमकउ हूवउ।
म्हांकइ भइरव कंचूउ भीनउ छइ पाक ॥ २३६ ॥

विप्रलम्भ और सम्भोग श्रृंगार के अतिरिक्त न तो अन्य रसों की अवतारणा का कवि ने प्रयास किया है और न इस खण्ड काव्य में अन्य रसों के पूर्ण परिपाक की सम्भावना थी। कहीं-कहीं तो ऐसा भी देखने को मिलता है कि रस परिपाक तो दूर, वर्ण्य विषय को सुन्दर ढंग से रखने में भी कवि असमर्थ होकर रसाभास के उदाहरण उपस्थित करता है। राजमती द्वारा अनादृत होकर बीसलदेव जब उड़ीसा चला जाता है तब राजमती कलहान्तरिता नायिका की भाँति जहाँ विप्रलंभ श्रृंगार का उदाहरण सामने रखती है उसी जगह बीसलदेव को भैंस का पीड़ाए (पाड़ा) कहकर बीभत्स रस उपस्थित कर देती है और ग्रामीण कलहान्तरिता नायिकाओं तक को भी लज्जित कर देती है। संदर्भ से सम्बन्धित पंक्तियां इस प्रकार हैं—

सुणउ सहेलिय म्हारीय बात ।
कंचूउ षोलि दिषाया गात्त ।
तिय चरित्र मइ लषकिया ।
म्हारिय राउ न जाणए बात ।
तउ बढ उर्पार भयस पीडाइ ।
जिण दीठा मुनिवर चलइ ।
म्हे तउ कर बोलियउ कोपियउ नाह ।
तिणि कुवचनइ सषीघणा छली ।
डालीयउ पांसउ चूकउ दाउ ॥ ६९ ॥

[ अर्थात् हे सखी मेरी बात सुनो—मैंने कंचुकी खोलकर अपने अपूर्व यौवन का दर्शन राजा को कराया तथा अनेक प्रकार के त्रियाचरित्र भी किये ताकि राजा विदेश भ्रमण न करें लेकिन राजा मेरी बात को मानने के लिए तैयार नहीं हुआ। जिस नारी सौन्दर्य ने बड़े-बड़े मुनियों को भी वशीभूत कर लिया उसी सौन्दर्य की राजा ने उपेक्षा की। ऐसा करके राजा ने 'भैंस के आगे बीन बजावे भैंस पड़ी पगुराय' वाली उक्ति को चरितार्थ किया है। इत्यादि। ]

ऐसे ही एक अन्य स्थल पर जहाँ बीसलदेव राजमती की पहिचान बताते हुए उसके सौन्दर्य का वर्णन नाना प्रकार की उपमाओं को देकर योगी को बताता है उसी जगह उसकी अंगुलियों की उपमा 'मूंगफली' से देकर हास्य रस उपस्थित कर देता है। देखिये:—

भति जोगी कहइ नर नाथ ।
रतन पचोलउ धण कइ हाथि ।
मुंगफली जिसी आँगुली ।
उणारा कवन पयउहर काजला रेषि ।
बोलती बोलइ वर आकरी ।
उणरइ सोवन चूड़लो झलकइ हाथि ।
चूड़ि कहइ कइ चूडिलउ ।
थे तउ धीरा तिण धण कइ हाथि ॥ २११ ॥

[ अर्थात् रानी राजमती की अंगुलियाँ मूंगफली जैसी हैं, उसके पयोधर पर काली रेखायें हैं, वह सुन्दर वाणी बोलती है, उसके हाथों में सुवर्ण की चुड़िया सुशोभित है, इत्यादि।

यद्यपि भैंस और मूंगफली की उक्तियाँ शृङ्गार रस में रसाभास उत्पन्न करती है फिर भी इन उक्तियों के अप्रस्तुत रूप में लाये जाने के कारण इस काव्य के लोकगीत होने का प्रमाण भी मिलता है।

## अलंकार

जिस प्रकार 'रस' काव्य की आत्मा है और काव्य के लिए अत्यावश्यक है उसी प्रकार अलंकारों के अतिरिक्त भी काव्य रचना संभव नहीं। क्योंकि अलंकार हैं क्या? वर्णन करने की अनेक प्रकार की चमत्कारपूर्ण शैलियाँ जिन्हें काव्यों से चुन कर प्राचीन आचार्यों ने नाम रखे और लक्षण बनाये।[1] शैलियाँ विभिन्न कवियों की विभिन्न हो सकती हैं। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि जितने अलंकारों के नाम आचार्यों ने निर्धारित कर दिये हैं उनके अतिरिक्त अलंकार नहीं हो सकते। देखा यह गया है कि नए आचार्य नये अलंकारों की सृष्टि करते आये हैं। अतः किसी ग्रन्थ विशेष में यदि हमें मिलने वाले अलंकारों में से कोई अलंकार नहीं मिलता तो इसका अर्थ यह नहीं कि वह काव्यग्रन्थ अलंकार शून्य है, क्योंकि काव्य रचना के लिए किसी न किसी शैली की आवश्यकता कवि को पड़ेगी और जब वह किसी शैली का अनुसरण करेगा तब अलंकार भी उस काव्य में होगा ही।

बीसलदेव रासो में नाल्ह ने सादृश्यमूलक अलंकारों का ही आश्रय अधिक लिया है। इन अलंकारों के सहारे कवि को अपनी कल्पना की उड़ान में बहुत ऊपर तक उड़ने का अवसर मिला है। कहीं कहीं तो ऐसे उपमान और उपमेय का आयोजन हुआ है जिनका सम्बन्ध पृथ्वी के जीव से नहीं वरन् ज्योतिष शास्त्र से है। सादृश्यमूलक अलंकारों में से उपमा अलंकार का आरोप गौरीनन्दन की शोभा में देखिये :—

गवर का नंदन त्रिभुवन सार।  
नाद भेदइ धारइ उदर भडार।  
एक दंतउ मुषक लहलइ।  
मुषिकउ बाहण तिलक संदूरि।  
करि जोडी नरपति भणइ।  
जाणि करि रोहिणो जिम तपउ सूरि॥ १॥

---

१—जायसी ग्रन्थावली—सं० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—पृ० १४६-१४७।

उपमा में भी श्रौती उपमा का उदाहरण कवि ने राजा बीसलदेव के मालव पहुँचने पर 'गोकुल माहि गोविन्द' से दिया है :—

राजा जी उतर्‌या नगर मझारि ।
मन माहे हरषीय राजकुमारि ।
जाइ सषी करउ आरती ।
कलश संपूरण पूनिम चन्द ।
सुर नर मोह्या सुरग का ।
गोकुल माहि जिसउ प्रतिष्य गोबंद ।। २५ ।।

श्रौती उपमा की तरह 'आर्थी उपमा' का प्रयोग भी हमें निम्न पंक्तियों में देखने को उस समय मिलता है जब राजमती बीसलदेव को विदेश-गमन से रोकने के लिए यह कहती है कि विवाह के पश्चात् उसकी अवस्था ठीक बिकने वाले घोड़े के समान हुई है जिस पर व्यापारी सौ सौ दिनों तक हाथ नहीं फेरता ।

भाटिण कहइ सुणि राजा का पूत ।
उलग नाण कउ षरउ कु सूत ।
बेटि व्याही राजा भोज की ।
सोनउ सोलहउ काइ करइ छार ।
मरणजीवण राजा पग तलइ ।
कनक कचोलउ उर धरइ भार ।
हेडाऊँ का तुरीय जिऊँ ।
हथ न फेरइ सउ सउ वार ।। ८२ ।।

विरह वर्णन में कवि नाल्ह ने ऊहात्मक शैली का अवलंबन किया है। इस शैली में अधिकतर ऐसा देखा जाता है कि ऊहा को आधारभूत वस्तु का स्वरूप तो सत्य रहता है लेकिन उसके हेतु की कल्पना कल्पित होती है। इस प्रकार के विधान में उत्प्रेक्षा का सहारा आवश्यक होता है। यह अलंकार उत्कर्ष की व्यंजना के लिये बड़ा शक्तिशाली होता है। प्रस्तुत को अप्रस्तुत रूप में सम्भावना के द्वारा कवि जिस क्रिया को हमारे सम्मुख उपस्थित करता है वह प्रामाणिक लगने लगती है और हम इस बात की छानबीन नहीं करते कि हेतु ठीक है या गलत। आसाढ़ माह में जल से परिपूर्ण मेघों को आकाश में घुमड़ते देख कर राजमती को ऐसा प्रतीत होता है कि मदगलित हाथी की भाँति प्रमत्त मेघ आकाश में चल रहे हैं। देखिये वह कहती है कि—

आसाढ़इ धुरि बाहुड्या मेह।
षलिहल्या षाल नइ वहि गई षोह।
जइरि आसाढ़ न आवहो।
माता रे मइगळ जेठ पग देई।
सद मत वाला जं दुलई।
तिह घर ऊलग काइ करेइ॥ १२८॥

प्रस्तुत की अप्रस्तुत रूप में सम्भावना कर कवि ने 'वस्तूत्प्रेक्षा' का सुन्दर उदाहरण उपर्युक्त पद में दिया है।

'उत्प्रेक्षा' के समान अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग भी कवि ने इस रासो में कहीं-कहीं किया है। राजा बीसलदेव की बारात की विशालता का वर्णन करते हुए कवि कहता है :—

राजा चालौ परिणवा।
तवइ बेहाउँबर छड़िउ सूरि॥ २०॥

राजमती की चमत्कारपूर्ण उक्ति भी पण्डित को बीसलदेव के पास भेजते समय अतिशयोक्ति अलंकार का सृजन करती है। राजमती की यह उक्ति कि बीसलदेव के वियोग में उसके बायें हाथ की मुद्रिका ढलक कर उसकी दाहिनी बाह में आने लगी है लोक सीमा का उल्लंघन कर जाती है। देखिये उसके अलंकार का चमत्कार :—

गोरडी बइठी छइ बभणक जाइ।
करि जोडी थारइ लागू पाइ।
राजमतो करइ वीनतो।
पंड्या कहिज्यो धण का नाह नइ जाइ।
आंगुली थाकी मुदड़ी।
ढलिकन आवइहो धण कीयबाह॥ १४२॥

सादृश्यमूलक अलंकारों में 'रूपक' का अपना विशेष स्थान होता है। इस अलंकार की झलक इस रासोकार ने कहीं-कहीं दिखायी है। इसके प्रयोग में यद्यपि कवि को पूर्ण सफलता नहीं प्राप्त हुई है फिर भी रूपक बाँधने की उसकी दक्षता अवश्य श्लाघ्य है। ऐसा एक स्थान देखिये :—

म्हासू कहइ बहु घरिमाहे आइ।
चंवरइ भोळइ गिळेसी राह।

चंद पुलिदां वन गयउ।
दुधू किमउ बरइ मंजारि कइ फेरि।
उलूगाणा की गोरडी।
थारउ नाह उडीसइ धण अजमेरि॥ १४१॥

[अर्थात्—राजमती का मुख पूर्ण चन्द्रमा है ; उसके मुख रूपी चन्द्रमा को राहु रूपी सौन्दर्य लोलुप खलजन कहीं ग्रास न कर लें अथवा उसके यौवन रूपी दुग्ध को मार्जार रूपी कामी पुरुष कहीं भक्षण न कर जायें क्योंकि उसका पति परदेश में है और उसका उन्मत्त यौवन छिपाये नहीं छिपता। इसलिए राजमती की सास कहती है कि बहू घर में आओ।]

## छन्द

भारतीय छंदों के गणित पक्ष तथा सूत्र लक्षण का विधान संसार के छंद शास्त्रों में अद्वितीय है, इसे स्वीकार करने में किसी को संकोच न होगा। ब्राह्मण ग्रन्थों के रचना-काल से ही छंदों का प्रारम्भ भारतीय साहित्य में हो जाता है, यद्यपि उन ग्रन्थों में छंदों की दार्शनिक धारणायें ही केवल प्राप्त हैं परन्तु उन्हें उनका सैद्धान्तिक विवेचन नहीं कहा जा सकता। ब्राह्मण युग के पश्चात् वैदिक युग के आरम्भ काल से लेकर अपभ्रंश काल तक छन्दों का क्रमशः विकास हुआ है। विद्वानों के मतानुसार वैदिक छंदों में वर्ण विचार की प्रधानता पायी जाती है लेकिन डा० पुत्तूलाल शुक्ल के मतानुसार इनके पाठ में केवल अक्षर की गणना के अतिरिक्त स्वरों का भी प्रयोग किया जाता है, अन्यथा केवल अक्षर-संख्या लय को जन्म देने में असफल हो जाती। वैदिक छन्द पाठकारों और उनके छन्दों के लिपिकारों ने उदात्त, अनुदात्त, स्वरित का प्रयोग तो किया, परन्तु वैदिक युग के छन्दःशास्त्रियों और परवर्ती युग के आचार्यों ने वैदिक छंदों पर विचार करते हुए मात्रा-मैत्री का विवेचन नहीं किया और फलतः एतद्-विषयक कोई सिद्धान्त भी निश्चित नहीं किया गया। चूँकि अक्षर और मात्रा भाषा के आदि काल से इतने अभिन्न और एकाकार हैं कि उनमें भेद करना कठिन है, सम्भवतः इसी कारण वैदिक छन्दों के सम्बन्ध में यह निश्चित सिद्धान्त नहीं बन सका कि वे केवल वर्णिक हैं या केवल मात्रिक। ऐसी विषम परिस्थिति में छन्दःशास्त्रियों ने शायद इस नियम का, कि छन्द की पाठ-पद्धति में जिस वर्ग के नियम प्रधान हों उसमें ही उन छन्दों की गणना होनी चाहिए, पालन किया है। वैदिक छन्दों को वर्णिक बताने में ही उपर्युक्त कहे गये नियम का अनुसरण

किया गया है क्योंकि वैदिक छन्दों में वर्णवृत्त की प्रधानता यहाँ तक विशेष थी कि १०४ अक्षरों तक के छन्द निर्मित होते थे। वर्ण और मात्रा की खिचड़ी संस्कृत काल के छन्दों में भी पकती रही! छंदों में वर्णिक और मात्रिक का भेद तब स्पष्ट रूप से स्थापित हुआ जब वैदिक छन्द, वर्ग विशेष का साहित्य बन गया और जनता से उसका सम्पर्क छूट गया। जनता ने यद्यपि अपना सम्बन्धविच्छेद वैदिक और संस्कृत छन्दों से कर लिया फिर भी उनमें छान्द-सिक संस्कार वैदिक और सांस्कृतिक ही थे। अतः जिस लय में वर्ण पर स्वराघात देकर या उदात्त उच्चारण से छन्द पूरा किया जाता था जनता ने उस स्थान पर एक मात्रा का योग करके उस लय को पूरा किया। लय को पूर्ण करने के लिये मात्राओं के योग की यह जनपदीय पद्धति ही धीरे धीरे अपने अलग स्वरूप में विकसित होने लगी। प्राकृतकाल के आगमन तक यह इतनी जनप्रिय हो गई कि इस काल के छन्द प्रारम्भ काल से ही मात्रावृत्त होने लगे। मात्रावृत्त छन्दों के विकसित होने तथा जनता द्वारा अपनाये जाने के प्रधानतः दो कारण थे। प्रथमतः जन गीतों के चरण बहुत छोटे होते हैं जिनमें मात्रावृत्त छन्दों का ही सफल प्रयोग सम्भव होता है। द्वितीयतः मात्रावृत्त छन्दों में कवि को स्वच्छन्दता का अवसर रहता है जो वर्णवृत्त छन्दों में अपेक्षाकृत कम प्राप्त होता है। मात्रा-वृत्त छन्द जनता के आदर के पात्र इसलिए भी बन गये कि इनमें संगीत के उपयुक्त गुण भी वर्तमान थे। गीत में ताल का विधान प्रधान होता है जो कि मात्राओं पर निर्भर होता है, वर्णों पर नहीं।

मात्रिक छन्द अपनी उपर्युक्त विशेषताओं और सुविधाओं के कारण इतना विशेष जनप्रिय बन गया कि प्राकृतों के साहित्यिक रूप धारण करने पर जहाँ मध्यकाल की प्राकृत रचनायें संगीत विहीन हो गयीं वहीं अपभ्रंश में जनता द्वारा अपनाये जाने वाले मात्रिक छन्द इतने प्रचलित हुए कि इन छन्दों में आद्यो-पान्त महाकाव्यों की रचना होने लगी। चौरासी सिद्धों और जैनाचार्यों की कृतियों का सृजन, जो प्रायः नवीं शताब्दी के बाद हुआ, मात्रिक छन्दों में ही हुआ। इन छन्दों का प्रचार उत्तरोत्तर इतना अधिक हुआ कि संस्कृत के कवि गोवर्द्धनाचार्य तथा जयदेव ने भी अपनी कृतियों की रचना वर्ण-वृत्तों में न कर मात्रिक छन्दों में की। मात्रिक छन्दों में भी 'पज्झटिका' छन्द का प्रयोग बहुशः अपभ्रंश काव्य में पाया जाता है। इस छन्द में ८ मात्राओं के बाद स्वभावतः ही ताल लगने के कारण संगीत के लिये यह विशेष रूप से उपयोगी होता है। सङ्गीतोपयोगी छन्द पज्झटिका के समान ही नृत्योपयोगी 'घत्ता' और

'मदनग्रह' छन्दों का प्रयोग भी अपभ्रंश काव्य में हुआ है। इन छन्दों की विशेषता यह है कि इनके गाये जाने पर नर्तकों के एक विशेष क्षण पर गति परिवर्तन का रहस्य भली-भाँति समझ में आ जाता है।[1]

छंदों के इस क्रमिक विकास को देखते हुए इस निर्णय पर पहुँचने में कोई आपत्ति नहीं होगी कि हिन्दी के रासो काल में काव्य की रचना मात्रिक छन्दों में ही हुई। डा० पुत्तूलाल शुक्ल भी इसी मत का समर्थन करते हुए कहते हैं कि "हिन्दी के वीरगाथा काल में प्रधानता मात्रिक छंदों की ही रही।"

हिन्दी के वीरगाथा काल या रासो काल का उल्लेख जब हम करते हैं तब हमारा उद्देश्य राजस्थानी साहित्य से होता है, जहाँ की भाषा डिंगल और पिंगल थी, जिसकी उत्पत्ति दशवीं शताब्दी तक प्रचलित अपभ्रंश भाषा से हुई थी। अणहिलवाड़ा के चालुक्य राजा सिद्धराज जयसिंह देव और कुमार पाल के आश्रित जैन विद्वान् हेमचन्द्र (सं० ११४५) ने अपने ग्रन्थ 'सिद्ध हेम शब्दानुशासन' में अपभ्रंश के एक भेद नागर अपभ्रंश का आधार शौरसेनी प्राकृत को माना है।[2] इसी नागर अपभ्रंश से राजस्थानी भाषा का जन्म हुआ जिसके साहित्यिक रूप का नाम डिंगल है।[3] पिंगल शब्द का वास्तविक अर्थ यद्यपि छन्दःशास्त्र है लेकिन राजस्थान में इसका व्यवहार ब्रजभाषा के अर्थ में किया जाता है। आजकल लोग पिंगल से ब्रजभाषा का अर्थ न लेकर "राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा' का अर्थ लेते हैं।[4] डिंगल भाषा की इस संक्षिप्त उत्पत्ति और विकास को देखते हुए ऊपर कही गयी उक्ति कि इस काल के काव्य की रचना मात्रिक छन्दों में हुई पुष्ट हो जाती है। यों भी इस काल में प्रयुक्त होने वाले छन्दों को यदि देखा जाय तो वे विशेष अंशों में अपभ्रंश काल के ही छन्द हैं। अपभ्रंशकालीन गाहा, पद्धरि, मुक्तादाम, भुजङ्गप्रयात, तोमर, त्रोटक इत्यादि प्रसिद्ध प्रायः सभी छन्दों का प्रयोग डिंगल के कवियों ने भी किया है। इनके अतिरिक्त दोहा (दूहो), कवित्त ( छप्पय ) और गीत का प्रयोग राजस्थानी काव्य में विशेष रूप से पाया जाता है।

---

१. अपभ्रंश मीटर्स—प्रो० एच० डी० वेलणकर—बम्बई यूनिवर्सिटी जर्नल सन् १९३३-३४, पृ० ३२-४

२. सिद्ध हेमशब्दानुशासन।

३. डिंगल में वीर रस—मोतीलाल मेनारिया—पृ० २।

४. राजस्थानी भाषा और साहित्य—मोतीलाल मेनारिया—पृ० ७६।

जिस प्रकार हीरे का सौन्दर्य सफल खराद करने वाले के हाथों में जाकर प्रस्फुटित होता है उसी प्रकार काव्य भी छन्दों के प्रयोग से निखर उठता है। यद्यपि कवि छन्दों का मुखापेक्षी नहीं होता और न वह यति-गति के नियमों से ही बँधा होता है फिर भी भावों की मधुरिमा के लिये लय की आवश्यकता होती है जो वर्णों और मात्राओं की योजना पर निर्भर करती है। अतः छन्दों के मुखापेक्षी न रहने पर भी अदृश्य रूप से वे ही व्यञ्जना सिद्धि में प्रेरक हैं इसे स्वीकार करना ही पड़ेगा। छन्दों का चुनाव वर्ण्य-विषय और भाषा को दृष्टिगत रख कर ही होना चाहिए। आज तक के प्रकाशित ग्रंथों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि न तो प्रत्येक छन्द हर प्रकार के वर्णन के लिये उपयुक्त होता है और न प्रत्येक भाषा में ही प्रत्येक छन्द का सफल प्रयोग हो पाता है। 'अवधी' में जितनी सफलता दोहा और चौपाई को मिली उतनी सफलता ब्रज-भाषा में इन्हें नहीं प्राप्त हुई। ब्रजभाषा के सफल छन्द तो कवित्त और सवैया ही हैं। इसी प्रकार नीति और उपदेशात्मक विषयों की व्यञ्जना में दोहा छन्द जितना सफल रहा उतना अन्य छन्द नहीं। यह ठीक है कि छन्दःशास्त्रियों ने ऐसा कोई विधान नहीं बनाया कि अमुक विषय अथवा अमुक भाषा के लिये अमुक छन्द का ही प्रयोग होना चाहिये फिर भी प्रकाशित रचनाओं की सफलता और विफलता को दृष्टिगत रखते हुए उपर्युक्त निष्कर्ष निकाला जा सकता है।

बीसलदेव रासो के छन्दों का निर्णय करते समय हमें उपर्युक्त सभी बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है। इस रासो का विषय श्रृङ्गार-रस-सिक्त है और इसकी भाषा डिङ्गल है, यद्यपि भाषा की अस्तव्यस्तता और डिंगल व्याकरण के नियमों की अवहेलना को देखते हुए ऐसा कहना निर्मूल न होगा। हाँ, इसकी भाषा को नागर अपभ्रंश और साहित्यिक डिंगल का मिश्रण कहने में सम्भवतः कोई अत्युक्ति नहीं होगी। अस्तु, ऐसी भाषा और इस ग्रन्थ के वर्ण्य विषय के लिये कौन-सा छन्द उपयुक्त हो सकता था यह विचारणीय है।

यों तो दसवीं से लेकर बारहवीं शताब्दी तक के राजस्थानी काव्य में सबसे अधिक प्रयोग दोहा और छप्पय छन्दों का हुआ है जिसका कारण इसके काव्य में वीर रस की प्रधानता है फिर भी इनके अतिरिक्त मन्दाक्रांता, मुक्तादाम, भुजंगप्रयात, पद्धरी, तोमर और गीत छन्दों का प्रयोग भी बहुशः हुआ है—गीत छन्द डिंगल साहित्य में अपनी विशेषता रखता है। डिंगल-रीति-ग्रन्थों में इसके ८५ प्रकारों के लक्षण उदाहरण सहित मिलते हैं।[1]

---

१. रघुवर जसप्रकाश।

बीसलदेव रासो के छन्द इसकी अस्तव्यस्त भाषा और गणनाशून्य मात्राओं से जड़ित रहने के कारण एक समस्या अवश्य उपस्थित करते हैं लेकिन सुविधा यह भी है कि आरम्भ से इति तक प्रायः एक ही प्रकार के छन्द का प्रयोग हुआ है। इसके कतिपय छन्दों की मात्राओं की गणना करने पर इस निर्णय पर पहुँचना पड़ता है कि छन्दों के चरणों की संख्या छप्पय छन्द के अनुसार प्रायः छः चरणों की होते हुए भी मात्राएँ प्रत्येक छन्द की भिन्न-भिन्न हैं और छप्पय छन्द के लिये आवश्यक नियम का—प्रथम चार चरणों की, रोला के (२४, २४ मात्रायें ११, १३ की यति से) तथा अन्तिम दो चरणों का उल्लाला के (२८, २८ मात्रायें, १५, १३ की यति से या २६, २६ मात्रायें १३, १३ की यति से)—पालन नहीं हुआ है। ये छंद, छंद-शास्त्र के नियमानुसार विषम कोटि के हैं—क्योंकि इनके प्रत्येक चरण की मात्रा असमान है और ये साधारण जाति के हैं क्योंकि प्रत्येक चरण की मात्रा ३२ से अधिक नहीं है। इस विचित्रता को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रन्थ का रचयिता छन्द-शास्त्र का पण्डित नहीं था। इसीलिए बीसलदेव रासो की रचना छंद-शास्त्र की कसौटी पर खरी नहीं उतरती। यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि 'संगीत' शब्द का प्रयोग यहाँ शास्त्रीय संगीत के लिये नहीं वरन् उस 'संगीत' के लिये किया गया है। जो मानव जीवन के अन्तर्दर्शन और साथ ही उसकी रागात्मक प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति में सहायता पहुँचाता है। पशु-पक्षी तक में अनुभूति और उसकी अभिव्यक्ति की क्षमता है। आनन्द या दुःख के कारण जिस प्रकार मानव में आत्मप्रसार का भाव जागृत होता है उसी प्रकार पशु-पक्षियों में भी। वैज्ञानिकों ने तो यहाँ तक सिद्ध कर दिया है कि उद्भिद् जगत् में भी राग-द्वेषात्मक अनुभूति वर्त्तमान है। लेकिन जहाँ मानव ने वाणी द्वारा अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति को स्थायित्व देने की चेष्टा की है वहाँ पशु-पक्षी और उद्भिद् जगत् विवश हैं। पशु-पक्षी या उद्भिद् जगत् अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति को स्थायित्व मानव की तरह भले ही न दे सकें पर इतना तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि सरिता का कलकल निनाद, अमराई में बैठे हुये पपीहे की 'पी कहाँ' 'पी कहाँ' की पुकार, नीड़ में सायंकाल लौटते हुए पक्षियों का कलरव, उषा के आगमन के साथ ही कलियों का विहसना स्थायी है और साथ ही है संगीतात्मक अर्थात् मधुर लययुक्त एवं भावात्मक।

मनुष्य ने अपनी अनुभूतियों को वाणी द्वारा संगीतात्मक रूप में अभिव्यक्त करने की चेष्टा कब से की यह कहना तो कठिन है लेकिन प्राचीन जातियों के

इतिहास में—जिसका अधूरा ज्ञान ही आज उपलब्ध है—इसका संकेत अवश्य मिलता है कि शब्दों का उस काल तक कोई विशेष महत्त्व नहीं था तथा विषय-विधान का विकास भी नहीं हो सका था। भाषा ऐसी अवस्था में थी जिसमें भावप्रकाशन की क्षमता न्यून थी और भावप्रकाशन के विस्तार के लिये भाषा के साथ वाद्य यन्त्रों की सहायता अपेक्षित थी। वाद्य यन्त्र भी अपने पूर्ण विकसित रूप में न थे वरन् साधारण वाद्य यन्त्र ही काम में आते थे। इस काल के प्राप्त काव्य यह भी सिद्ध करते हैं कि इस काल तक सामूहिक और वैयक्तिक भावना में अधिक अन्तर न आ सका था। अस्तु, इसके द्वारा कुछ अंशों में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि काव्य में प्रकट किये गये मनुष्यों की भावनाओं से अधिक प्रभावित उसके संगीतात्मक रूप से होता रहा होगा क्योंकि समाज की अविकसित अवस्था में मनुष्य के लिये काव्य में प्रकट की हुई भावनाओं को समझना सहज सम्भव नहीं। स्वर सम संगीत की उत्पत्ति जिसका—उल्लेख ऊपर किया गया है—यहीं से मानी जा सकती है। काव्य के इसी संगीतात्मक स्वरूप का विकास होता रहा और क्रमशः इसकी दो शाखायें हो गयीं। एक शाखा का विकास संगीत के शास्त्रीय चित्रण के रूप में हुआ और दूसरी का काव्य के रूप में। काव्य में संगीतात्मकता और चित्रात्मकता दोनों का सामञ्जस्य और संतुलन ही चूंकि उसमें जीवन डाल देता है, इसलिये कवि की सफलता भी दोनों के सामञ्जस्य और समन्वय उपस्थित करने में ही है। ऐसे काव्य का जो अपने प्रारम्भिक काल में अवश्य लोक गीतों के रूप में रहे होंगे, नमूना अब प्राप्त नहीं है। आज तो लोकगीतों का वही नमूना मिलता है जहाँ संगीत (शास्त्रीय संगीत) और गीत का अंतर स्पष्ट होने लगता है। संगीत में जहाँ शास्त्रीय विधान की रक्षा का आग्रह होता है वहां लोकगीतों में भावुकता और आत्माभिव्यञ्जना का। विद्वानों के मतानुसार लोकगीत और संगीत के तीन प्रधान अन्तर हैं।

| संगीत | लोक गीत |
| --- | --- |
| (१) संगीत में शब्दों का महत्त्व नगण्य है वे केवल स्वर के विस्तार और संकोच के लिये आते हैं। स्वर प्रसार ही उनका प्रधान लक्ष्य है। अर्थ की परिधि को केवल स्पर्श मात्र करते हैं। | (१) लोक गीतों में शब्द केवल स्वर के विस्तार और संकोच के लिये नहीं आते वरन् अर्थ की परिधि को विस्तृत भी करते हैं। |

| | |
|---|---|
| (२) संगीत के लिये वाद्य यन्त्रों की अपेक्षा है। | (२) गीतों के लिये वाद्य यन्त्र अनिवार्य नहीं। |
| (३) संगीत शास्त्रीय विधान के बन्धन से बद्ध है। | (३) गीत शास्त्रीय विधान के विरोध में आत्मनिष्ठता का आधार लेकर चलते हैं। |

लोक गीत जिस अवस्था में प्राप्त हैं उसमें शब्द और अर्थ दोनों की प्रधानता है और आग्रह है संगीतात्मक एवं रागात्मक अनुभूति का, शास्त्रीय संगीत का नहीं। एक विशेषता इन लोक गीतों की यह भी है कि इनका विरोध न केवल शास्त्रीय संगीत से वरन् काव्य के स्वीकृत मानों की कृत्रिमता के प्रति भी है। जो आत्मीयता, आत्मनिष्ठता और संवेदनशीलता उनमें है वह शास्त्रीय काव्य-विधान में नहीं।

कुछ पश्चिमी विद्वानों ने भी गीत के उपर्युक्त मानों को स्वीकार करते हुए कहा है :—

"गीत काव्य का कवि, जगत् के सारे तत्वों को अपने में समाहित करता है, अपने वैयक्तिक भावों के प्रभाव से इसे पूर्णतः आत्मसात् करता है और इस आत्मपरकता को सुरक्षित रखने वाली शैली में अभिव्यक्ति करता है।"

( टिरोल—मेथड ऐण्ड मैटिरियल्स ऑव् लिटरेरी क्रिटिसिज्म पृ० ५ )

[ इसी प्रकार 'पालग्रेव' कहते हैं कि—

गीत काव्य इकहरे विचार, अनुभूति या स्थिति का चित्रण है, जिसमें संक्षिप्तता मानवीय भावना का रंग और गति अवश्य होनी चाहिये।"

( पालग्रेव्स गोल्डन ट्रेजरी ऑव् सॉन्ग्स ऐण्ड लिरिक्स—प्रिफेस )

हिन्दी साहित्य में लोक गीतों के जो उदाहरण प्राप्त हैं वे हिन्दी भाषा की विभिन्न बोलियों' में ही हैं। इसका प्रधान कारण सम्भवतः एक यही है कि 'बोली' में जितनी सरसता और आत्मीयता पायी जाती है उतनी व्याकरण के नियमों से आबद्ध भाषा में नहीं। लोक गीतों के निम्न कतिपय उदाहरण सहज सिद्ध करेंगे कि काव्य के मानों और शास्त्रीय संगीतों के विधानों की अवहेलना करने पर भी वे गेय हैं और उनमें है सरसता और आत्माभिव्यक्ति। राजपूताने में स्त्रियाँ हवेलियों में गा रही हैं—

बाम चल्या छा भँवर जी ! पीपली जी,
राँजी ढोला ! हो गयी घेर घुमेर ।
बैठाँ की रुत चाल्या चाकरी जी,
ओजी म्हाँरा सास सपूती रा पूत ।
मतना सिधारो पूरब को चाकरी जी ॥

[ गुजराज की कोई कन्या ससुराल जा रही है और कहती है—

अमे रे लीला वननी चरकलड़ी उड़ी जाशुँ परदेश जी ।
आज रे दादाजीना देशमाँ काले जाशुँ परदेश जी ॥

[ बिहार युक्तप्रान्त और मध्यप्रान्त में आइये, कहीं सुहाग की रात है और आनन्द में मग्न वधू गा रही है—

आज सोहाग कै रात चन्दा तुम उइहौ ।
चन्दा तुम उइहौ सुरुज मति उइहौ ॥
मोर हिरदा बिरम जनि किहेउ मुरुग मति बोलेउ ।
मोर छतिया बिहरि जनि जाइ तू पह जिनि फाटेउ ॥
आजु करहु बड़ी राति चन्दा तुम उइहौ ।
धिरे धिरे चलि भोरा सुरुज बिलम करि अइहौ ॥

[ अथवा 'मेघदूत' के संदेशवाहक मेघों की भाँति विरहिणी का बादलों द्वारा पिया के पास संदेश भेजना कितना हृदयस्पर्शी है—

कारिक पियरि बदरिया झिमिकि दैव बरसहु ।
बदरी जाइ बरसहु उही देस जहाँ पिया कोड़ करैं ॥
भीजै आखर बाखर तम्बुआ कनतिया ।
अरे भितराँ से हुलसै करेज समुझि घर आवैं ॥

और इन्हीं लोक गीतों के सदृश बीसलदेव रासो के भी पद हैं। रानी राजमती उलग ( परदेश ) जाते हुए अपने पति से विनय करती है कि वह भी उनके साथ चलेगी। एकाकी रहना उसके लिये दुर्लभ है—

हउ न पतीजुं राजा थाकी से बात ।
साधाण चालिस्यइ राइ कइ साथ ।
बादली हुइ करि वापरउं ।
पावत तार सिस्याउ ढोलिस्या बाइ ॥
उभी पहरइ जागिसिउ ।
अण परि सेविस्यउ आपणउ राय ॥—( पद्य संख्या ६२ )

निसन्देह उपर्युक्त लोक गीतों के उपस्थित किये गये उदाहरण यह सिद्ध करेंगे कि लोक गीतों में कल्पना की विशद उड़ान नहीं; संगीत का शास्त्रीय विधान नहीं; काव्य के कृत्रिम मानों का आग्रह नहीं; है केवल साधारण शब्दों में अन्तर्दशा की सहज स्वाभाविक और मार्मिक अभिव्यक्ति। लेकिन यदि कला रागात्मिक क्षणों की आवेशपूर्ण अभिव्यक्ति है तो ये लोक गीत निश्चय ही कलात्मक हैं। उनमें भावना और संगीतात्मकता का समन्वय है। छंदों में चूंकि छन्दों की यतिबन्धता ही उनके आन्तरिक लय को स्थिरता प्रदान करती है इसलिये छन्द-शास्त्रियों ने प्रत्येक छन्द के लिये कितनी मात्राओं के पश्चात् यति आवश्यक है इसका निर्देश कर दिया है। इसके विपरीत संगीत के हेतु रचे गये पदों और लोकगीतों में यति-निर्धारण का नियम लागू नहीं होता वहाँ 'स्वरसम' का नियम ही साधारणतया स्वीकृत हुआ है। बीसलदेव रासो के रचयिता ने भी 'स्वरसम' के नियम को ही सम्भवतः स्वीकार किया है, और यही कारण है। कि यद्यपि बीसलदेव रासो के छन्दों में यतिबन्धता का अभाव है फिर भी वे गेय हैं।

काव्य के कृत्रिम मानों के अभाव और शास्त्रीय संगीत के विधानों की अनियमितता के कारण ही शायद पं० मोतीलाल जी मेनारिया ने कहा है कि "बीसलदेव रासो गीतकाव्य नहीं है। राजस्थान में यह कभी गाया नहीं गया, न आज गाया जाता है और न इसमें गीतकाव्य के कोई लक्षण मिलते हैं। गीतकाव्य की भाषा में जो चलतापन, छन्दों में जो गति, शब्दों में जो मर्मस्पर्शिता और विषय में जो लोकप्रियता होनी चाहिये वह इसमें नहीं है।"[1] लेकिन छंद और संगीत का जो मूल भेद ऊपर बताया गया है उसके अनुसार तो रासो की गेयता में संदेह प्रगट करना उचित नहीं। 'रघुवर जसप्रकाश' अथवा 'रघुनाथ रूपक गीताँरो' में वर्णित गीतकाव्य के लक्षणों के बीसलदेव रासो के पदों में प्राप्त न होने के कारण यदि इसकी गेयता में प्रश्न चिन्ह लगाया जाता है तब यह कहना पड़ेगा कि 'गीतकाव्य' और 'गीत' का अन्तर समझने का प्रयत्न नहीं किया गया है। 'रघुवर जसप्रकाश' अथवा 'रघुनाथ रूपक गीताँरो' दोनों लक्षण ग्रन्थ हैं जिनमें 'गीत' छंद के लक्षणों का वर्णन है। बीसलदेव रासो 'लोक गीत' है इसलिए इसमें 'गीत' छंद के लक्षण नहीं प्राप्त होते। अब रही बात इसकी भाषा में चलतापन, शब्दों में मर्मस्पर्शिता

---

१—राजस्थानी भाषा और साहित्य—पृ० ८७।

तथा विषय में लोकप्रियता के अभाव की। इनके लिये तो यही कहना पर्याप्त होगा कि इसकी प्राचीनतम प्रति जो आज प्राप्त है वह १६३३ की है। और और इसका रचनाकाल यदि ११ वीं या १२ वीं शताब्दी का माना जाय जैसा कि अनेक कारणों से मानना पड़ता है तब तो यह कहना ही पड़ेगा कि भाषा में चलतापन, शब्दों में मर्मस्पर्शिता और विषय में लोकप्रियता के कारण ही यह चार सौ वर्षों पश्चात् लेखबद्ध हुआ।

## भाषा

यह ठीक है कि आज की प्राचीनतम हस्तलिखित प्रति हमें यह सोचने के लिये बाध्य करती है कि यह ग्रन्थ कई शताब्दियों तक मौखिक रहा फिर भी इसी प्राचीनतम प्रति की भाषा के अन्य स्थल में छिपी हुई प्राचीनता ११ वीं शताब्दी की भाषा का परिचय देती है। यहां वि० सं० १६३३ वाली हस्त-लिखित प्रति में प्राप्त भाषा का संक्षिप्त व्याकरण इसलिये उपस्थित किया जा रहा है कि इसके द्वारा ग्रन्थ के रचना-काल की भाषा पर कुछ प्रकाश पड़ सके—

## उच्चारण

[१] ग्रन्थ में तालव्य 'श' और मूर्द्धन्य 'ष' का प्रयोग नहीं हुआ है। 'ष' का प्रयोग 'ख' के रूप में हुआ —

| | |
|---|---|
| षाण | खान |
| षाल | खाल |
| षेह | खेह |
| षाडउ | खाडउ 'खारा' |
| षउलि | पउलि ( खौरि )—इत्यादि। |

[२] वर्णमाला के अक्षर 'ऋ' और 'ऌ' का प्रयोग शब्दों के साथ नहीं है। मूर्द्धन्य 'ण' का प्रयोग शब्दों के अन्त तथा मध्य में दन्त 'न' के स्थान पर बराबर हुआ है। दन्त्य 'न' से प्रारम्भ होने वाले शब्दों में मूर्द्धन्य 'ण' का प्रयोग नहीं हुआ है—

| | |
|---|---|
| बाहण | बाहन |
| भणई | भनई |
| गिणई | गिनई |

| | |
|---|---|
| आणिज्यो | आनिज्यो |
| वयण | वयन |
| नागिण | नागिन |
| नयण | नयन |
| जिण | जिन, इत्यादि। |

[३] अपभ्रंश की भाँति संज्ञाओं के अन्त में 'डा', 'डी' और 'ड' का प्रयोग मिलता है।

| | |
|---|---|
| मूजड़ा | सेजड़ी |
| मुदड़ी | गोरड़ी |
| रोइडी | चूनडी |
| दुडवडी | आषडी |
| कडवड | पतदउ-इत्यादि। |
| दोवड | |

## कारक

बीसलदेव रासो की १६३३ वाली प्रति में विभक्तियों की दशा बड़ी विचित्र है। डिंगल में प्रयुक्त होने वाली विभक्तियाँ जो प्रायः व्यवहार में लायी गयी हैं उसका प्रधान कारण 'रासो' का १७ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में लिखा जाना ज्ञात होता है। डिंगल में कारक दो प्रकार से व्यक्त किये जाते हैं। एक प्रकार वह है जिसमें शब्दों के साथ विभक्तियों का प्रयोग होता है और दूसरा प्रकार वह है जिसमें शब्दों के साथ परसर्ग ( Post position ) का व्यवहार किया जाता है। रासो में इन दोनों प्रकारों का प्रयोग हुआ है। दोनों प्रकारों के प्रयोगों का उदाहरण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है :—

*१. विभक्ति के साथ—*

प्रथमा—राइ, गोरि, गोरड़ि, पंडइ, जोथिनऊ।

द्वितीया—मुषिकड, पतडउ, प्रीतणउ, सीस्काउ, ओयवउ, कंचउ।

तृतीया—हस्ते, राइ, मुषि, दुषि, दिठि।

चतुर्थी—अजमेरां।

पञ्चमी— +

षष्ठी—सुरगह, सुरह, वनह, जोवनह।

सप्तमी—अजमेरि, उलगइ, ननहि, सिरि, घरि, दुवारि, देसि, मनि।

अष्टमी (सम्बोधन)—पंडिया, बासगदेव, गोरी, सषी— इत्यादि।

२. परसर्ग के साथ—

कर्त्ता— +

कर्म· भावनइ, राणीनइ, जोगीनइ, राजमतीनइ, गोरीनइ।

करण—जाणिकरि, मामासा, पुरुषसिउ, स्वामी सिऊ, धरतीस्यं।

सम्प्रदान— +

अपादान—गउडते, फलाने।

सम्बन्ध— गवरका, उसगाणा की, भोजकइ, सवालाषकउ, 'कुलइक', जेसल-

जेसलमेररी', अजमेरा कयष।

अधिकरण— मनमाहे, राजमाहि, परदेसइ पर, पगे मो।

सम्बोधन—हे हिरणीय, हे बंभणा हे धण—इत्यादि।

## सर्वनाम

पुरुष वाचक

| | प्रथम पुरुष | द्वितीय पुरुष | तृतीय पुरुष |
|---|---|---|---|
| कर्त्ता | म्हे, म्हा | तुम्हे, तू थे, तउ | उण, उव, सो |
| कर्म | म्हाका, हमि, म्हानइ, म्हारइ, म्हाकइ, मोनइ, मोइ | तोहि, तोन, तूनइ, तूहइ, तउ, तुमहो | उनवि, उणनइ, तिहा, तिणइ सोइ |
| करण | म्हा, मं, हमस्यं | तुम्हसं, तं | तिणि सं, तिणासां |
| सम्प्रदान | + | + | + |
| अपादान | + | + | + |
| सम्बन्ध | म्हाकी, म्हाकइ, मउ, मो, म्हारइ, माका, म्हारउ, म्हारीय, म्हा, म्हारी, मधि, म्हाका, म्हारा, मोरा | थारइ, थारउ, थारी, थारा, तिस, तेरो, थाकउ, तुझ, तोरौं | तिखि, उणरइ |
| अधिकरण | + | + | —इत्यादि। |

## अन्य सर्वनाम

'कोई' (अनिश्चय वाचक) 'जे' (सम्बन्ध वाचक)

'एह' (निश्चय वाचक) 'किसउ' (सर्वनामिक विशेषण)

'जिरा' (सम्बन्ध वाचक)
'कह' (प्रश्नवाचक)
'किउ' (प्रश्नवाचक)
'कउ' (प्रश्नवाचक)
'असी' सार्वनामिक विशेषण)
'ए' (निश्चयवाचक)
'ते' (सम्बन्धवाचक बहुवचन)
'कुण' (प्रश्नवाचक)-इत्यादि।
'काइ' (प्रश्नवाचक
'सउ' (सार्वनामिक विशेषण),
'किसकइ' (अनिश्चयवाचक),
'काइ' (अनिश्चयवाचक),
'तऊँ' (निश्चयवाचक)
'कउण' (प्रश्नवाचक),
'एइ' (निश्चयवाचक)

## अव्यय

जिमि—जैसे। किम—कैसे। जाणि—मानों। कइ—मा, अथवा किसा—कैसा। किसी—कैसी। तबइ—तब। इव—इस प्रकार तब—तब। साइ—साथ। किसी पार किस प्रकार। कं—कैसे। सम—समान अरु—और :

## क्रिया

*वर्तमान काल*

कारक की भाँति क्रियाओं का रूप भी बीसलदेव रासो में प्रायः डिंगल का वही है। हिन्दी में वर्तमानकालिक क्रिया के साथ जिस अर्थ में 'है' का प्रयोग होता है डिंगल में उसी अर्थ में प्रायः 'छइ' प्रयुक्त होता है। रासो में है के अर्थ में 'छइ' का प्रयोग प्रायः वर्तमान काल की क्रिया के अन्य पुरुष में पाया जाता है।

अन्य पुरुष—बोलावइ छइ, वाजइ छइ, दीजइ छइ, उइठो छइ, वरसइ छइ, मेलइ, मोडर छइ—इत्यादि।

वर्तमान काल की क्रिया में है के अर्थ में 'छइ' के तथा उकारान्त प्रयोग के अतिरिक्त अपभ्रंश के क्रिया पद 'इकारान्त' का भी प्रयोग अनेक स्थलों पर इस काव्य में किया गया है।

| | एक वचन | बहु वचन |
|---|---|---|
| अन्य पुरुष— | लहलहइ, भणइ, गिणइ, कहइ, गाइ चिनवइ, जाइ, ऊचरइ, पुछइ, नाचइ, बोलावइ, हंसावइ, वरिसइ, इत्यादि। | + |
| मध्यम पुरुष— | धरउ, जाउ, जाणाउ, संचरउ—इत्यादि | + |
| प्रथम पुरुष— | वीनवउ, ब्रनवउ, गरजू, पडउ, लागू, जयउ, कहंउ—इत्यादि। | + |

*भूतकाल*

भूतकालिक क्रियाओं में डिंगल में मूल क्रिया के पीछे 'इउ' 'यउ' 'इउ'

तथा कहीं-कहीं 'इअउ' और 'ठउ' लगा कर सामान्य भूतकाल के रूप बनाये जाते हैं—रासो में ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त हैं-

| | एक वचन | बहु वचन |
|---|---|---|
| अन्य पुरुष— | चालियउ, रहिउ, आयियउ, रच्यउ, कियउ, लीयउ, हरष्यउ, बोलियउ, आलिंगीयउ, दीठउ, मेल्हउ, वइठउ—इत्यादि | + |
| मध्यम पुरुष— | कहउ, सुणउ, इत्यादि। | + |
| प्रथम पुरुष— | छोड़उ, लिजउ, हुवउ, डालोयउ, चूकउ, परिहर्यउ, इत्यादि। | + |

रासो में भूतकाल की क्रियाओं के उपर्युक्त रूपों के अतिरिक्त भी जो अन्य रूप प्राप्त हैं उनका उल्लेख नीचे किया जा रहा है—

| | एक वचन | बहु वचन |
|---|---|---|
| अन्य पु०- | सिरजी, दीन, दीन्हा, आया (खड़ी बोली) दिया (खड़ी बोली हुई स्त्री० खड़ीबोली), दिन्ही (स्त्री), रहा (खड़ी बोली), गयो, आवीया, छाड्या, कीन, गई (स्त्री० खड़ी बोली), गया (पु० खड़ीबोली,)—इत्यादि। | + |
| मध्यम पु०— | देज्यो, सवाहा (खड़ी बोली) आइया, सिरजी, दिन्ही थी, पहुता—इत्यादि। | + |
| प्रथम पु०— | विसारा, करती (स्त्री० खड़ी बोली), बोलइ थी (स्त्री०खड़ी बोली) छंडी (स्त्री०) बोलिज्यो, थाकीय, कही (स्त्री० खड़ी बोली), पिछाणीया आदि। | |

*भविष्यत् काल*

भविष्यत् काल के रूप डिंगल में दो तरह से बनाये जाते हैं १—मूल क्रिया के अन्त में 'सी', 'स्यूं' तथा 'स्यां' लगा कर और २—'ला', 'लो' तथा 'लौं' लगा कर। बीसलदेव रासो में द्वितीय प्रकार से बने भविष्यत् काल की क्रियाओं के रूप का अभाव है।

| | एक वचन | बहु वचन |
|---|---|---|
| अन्य पु०— | आविसो, मरेसी—इत्यादि। | + |
| मध्यम पु०- | + | + |
| प्रथम पुं०— | चालिस्यां; आणिस्यां, मिलेस्यां, ढोलिस्यां, पषालिस्यां, करेस्यां, आविस्यां, पूछिस्यां, इत्यादि। | + |

'सी' 'स्यूं' तथा स्यां' लगा कर बने हुए भविष्यत् काल की क्रियाओं के

रूप के अतिरिक्त जो अन्य रूप 'बीसलदेव' रासो में प्राप्त हैं वे नीचे दिये जा रहे हैं—

| | एक वचन | बहु वचन |
|---|---|---|
| अन्य पुरुष— | जाणिस्यइ, चलवाणागउ, मिलसीय, आविया, विसासइ, मिलेसइ (स्त्री०)। | + |
| मध्यम पुरुष— | + | + |
| प्रथम पुरुष— | करेख, जाणिसिउ (स्त्री०) सेविस्यउ (स्त्री०) गिलउ, पहुंचिज्यो इत्यादि। | ।- |

*पूर्वकालिक क्रिया—*

डिंगल में क्रिया के अन्त में 'एवि' 'एविय' 'इ' 'ई' 'अ' 'य' 'नइ' 'करि' आदि प्रत्यय लगा कर पूर्वकालिक क्रिया के रूप बनाये जाते हैं। रासो में उपयुक्त प्रत्ययों में से कई एक को लगाकर पूर्वकालिक क्रिया के रूप तो बनाये गये ही हैं लेकिन इन प्रत्ययों के योग से बने हुए पूर्वकालिक क्रियाओं के रूपों के अतिरिक्त भी कतिपय अन्य रूप इसमें प्राप्य हैं। नीचे दोनों प्रकार के रूपों का उदाहरण उपस्थित किया जा रहा है—

(अ) डिंगल के प्रत्ययों के योग से बनी हुई क्रियाएँ—

सुणाइ, कहइ, जाइकरि इत्यादि।

(ब) डिंगल के प्रत्ययों के अतिरिक्त पूर्वकालिक क्रियाएं—

सहणजाइ, कहिज्योजाइ, देखउजाइ, मेल्हीजाइ—इत्यादि।

*आज्ञा विधि—*

रासो में आज्ञा और विधि के रूप निम्न प्रकार के पाये जाते हैं—

| | एक वचन | बहु वचन |
|---|---|---|
| अन्य पुरुष— | कीजइ, सुणउ, देइ, गमकरउ, करउ, इत्यादि। | + |
| मध्यम पुरुष— | आणिज्यो, देज्यो, जोइज्यो, करिज्यो, विलवाएज्यो, मानिज्यो, सुणिज्यो, निरवाहिज्यो, चालिज्यो, सुण, सुणउ, कहि, आणउ—इत्यादि। | + |
| प्रथम पुरुष— | + | + |

———

गवरका[1] नंदन त्रिभुवन सार ।
नाद भेदइ[2] थारइ उदर भंडार ॥
एक दंतउ मुषि[3] झलहलइ[4] ।
मुषिकउ[5] बाहण तिलक सेंदूरि[6] ॥
करि जोड़ि[7] नरपति[8] भणइ ।
जाणि करि[9] रोहणी जिमि[10] तपउ[11] सूरि[12] ॥ १ ॥
भवण नइ देपउरे रवि तपई[13] ।

---

१. अ० २ गौरी । आ० ६, ६ गवरिका । आ० १२ गउरि ।
२. अ० २ आ० ६, वंदा ।
३. अ० २ आ० ६, मुख । आ० १२ मुपे ।
४. आ० ६ झलमलइ ( झलमलि = झलमलइ ) ।
५. अ० २ मूषा आ० ६ मूसाका ।
६. अ० २ सेंदुर, आ० १२ सिदूर ।
७. अ० २ जोड़े ।
८. आ० ६ नाहलो (= नाल्हो ) ।
९. अ० २ जाणिक, आ० ६ जाणकि ।
१०. अ० २ राहिणीउ, आ० ६ रोहिणीइउं, आ० ६ रोहिणीयुं, आ० १२ रोहिणीजिउं ।
११. आ० ६ तपे आ० १२ तपइ ।
१२. आ० १२ सूर ।
१३ आ० १२ तलइ ।

यह छंद आ० ६ में १, अ० २ में २, आ० ६ में १, आ० १२ में १ है ।

इस छंद की अंतिम पंक्ति हस्त लिखित प्रति की छंद नं० २ की प्रथम पंक्ति है । लेकिन वह भूल से लिखी हुई ज्ञात होती है । क्योंकि यह पंक्ति ध्रुवक के रूप में है जो प्रत्येक छंद के अंत में आता है ।

हंस गमणि[1] मृगालोचनी[2] नारि।
सीस सवारइ दिन गिणइ[3] ॥
सतषिण[4] उंलीछइ राजदुवारि।
चिहु दिसि नाह निहालती ॥
का[5] सिरजी[6] उलगाणां[7] की नारि।
जाइ दिहाडउ झूरतां[8] ॥ २ ॥

दुसरो[9] कडवउ[10] गणपति गाइ।
नवणि नवकरि[11] लागे जी पाइ[12] ॥
तोहि लंबोदर वीनवउं[13] ।
सिद्धि बुधि का स्वामी सुगति दातार[14] ॥

---

१. अ० २ हंस बाहणि, आ० १२ गज गमणी।
२. अ० २ मिगलोचनि, आ० ६ मृगलोचणी।
३. आ० ६ गणै।
४. आ० ६ सायषण, आ० १२ ततषिण।
५. अ० २, आ० ६ जिण, आ० १२ काइ।
६. अ० २ सिरजइ, आ० ६ सिरजो।
७. आ० ६ उलिगणधर।
८. आ० ६ झूरती, आ० १२ रे झूरता।

यह छंद अ० २ मे १, आ० ६ में २, आ० ६ में २, आ० १२ में ३ है। अ० २ में एक और अतिरिक्त पंक्ति है—"इसी नारी न देव दुख्यिणीकाइं" आ० १२ में चौथी पंक्ति है—"नाहनइं जोवइरे चिहुँदिसइ।"

९. आ० १२ दूसरइ।
१०. आ० ६ कडवेजी, आ० १२ कडुवइजी।
११. आ० ६ नमीकरी, आ० १२ नवण करुँ।
१२. अ० २ वीनमुं, आ० ६ बीनवु, आ० १२ वीनवुं।
१३. अ० २ भूलेउ, आ० १२ भूलोजी।
१४. आ० १२ अरुलागुजी पाइ।

चउथि करउं थारउ पारणउ ।
तंजी भूलउजी[1] अक्षर आणिज्यो ठाइ ॥ ३ ॥

हंस बाहण देवी करधरउ[2] वीण ।
जूठउ[3] किरत कहइ[4] कुल हीण[5] ॥
वर देज्यो[6] मातापारदा[7] ।
भूलउ[8] अक्षर आणिज्यो ठांइ ॥
तइ[9] तूठी[10] अक्षर[11] जूरइ[12] ।
नाल्ह भणइ अति सरसीय वाणि[13] ॥ ४ ॥

१. आ० १२ सिद्धि नइ बुद्धि तणउ भंडार ।

यह छंद आ० ६ में ३, अ० २ में ४, आ० ६ में ३, आ० १२ में २ है। लेकिन अ० २ में १, २, ४ तथा ५ पंक्तियाँ निम्न प्रकार से हैः—

१. तुठी सारदा त्रिभुवन-माई ।
२. देव विनायक लागू हूं पाय ।
४. चउसठि जोगिनि का अगिवाण ।
५. चउथ जोहारू खापरा ।

२. आ० ६ ग्रहइ, आ० १२ करिधरी ।
३. अ० २ कुकठकंथू बोलूं, आ० १२ झूठउ जो कवित ।
४. आ० ६ कहूँ ।
५. आ० ६ मतिहीण ।
६. आ० ६ दीयो ।
७. आ० ६ देवी सारदा, आ० १२ सारदा ।
८. आ० १२ भूलोजो ।
९. अ० २ तो ।
१०. अ० २ तूठां, आ० १२ तूठइं ।
११. अ० २ वर ।
१२. अ० प्राविजइ, आ० १२ जुडइ ।
१३. आ० १२ वाण ।

यह छंद आ०६ में ४, अ०२ में ५, आ०६ में ४, आ०१२ में ४ है।

नाल्ह रसायण रस भरी गाइ ।
तूठी छइ[१] सारदा त्रिभुवन माय ॥
उलगाणा गुण[२] वनवउ[३] ।
सगुण[४] सामाणसा[५] सीपिजो[६] रासि ॥
स्त्रीयचरित्र[७] धण[८] लष्[९] लहइ ।
एकही अक्षर[१०] वचन[११] विणास ॥ ५ ॥

---

किन्तु अ० २ में २, ३, ५ और ६ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

२. कुकठ कथूं बोलूं कुलहीण ।
३. तो तूठां वर प्रापिजइ ।
५. वीसलदे रास प्रगासतां ।
६. नाल्ह कहइ जिणि आवइ हो खोडि ।

इसी प्रकार आ० ६ में निम्न दो पंक्तियाँ अतिरिक्त है :—

सरसता सामणि करौ तै पसाय ।
रास कहूँ राजा वीसलराय ॥

१. आ० १२ तूंतइ तूंठी छै ।
२. आ० ६ रस ।
३. आ० ६ वराणतुं, अ० २ वरणतां, आ० १२ वरणतु ।
४. अ० २ कुकठ, आ० १२ सुगुण ।
५. आ० ६ सुमाणस, आ० १२ सुमांणसा ।
६. अ० २ जिण कहई, आ० ६ तुम्हे सीपज्यो, आ० १२ सीपि-ज्यो रास ।
७. अ० २ अस्त्री चरित्र, आ० १२ सतीय चरित ।
८. अ० २ गति ।
९. अ० २ को, आ० १२ लपलहै ।
१०. अ० २ आखर ।
११. अ० २ रस सवइ ।

यह छंद आ० ९ में ५, अ० २ में ३, आ० ६ में ४, आ० १२ में ५ है । किन्तु अ० २ में और आ० ६ में ४ थी पंक्ति इस प्रकार है :—

राजमतीय कुमरीय मनह चितवइ[1] ।
हसिवि वेटी[2] बाबा पहि जाइ ॥
सुणउ नरेसर वीनती ।
रूपंक इम मोहनी जांणि[3] ॥
सुरगिहि[4] मोहछइ[5] देवता ।
जोइज्यो वर अति सगुण[6] सुजाण ॥ ६ ॥

पंडिया[7] तोन बोलावइछइ[8] राय[9] ।
लेपतडउ[10] पांड्या[11] रावलइ[12] आव[13] ॥

आ० २—कुकठ कुमाणसा जिण कहई रास ।
आ० ६—कुकठ कुमाणस सीप न लाय ।

आ० १२ में प्रथम पंक्ति है—नाल्ह सायण रासभ गाय तथा अंतिम पंक्ति है—एकणि कुवचन सरव विणास ।

१. आ० ६ मनहि चिताय ।
२. आ० ६ हस हस वेटी ।
३. आ० ६ मोही जाणि ।
४. आ० १२ सरगहि ।
५. आ० १२ मोह्याछै ।
६. आ० १२ सुगण ।

यह छंद आ० ६ में ६ है, आ० १२ में ६ है। लेकिन आ० १२ में इसकी प्रथम चार पंक्तियाँ है :—

१. राजमती यौवन भरी ।
२. बापनइ पासितइ मल्ही कुवरी ।
३. सुणहु नरेसर वीनती ।
४. रूपइक दर्प मेटती जाण ।

७. आ० २ पाड्या ।
८. आ० २ हो, आ० १२ तो नइ बोलावइ छै ।
९. आ० १२ राव ।
१०. आ० ६ पतडउ लेइ करि ।
११. आ० २ जोसी, आ० १२ थे ।
१२. आ० २ बेगोतु, आ० १२ वैला जी ।
१३. आ० २ आई ।

सुवर[1] सों[2] था म्हारा[3] पंडिया[4] ।
आणि कोई नर[5] चतुर सुजाण ॥
सुरगइ[6] मोहइ[7] देवता ।
वर वीसल विचिक्षण राजा वीसलदेउ चहुआण ॥ ७ ॥

गढ़ अजमेरि[8] वसइरि[9] भूवालि[10] ।
चहुआण कुल[11] तिलक सिंगार[12] ॥

---

१. अ० २ सुदिन, आ० १२ सोवर ।
२. अ० २ कहे, आ० ६ कन्हि, आ० १२ सोथे ।
३. अ० २ रूड़ा, आ० ६ न ।
४. आ० ६ जोवसी ।
५. आ० १२ नागर ।
६. अ० २ आ० ६ सुरनर, आ० १२ सुरगहि ।
७. आ० १२ मोहइ छै ।

यह छन्द आ० ६ में ८, अ० २ में १५, आ० ६ में १२, आ० १२ में ८ है । किन्तु अ० २ में पंक्ति नं० ४ और ६ इस प्रकार हैं :—

४. चतुर नागण ईसउ आणज्यो चंद ।
६. जिम गोवल माहिं सोहइ गोव्यंद ।

और आ० ६ में पंक्ति नं० ४ और ६ हैं :—

४. चतुर नर आणजो वींद ।
६. उवाका चरण दीसि जिसा पुनिम चंद ।

आ० १२ में अंतिम पंक्ति है—वीरविचक्षण वीसल चहुवाण ।

८. आ० ६ अजमेरां, आ० १२ अजमेरे ।
९. आ० ६ वसैजी, आ० १२ वसइरे ।
१०. आ० ६ भूपाल, आ० १२ भोवाल ।
११. आ० ६ वंश, आ० १२ चहुंवांणां कुल ।
१२. आ० ६ नेलाड़ि ।

कुलीय[1] छत्री से[2] ऊलगइ ।
मइमत्तह[3] स्त्रीय सहस अठार ॥
लाष तोरा घरे[4] पाषरइ[5] ।
ईसउ वर बीसलदे[6] चहुआण ॥ ८ ॥

बाभण[7] भाट[8] बोलावइछइ[9] राय ।
लगन सोपारीय[10] दीन[11] पठाइ[12] ॥
गढ़ अजमेर[13] थेगम[14] करउ ।
उचइ का पाटि[15] बइसारि[16] नइ पषालिज्यो पाइ ।

१. आ० ६ चोरास्या ।
२. आ० ६ जिहां, आ० १२ सेई ।
३. आ० ६ मयदह ।
४. आ० ६ पाषर ।
५. आ० ६ पडे ।
६. आ० ६ वीसलते, आ० १२ सुवर वीसल ।

यह छन्द आ० ६ में ६, आ० ६ में १७, आ० १२ में ६ है। किन्तु आ० ६ में पंक्तियाँ ४ और ६ इस प्रकार हैं :—

४. वाध्या हस्ती घुरे नीसाण ।
६ पाडीयो सोभा वर वीसल राय ।

आ० १२ में ४ थी तथा ५ वीं पंक्तियाँ हैं :—

४. मयमत्त हस्तीय गुजइछै बारि ।
५. लाष तुरी पाषर पडै ॥

७. आ० २ पाडयो, आ० ६ पाडीया ।
८. आ० २ आ० ६, तोहि ।
९. आ० २ बोलावइ, आ० १२ छै ।
१०. आ० १२ सुपारीय ।
११. आ० ६ दीय, आ० २ लेकरि आ० ६ लेई ।
१२. आ० २ जाहि, आ० ६ रावलैजाय ।
१३. आ० २ अजमेरां, आ० १२ अजमेरि ।
१४. आ० ६ जावज्यो, आ० १२ गमन ।
१५. आ० २ चउरी, आ० ६ चांचर ।
१६. आ० २ बइसी, आ० ६ बैठ ।

बेटी कहिज्यो राजा भोज की।
राजमती वर वीसल राउ[१] ॥ ९ ॥

दीन[२] सोपारइ[3] हरषीयउ[४] राउ[५]।
मनह आणंदीयउ अतिहि उछाह॥
वाजे वाजइछइ नीसाणे घाउ।
घरिघरि[६] गुडी रे उछली[७]॥
दोवड़ वाजइछइ दुडवडी।
कामणि गावइछइ[८] मंगल च्यारि[९]॥
चहुआण कुलि[१०] उधरउ[११]।
जइघरि[१२] आवी[१३] जाति पवारि[१४] ॥१०॥

---

१. आ० १२ राव।

यह छुन्द आ० ६ में १०, अ० २ में १६, आ० ६ में १६, आ० १२ में १० है। आ० १२ में ४थी पंक्ति है :—पाटि वैसारि पाषालिज्यो पाइ।

२. अ० २ आ० ६ दई, आ० १२ दीन्ही।

३. आ० १२ सोपारी।

४. आ० ६, आ० ६, मनहरषीयउ, अ० २ मनिहरष्योछइ, आ० १२ मनहरषीयो।

५. आ० १२ राव।

६. अ० २, आ० ६, गढ़माहिं।

७. अ० २, आ० ६, ऊछली।

८. अ० २, आ० ६, तोरणि, आ० १२ गावै।

९. आ० १२ च्यार।

१०. आ० ६, वंस, आ० १२ कुल।

११. आ० १२ ऊधर्यो।

१२. अ० २ आ० ६, जोघरि, आ० १२ जउ।

१३. आ० ६ आवइछै, आ० ६ आवी, आ० १२ आविस्यै।

१४. आ० १२ पुवारि।

यह छुन्द आ० ६ में १२, अ० २ में २१, आ० ६ में २१,

लग्न कउ बंभण[1] समदीयउछाह[2] राइ ।
दीन्हा तेजी[3] कुलह कबाइ[4] ॥
दीन्हो[5] सोनउ सोलहउ[6] ।
पाट पटंबर[7] पाकाजी[8] पान ॥
कर ज्योरी[9] राजा भणइ[10] ।
आगिला[11] राउ[12] सिउ[13] रिषज्यो[14] मान[15] ॥११॥

---

आ० १२ में ११ है। लेकिन अ० २ तथा आ० ६ में २री तथा ५वीं पंक्तियाँ नहीं हैं।

आ० १२ में ३री पंक्ति है—बाजारे बाज्या नीसाणे रे घाव।
४थी „ मनहि आणदिउ अधिक उछाह।
५वीं „ दुडवड बाजै छै दुडवडी।

१. आ० १२ बांभण।
२. अ० २ समदइछइ, आ० ६ नै दीयै, आ० १२ समुदायो।
३. आ० ९ तेजीय, अ० २ घोड़उ, आ० ६ घोडे।
४. आ० ६ कमाय।
५. अ० २ दीन्हो, आ० १२ दीन्हउछै।
६. आ० १२ सोनोजी।
७. अ० २ पटोला, आ० ६ बइसारी नै।
८. अ० २ आ० ६, बीड़ा।
९. आ० १२ ज्योडी।
१०. आ० ६ कहइ।
११. अ० २ पांडया, आ० ६ पांडीया।
१२. अ० २ थोड़उ, आ० ६ तुम्ह, आ० १२ राव।
१३. अ० २ म्हाको, आ० ६ माहरो, आ० १२ सूं।
१४. आ० १२ राषिज्यो।
१५. आ० १२ मन।

यह छन्द आ० ९ में १३, अ० २ में २२, आ० ६ में २२, आ० १२ में १२ है।

बाभण सहित भीतरि गयो राउ ।
मनह[1] आणंदिय[2] अधिक उछाह ॥
गढ़ अजमेरि वधीमणी[3] ।
पाट महादेवि राणी नीमीयउधीन[4] ॥
संगलउ अंतेउर कोपीउ[5] ॥
थोड़ी थोड़ी[6] म्हाकी[7] राषिज्यो माम[8] ॥१२॥

राजा[9] मंत्रीय[10] लीयउ[11] रे बोलाय ।
बात कही राजा वरि[12] बइसाइ[13] ॥
आगहो[14] राजा मोहउ[15] थीरिकउ[16] ।
थे संजहु[17] हउयर[18] तुरीय केकांण ॥

---

१. आ० १२ मनहि ।
२. आ० १२ आणंदिउ ।
३. आ० १२ वधामणा ।
४. आ० १२ धन ।
५. आ० ६ कोपियउ, आ० १२ सयल अतेवर कोपीयो।
६. आ० ६ थोड़ो थोड़ो; आ० १२ थोडउ ।
७. आ० ६ मांकउ, आ० १२ म्हांकउ ।
८. आ० १२ मान ।
यह छन्द आ० ६ में १४, आ० १२ में १३ हे ।
९. आ० १२ राज ।
१०. आ० १२ मत्री ।
११. आ० १२ लीयो ।
१२. आ० १२ चाचरि ।
१३. आ० १२ बैसाय ।
१४. आ० ६ आगै, आ० १२ आगै ।
१५. आ० ६ राजा मोहउ, आ० १२ राजा मोहउ ।
१६. आ० १२ बारको ।
१७. आ० १२ सजहुवौ ।
१८. आ० १२ हयवर ।

संजहु[1] गूडर[2] पालषी ।
संजऊ[3] वाजा[4] अउर[5] निसाण ॥
संजऊ[6] पाइक[7] पाषर्या ।
थे विलंविण[8] करिज्यो कहइ[9] चहुआण[10] ॥१३॥

तठइ[11] ब्याहण चालियऊ[12] वीसलराउ[13] ।
चिहु दिसे[14] थाणा भोज पाठइ[15] ॥
तुरीय भला चढ़ि आविज्यो[16] ।
जे थाणा थाते[17] बोलावीया राय[18] ॥
कुलीय छत्तीसइ जे चडइ[19] ।
वाजा हो बाजणा अवर मढ़ाइ[20] ॥

---

१. आ० १२ सजहुवौ । २. आ० १२ घोडा ।
३. आ० १२ सजहु । ४. आ० १२ वाराजा ।
५. आ० १२ अवर । ६. आ० १२ सजहुवौ ।
७. आ० १२ पायक । ८. आ० १२ विलंबम ।
९. आ० १२ कहै । १०. आ० १२ चहुवांण ।

यह छंद आ० १२ में १४, आ० ६ में १५ है ।

११. आ० १२ तठै ।
१२. आ० १२ चालीयो ।
१३. आ० १२ वीसलराइ ।
१४. आ० १२ दिसि ।
१५. आ० १२ पठाय ।
१६. आ० ६ तुरीया भला चढ़ि आविज्योराय, आ० १२ तुरीय भले रे आवियै ।
१७. आ० १२ ज्युं थांण थाते ।
१८. आ० १२ राइ ।
१९. आ० १२ चढै ।
२०. आ० १२ मढा ।

सात सहस पाइक गुडइ[१] ।
भाट बाभण तठइ[२] करइ[३] बषाण ॥
मयमत[४] हस्ती सिंगारिजइ[५] ।
इणि परि[६] चालीयउ[७] राइ चऊआण[८] ॥१४॥

मेलि मिली तवइ चड़ीयउ छइ राय[९] ।
सूरिज मंडल[१०] रहिउ लुकाइ ॥
कउतिग आया[११] देवता ।
स्वर्गइ[१२] आवीया[१३] सुरह[१४] वेमाण ॥
लूण उतारइ[१५] अपछरा ।
तउधन[१६] हो वीसल[१७] चऊआण ॥१५॥

---

१. आ० १२ जुडै ।
२. आ० १२ तठै ।
३. आ० १२ करै ।
४. आ० १२ मइमंत ।
५. आ० १२ सिंगारि जै ।
६. आ० १२ इणपरि ।
७. आ० १२ हालीयउ ।
८. आ० १२ रायचौहाण ।
यह छंद आ० ६ में १६, आ० १२ में १५ है ।
९. आ० १२ तठै चडिउ छै राइ ।
१०. आ० ६ खेह स्युं, आ० १२ पै है ।
११. अ० २ आव्या, आ० १२ कउत्तिक आयछै ।
१२. आ० ६ स्वरग्रह, अ० २ आ० ६ कौतिग ।
१३. अ० २ आव्या, आ० ६ में आया ।
१४. आ० ६ अमर, अ० २ इन्द्र, आ० ६ इन्द्र, आ० १२ अमर ।
१५. आ० ६ उतारइछइ, आ० १२ उतारै ।
१६. आ० ६ तुंधनधन, आ० १२ धनधनतुं ।
१७. आ० ६ वीसलदे, आ० १२ वीसलदे चहुआण ।
यह छंद आ० ६ में १७, अ० २, आ० ६ में १७, आ० १२

पूजियो गणपति[1] चालीछइ[2] जान ।
लहइ चउरासीय[3] दूणउंजी[4] मान ॥
असी[5] सहस घोडा चढ़ा[6] ।
साठि[7] सहस पालंकी अपारि[8] ॥
गुजर गउड[9] चाल्या[10] घणा ।
रावराणा तणा[11] अंत न पार ॥१६॥

---

में १६ है किन्तु अ० २ और आ० ६ में १ ली तथा २ री पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:—

१. जान संजोई वीसलराव ।
२. खेह उठी रवि गयो लुकाइ ।

१. अ० २ विनायक ।
२. आ० ६ चालीयइ, अ० २ चाल्योछइ, आ० १२ चालीछै ।
३. अ० २ चौरास्यासहु, आ० १२ लहैचौरासीया ।
४. आ० ६ दूणजी, अ० २ दीघउछइ, आ० ६ दीधौ, आ० १२ दुणौजी ।
५. आ० १२ असीय ।
६. आ० १२ चढ्या ।
७. आ० १२ सात ।
८. आ० १२ यपार
९. आ० १२ गौड ।
१०. आ० १२ मिल्या ।
११. आ० १२ तणउ ।

यह छंद आ० ६ में १८, अ० एवं आ० ६ में २८, आ० १२ में १७ है। किन्तु अ० २ और आ० ६ में ३, ४, ५ तथा ६, पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:—

३. आठ सहस नेजा-धणी ।
४. पालखी बइठा सहस पंचास ।
५. हाथी चाल्या दोढसौ ।
६. असी सहस चाल्या केकाण ।

इनके अतिरिक्त निम्न दो पंक्तियाँ और हैं:—

रथ ऊपरि धज फरहरई ।
खेहाडंबर नवि सूझइ ( आ० ६-छाईयो ) भाण ।

पाइ[१] कंकण सिरि[२] तिलक[३] दीवाइ[४] ।
प्रथम पयाणउ[५] कीधउ[६] से ठेलाइ[७] ॥
सोवन मोतिय[८] झलहलइ[९] ।
कुलीय छत्री से सवि मिली[१०] आइ ॥
गुजर गउडते दाहिमा[११] ।
कछवाहा हाडा चंदेला[१२] ॥
भाटी हो जेसलमेर का ।
दलबल देषि हसउ चहूआण ॥
नल्ह कवीसर अस[१३] भणइ ।
सर[१४] सांभरि राजा कियो[१५] मेल्हाण ॥१७॥

---

१. आ० १२, पाय ।
२. आ० १२, सिर ।
३. आ० १२, तिलका ।
४. आ० १२ पाउ ।
५. आ० १२ पयाणौं ।
६. आ० ६ पयासाय ( कीधो बाद में बढ़ाया गया जान पड़ता है ) आ० १२ कीयो ।
७. आ० १२ ठेलउ ।
८. आ० ६ मौड अति, आ० १२ मौडति ।
९. आ० १२ झलहलै ।
१०. आ० ६ मिलीयछइ ।
११. आ० ६, तिहां डाहिमा, आ० १२, गूजरगौडति दाहिमा ।
१२. आ० ६, बलीय चंदेल, आ० १२ बलीय चंदेल ।
१३. आ० १२, इम ।
१४. आ० १२, सरिस ।
१५. आ० १२, की ।

यह छंद आ० ६ में १६, आ० १२ में १८ है ।
आ० १२ में ४ थी पंक्ति है—"कुलीय छत्तीसीई मीलीया छै आइ ।"

सर[1] सांभरि थी आवीयउ[2] राय[3] ।
चंपावती पऊतलउ[4] जाइ ॥
हइ[5] गय अंत न पाइजइ[6] ।
पायदलह[7] हस्तीय सहस[8] मयंक[9] ॥
साठि सहस राजा मिल्या ।
पाली गिणत[10] न लाभइ[11] अंत ॥१८॥

देव[12] वधेरइ दीयउ[13] मेल्हाण ।
ऊचरइ[14] बंभण वेद पुराण ॥
मंगल गावइ[15] कामणी[16] ।
पंच सबद करइ[17] झुरझुणकार[18] ॥

---

१. आ० १२ सरस ।
२. आ० १२ आवीयो ।
३. आ० १२ राइ ।
४. आ० ६ पहूतो, आ० १२ पहुतलि ।
५. आ० १२ हय ।
६. आ० १२ लाभिजइ ।
७. आ० १२ मयगल ।
८. आ० १२ एकसउ ।
९. आ० १२ मयमंत्त ।
१०. आ० १२ पालागिणत ।
११. आ० १२ लाभै ।
यह छंद आ० ६ में २०, आ० १२ में १६ है ।
१२. आ० २ जाइ ।
१३. आ० १२ वधेरडै दीयो ।
१४. आ० १२ वाचउ. आ० ६ जिहां पढ़ै ।
१५. आ० १२ गावै ।
१६. आ० १२ कामिनी ।
१७. आ० २, आ० ६ तणा, आ० १२ करै ।
१८. आ० ६, आ० २, आ० ६, झुणकार, आ० १२ झणकार ।

मेघाडंबर सिरि[1] छत्र[2] धरइ[3] ।
सुवस[4] वसउ थारउ[5] एह[6] संसार ॥१९॥

पायक[7] धनुषधर कीयउ[8] आगे वाण ।
वाजाइ[9] हो वाजा[10] गुहिर नीसाण ॥
भेरबरघु[11] तिहा भरहरइ ।
बाजइ[12] बरघू जे भला तूरि[13] ॥
राजा चालो[14] परिखवा ।
तठइ[15] षेहाडंबर छाइउ[16] सूरि ॥२०॥

---

१. आ० ६ ( में नहीं है ) ।
२. आ० ६ ताडीयो ।
३. आ० ६ छइ, अ० २ दियउ, आ० १२ धरै ।
४. अ० २ आज ।
५. अ० २ सफलराजा, आ० १२ वसहु थारे ।
६. आ० ६ इहु, अ० २ जनम, आ० १२ हुइ ।

यह छंद आ० ६ में २१, अ० २, आ० ६ में ३०, आ० १२ में २० है । किन्तु अ० २ और आ० ६ में ६ठी पंक्ति इस प्रकार है:—

आज सफलराजा जनम संसार ।

और आ० ६ में पहली पंक्ति नहीं है ।

७. आ० १२ पाइक ।
८. आ० ६ कीया, आ० १२ ( में नहीं है ) ।
९. आ० ६ वाजइ, आ० १२ वाजा ।
१०. आ० १२ वाजै ।
११. आ० ६ बजारतां ।
१२. आ० १२ बाजैछै ।
१३. आ० १२ तूर ।
१४. आ० ६ चालिउ, आ० १२ चालियो ।
१५. आ० १२ तठै ।
१६. आ० ६ लुकिरह्यउ, आ० १२ छाईयो ।

यह छंद आ० ६ में २२ है, आ० १२ में २१ है ।

आ० १२ में ३ री पंक्ति है—भेरिबर तूरहि भरहरइ ।

पाय कंकण सिरि[1] बंधियउ[2] मउड़[3] ।
पंचमी[4] मंजलि गयोउ[5] दुरग चीत्तोड़ ॥
राता हो फूंदा पाटका ।
कडी आली[6] हीरा की जोड़ि ॥
चिहु दिसि मोतीय झिगमिगइ ।
कालीय पीलीय ढलकइछइ[7] ढाल ॥
एक माता दूजो ऊमता ।
तवइ[8] राजा जाइ अरू वासी छइ[9] धार ॥२१॥
धारि कयउ राजा सामहउ जाइ ।
पाचमी मंजलि वासउ वस्या[10] ॥

---

१. आ० ६ शिर ।
२. आ० १२ बंधियो ।
३. आ० १२ मौड़ ।
४. अ० २ और आ० ६ प्रथम, आ० १२ पांचमी ।
५. अ० २ पयाणउ, आ० ६ पीयाणो, आ० १२ गयो ।
६. आ० १२ बंधी ।
७. आ० १ ढलकैछै ।
८. आ० १२ तठै ।
९. आ० १२ छै ।

इस छंद की पंक्ति संख्या ४, ५, ६, अ० २ और आ० ६ में इस प्रकार है—

४. ब्राह्मण उचरइ वेद पुराण ।
५. मंगल गावइ कामनी ।
६. उठी षेह नवी सूझै भाण ।

तथा ७ वीं और ८ वीं पंक्तियां अ० २ और आ० ६ में नहीं हैं । यह छंद आ० ६ में २३ और अ० २ में २१ है तथा आ० १२ में २२ है ।

१०. आ० ६ वस्यउ ।

तलहटी ऊतरिउ[1] वीसल राउ[2] ।
राजा हो भोज कइ[3] लागउ छइ[4] पांइ ॥
कर झाली उचलियउ[5] ।
कुसल पुछइ[6] राजा कंठि लगाइ ॥२१॥

संजइछइ[7] राजमतीकउ वीर ।
माणिक मोतीय[8] जड्योउ[9] जंजीर ॥
लाष सावा[10] पाषरि[11] पंडइ[12] ।
पालषी बइठी लषसवा एक ॥
आगइ हो गइवर वहु गुडइ ।
पाला हो पाइक अंत न पार ॥
नवरंग नाचइ[13] अपछरा ।

---

१. आ० १२ उतर्यो ।
२. आ० १२ राइ ।
३. आ० १२ राजाभोज रइ वीसल ।
४. आ० १२ छै ।
५. आ० १२ करिझाली ऊचउलीयो ।
६. आ० १२ पुछै ।

यह छन्द आ० ८ में २४, आ० १२ में २३ है ।

आ० १२ में प्रथम और द्वितीय पंक्ति है—

१. घारकउ राजाजी सामुहोजाइ ।
२. पंच मंजल वासइ वस्यउ ॥

७. आ० १२ साम्हो जोवैछै ।
८. आ० १२ मोत्या ।
९. आ० १२ जडित ।
१०. आ० १२ सवा ।
११. आ० १२ पाषर ।
१२. आ० १२ पडै ।
१३. आ० १२ नाचैछै ।

सामहेलउ हुवउ[1] राइ परिवार[2] ॥
मोट हो क्षत्री मालवइ ।
तठइ तुरीय संपिया चमर ढुलाइ ॥
उलीभ चंडीयउछइ[3] राउ न लावइ वार[4] ।
स्वामी स्रीउ सामुही आई छइ धार[5] ॥
कुलीय छत्री सइगल छइ[6] ।
सरव सुहागण सुन्दर नारि ॥
लूण उतारइ अपछरा ।
राजा हो आवीय[7] माह[8] दुवारि ॥२३॥

तोरण आवीयउ वीसलराउ ।
अउहव सूहव कउतिग जाइ ॥
मोत्यां का आपा पडइ[9] ।
चोवा[10] चन्दन तिलक[11] सिंदुरि ॥

---

१. आ० ६ सामुहउ हुई, आ० १२ सामहलउ ।
२. आ० राजा परवार ।
३. आ० १२ चढीयौछै ।
४. आ० १२ राय न लाईयवार ।
५. आ० १२ स्वांमि सुसांमह आई छै धार ।
६. आ० १२ कुलीय छतीसै सगलैछै ।

यह छन्द आ० ६ में २५, आ० १२ में २४ और २५ है किन्तु आ० ६ और आ० १२ में पक्ति ६-१० नहीं हैं ।

७. आ० १२ आईयो ।
८. आ० १२ सीह ।
९. अ० २ किया, आ० ६ हूया, आ० १२ पड़े ।
१०. आ० ६ कंकू ।
११. आ० १२ तेल ।

अवली सवली करइ[1] आरती ।
जाणि करि तोरणि[2] उग्या[3] सूरि[4] ॥२४॥

राजा जी[5] उतऱ्या[6] नयर[7] मझारि ।
मन माहे[8] हरषीय[9] राजकुमारि ॥
जाइ[10] सषी करउ[11] आरती ।
कलस[12] संपूरण[13] पूनिम चन्द ॥
सुरनर[14] मोह्या सुरगका[15] ।

---

१. अ० २ आ० ६ ( में नहीं है ) ।
२. आ० १२ रोहिणी ।
३. अ० २ आ० ६ उगियो, आ० १२ ऊगीयो ।
४. आ० १२ सूर ।

यह छन्द आ० ६ में २७, अ० २ में ५२, आ० ६ में ४६ आ० १२ में २६ है । अ० २ में दूसरी पंक्ति इस प्रकार है—

पंच सखी मिली कलस वंदावि

आ० १२ में प्रथम दो पंक्तियां इस प्रकार हैः—

१. तोरण आवीयो वीसल राय ।
२. आउहिव सूह व कौतिक जाइ ।

५. अ० २ बीसल, आ० ६ वीसल ।
६. अ० २ आव्यौ, आ० ६ आवीयो ।
७. आ० ६ नगर, आ० १२ नगर ।
८+६. अ० २, आ० ६ मन हरषीघन, आ० ६ मनमाहे हरषीया, आ० १२ मन माहि ।
१०. अ० २ चाल्यो, आ० ६ चालौ ।
११. आ० १२ करौ ।
१२. आ० २ आ० ६ सकल ।
१३. अ० २ दिसो जीसो, आ० ६ दीसै जसो ।
१४. आ० १२ सुरवर ।
१५. आ० ६ छइ देवता, अ० २ आ० ६ देवता ।

गोकल[1] माहि जिस[2] प्रतिख्य[3] गोबंद[4] ॥२५॥

सात सहेलीय[5] बइठीं छइ[6] आइ ।
राजा हो[7] माय[8] पूजावूण[9] जाइ ॥
चन्दण सीष भरी लीय ।
काथ[10] सोपारीय पाका हो[11] पान ॥
रंग[12] हथसेवउ वाहिजइ[13] ।
जाणि कि[14] वइठा[15] हो रुकमिणि[16] कान्ह ॥२६॥

---

१. अ० २ गोवल माहि ।
२. अ० २ जिय, आ० १२ जिसउ ।
३. अ० २ सोहइ, आ० ६ वसै, आ० १२ प्रत्यक्ष ।
४. आ० १२ गोविंद ।

यह छन्द आ० ६ में २८, अ० २ में ४६, आ० ६ में ४६ तथा आ० १२ में २७ है ।

५. अ० २, आ० ६ पंच सखी मिलि ।
६ अ० २ ( नहीं है ) आ० १२ छै ।
७. अ० २ आ० ६ राजा है, आ० १२ राजाजी ।
८. आ० १२ माइ ।
९. अ० २ पुजावण, आ० १२ पुजावण ।
१०. आ० १२ हाथि ।
११. अ० २, आ० ६, आ० ६ पाका, आ० १२ सुपारिय पाका जी ।
१२ अ० २ हइ, आ० ६ हरषै ।
१३. अ० २ जोडियउ, आ० ६ मेलीयौ, आ० वाहीजै :
१४. आ० ६ जाणिकरि ।
१५. आ० १२ बैठौ ।
१६. आ० १२ रुषमणी ।

यह छन्द आ० ६ में २६, आ० ६ में ५२, अ० २ में ५७, आ० १२ में २८ है । अ० २ तथा आ० ६ में तीसरी पंक्ति इस प्रकार है—

मोतीयां का रे आषा पड़इ ।

देसि[१] मालवइ[२] हुउ[३] उछाह[४] ।
राजमती कउ[५] रच्यउ[६] वीवाह ॥
चन्दण थाठ कउ मांडहुउ ।
सोना की[७] चउरी[८] मोता[९] की माल ॥
पहिल[१०] फेरइ दीज[११] दाइजउ[१२] ।
मण्डलगढ़ संउ[१३] ऊपर[१४] माल[१५] ॥२७॥

दूजइ[१६] फेरइजउ[१७] फिरइ[१८] राइ ।
भानमती राखी कुमर की माइ ॥

---

१. आ० ६ देस, आ० १२ देस ।
२. अ० २, आ० ६ मालागिर, आ० १२ मालवै ।
३. आ० ६ हूयउ, अ० २ हूवउ ।
४. आ० ६ उच्छाह ।
५. अ० २ राजकुंवर को, आ० १२ केरउ ।
६. अ० २ हूवउ, आ० १२ रच्योरे ।
७. आ० ६ सोना तणी ।
८. आ० १२ चोरी ।
९. अ० २, आ० ६ मोती की, आ० ६ मोती री, आ० १२ मोती की ।
१०. आ० ६ पैहलै, आ० १२ पहिलै ।
११. अ० २ राय, आ० ६ (में नहीं है), आ० १२ फेरै दीयो ।
१२. अ० २ दे डाइचो (देराइजौ) आ० ६ डाइचौ, आ० १२ दायोजउ
१३. आ० ६ सिउं, अ० २, आ० ६ सौं ।
१४-१५ अ० २ देइ कुडाल, आ० ६ देस कुडाल ।

यह छन्द आ० ६ में ३०, आ० ६ में ५६, अ० २ में ६०, आ० १२ में २६ है । आ० १२ में अंतिम पंक्ति है—

मंडलिगढ सुंऊ परिमाल ।

१६. अ० २ आ० ६ तीजो, आ० १२ दूजै ।
१७+१८. अ० २ आ० ६ जबफेरइ छै, अ० १२ फेरे फिरियौछै ।

काई[1] देइछइ[2] दाइजउ[3] ।
उण दीन्हा[4] अरथ[5] गरथ[6] भंडार ॥
दीनउ छइ देस सवालषउ ।
सर[7] सांभरि[8] सिउ[9] नागर चाल ॥
टउंक टोडा[10] तेहविचाल ।
सातहो बूंदी सरिसिउ देस कंडाल[11] ॥२८॥

तीजइ[12] फेरइ[13] फेरीयउ[14] राय[15] ।
सगल अंतेउर बइठउ छइ आइ ॥
कायउ[16] दीजइ छइ दाइजउ[17] ।

---

१. आ० ६ काउं, अ० २ आ० ६ राजकुंवर, आ० १२ कांयुं ।
२. अ० २ आ० ६ ( में नहीं है ) आ० १२ दियो छै ।
३. अ० २ दाडाइचौ, आ० ६ द्यौ डाइचौ, आ० १२ दायजइ ।
४+५. अ० २ आ० ६ दीया साघ न, आ० १२ उणि दीना छै, अरथ ।
६. आ० १२ दरब ।
७+८. अ० २ दीया सैभर, आ० १२ सरस सामरि ।
९. अ० २ दीघा, आ० १२ सुं ।
१०. आ० १२ टोडा छै ।
११. आ० १२ कउडाल ।

यह छन्द आ० ६ में ३१, आ० ६ में ५८, अ० २ में ६२, आ० १२ में ३० है । अ० २ में इस छन्द की दूसरी कड़ी है–"पाट महादे राणी लीई छइ बुलाई ।" तथा तीसरी कड़ी है–"राज कुंवर दाड़ाइचौ ।" चौथी पंक्ति है, "दीघा सेंभर नागर चाल ।" छठी पंक्ति है–"मांडल गढ़ से ऊपर माल ।" आ० ६ में भी अंतिम पंक्ति अ० २ की तरह है ।

१२+१३. अ० २ आ० ६ दूजो फेरो, आ० १२ तीजे फेरै ।
१४. आ० १२ फिरियो छै ।
१५. आ० १२ राउ ।
१६. आ० ६ काय, आ० १२ कांयुं ।
१७. अ० २ दाडाइचौ दाइ जौ २ आ० ६ को डायचौ (= को दायजौ २) । आ० १२ दायजी ।

दीन्हा ताजीय तुरीय सुमाइ ॥
दीन्हो[१] सात देस मण्डोवरउ ।
सात समुंद[२] सोरठ गुजराति[3] ॥२९॥
कंधि[४] जनोईय[५] पहिरणइ[६] चीर ।
हाथि[७] तम्बालइ[८] अंजल[९] नीर ॥
राजा पइछइ[१०] दाइजउ[११] ।
सोवन पालषी सावटू सउडि[१२] ॥
कुलीय क्षत्री से पायती ।
पाय पषलिनइ पूजियउ मउड ॥

---

१. आ० ६ दीधो, आ १२ दीनउ ।
२. आ० २ समंद ।
३. आ० १२ गुजरात ।

यह छंद आ० ६ में ३२ आ० ६ में ५७, आ० २ में ६१, आ० १२ में ३१ है। इस छन्द की ४थी पंक्ति आ० २ में है :—"दीधा साचन अरथ भंडार ।" तथा आ० ६ में है :—"दीवा सामेहणो नवसर हार ।" आ० १२ में दूसरी पंक्ति है :—सगलो अंतेवर बैठो छै आइ ।

चौथी पंक्ति है :—दीना तेजीय तुरी सउपाइ ॥

४. आ० ६ गलइ, आ० १२ कांधि ।
५. आ० ६ जनोई.राजा, आ० १२ जनेऊ ।
६. आ० १२ रइपहिरणो ।
७. आ० ६ हाथे ।
८. आ० ६ तम्बाले राजा, आ० १२ त्रंबालू ।
९. आ० ६ अंचले, आ० १२ अंजलि ।
१०. आ० ६ पिइछइ, आ० १२ दियो छै ।
११. आ० १२ दायजो ।
१२. आ० १२ सौडि ।

कर जोरी राजा भणइ ।
तुम्ह[1] बारहा[2] गढ़[3] सिंहगढ़[4] चीत्तोड़ ॥३०॥

राजा कहइ[5] बारि घुरारि[6] नीसाण ।
मनमाहे हरषीयउ[7] वीसल चहुआंण ॥
परखीयउ[8] राजा भोज कइ[9] ।
म्हाकइ[10] अंचल वधी[11] राजकुमारि ॥
सफल दिहाडउ[12] आज कउ[13] ।
जउ घरि आवीइ[14] जाति पवारि ॥३१॥

---

१+२. आ० ६ तुम्ह नइ बारह ।
३. आ० ६ गढ़ासुं आ० १२ गढ़ांसुं ।
४. आ० १२ दुरग ।

यह छन्द आ० ६ में ३३, आ० ६ में ६४, अ० २ (में नहीं है) आ० १२ में ३२ है । आ० ६ में चौथी कड़ी है–"चोथो फेरो फेरीयो ।"

आ० १२ में ६ तथा ७ पंक्तियाँ हैं—

६–पाइ पषालिने पूजीया मौड ।
७–कर जोडी राजा भणै ।

५. आ० १२ कै ।
६. आ० ६ घुराजी, आ० १२ घुरयारे ।
७. आ० १२ हरषीयो ।
८. आ० १२ परख्यौ ।
९. आ० १२ कै ।
१०. आ० १२ म्हाकै ।
११. आ० ६ बांधी छै, आ० १२ बांधी छै ।
१२. आ० १२ दिहाडो ।
१३. आ० १२ कौ ।
१४. आ० १२ आई ।

यह छन्द आ० ६ में ३४, अ० २ तथा आ० ६ (में नहीं है), आ० १२ में ३३ है ।

पाटि बइठीछइ[1] राजकुमारि ।
कडिहि पटोली[2] सिरि चूनडी[3] सार ॥
कानिह[4] कुंडल झिगमिगइ[5] ।
सोवन[6] रावडी[7] तिलक[8] निलाड़[9] ॥
रूप देषी राजा हसउ[10] ।
त्रिभुवन मोहीय[11] राजकुमार[12] ॥२२॥

जानि वासइ[13] पधार[14] हो राइ[15] ।
राजा परोहित लीयइ[16] वोलाइ[17] ॥

---

१. आ० ६ बैठा अछइ, अ० २ वइठा हुई, आ० १२ बैठी छै ।
२. अ० २ वस्त्र ।
३. अ० २ चादर, आ० ६ नवतर ।
४. आ० ६ कानिहि, अ० २ कान्हे, आ० ६ काने, आं० १२ काने ।
५. अ० २ आड़ोया, आ० ६ ताडीया ।
६. अ० २ सरव आ० ६ सरव ।
७. अ० २ सानारो, आ० ६ सोभातणो ।
८. अ० २ मुकुट, आ० ६ मुगट ।
६. आ० ६ नेलाड़, आ० १२ निलाडि ।
१०. आ० १२ हस्यौ ।
११. आ० ६ मोहइए, अ० २ मोहइ, आ० ६ मोहोराणि, आ० १२ मोहे ।
१२. आ० ६ राजकुआंरि, आ० ६ देष परमार । आ० १२ जातिपुंवार ।

यह छन्द आ० ६ में ३५, आ० ६ में ५४, अ० २ में ५८ तथा आ० १२ में ३४ है ।

१३. आ० वासै ।
१४. आ० १२ पधार्या ।
१५. आ० १२ राउ ।
१६+१७. आ० १२ रावकउ ।

ब्याह करावण देइछइ[1] दान ।
अरथ भंडार नइ[2] अति घणउ[3] मान ॥
दोन्हा छइ[4] तेजी हासला ।
तुम्ह हांसीय सरिसउ[5] कोट हसार ॥३३॥

जूवा रमण बइसारइ[6] छइ[7] राय ।
सात सोपारी फूलिकियउ[8] पंसाउ ॥
सवालाष कउ मुरडउ[9] ।
राजाजी जीतउ छइ[10] सातेदाइ[11] ॥
राजमती विलषी हुई ।
हसइ मुलकइ वीसल राइ ॥३४॥

---

१. आ० १२ दीयैछै ।
२. आ० १२ नै ।
३. आ० १२ घण ।
४. आ० १२ दीनछै ।
५. आ० १२ सरिस ।

यह छन्द आ० ६ में ३६ तथा आ० १२ में ३५ है ।

आ० ६ में २री और तीसरी पंक्ति के अनन्तर एक पंक्ति और इस प्रकार है—

"आवो पुरोहित रात्र का ।"

६. आ० १२ बैसार्यो ।
७. आ १२ छै ।
८. आ १२ फलकियो ।
९. आ० ६ मुदड़उ ।
१०. आ० १२ जीता छै ।
११. आ० १२ सातेइदाउ ।

यह छन्द आ० ६ में ३७, आ० १२ में ३६ है ।

आ० १२ में तीसरी पंक्ति नहीं है । अंतिम पंक्ति है—

"हसै मुलकै तब वीसलराउ ।"

हुई पहिरावणो हरषीयउ[1] राय[2]।
दीन्हा तेजीय[3] कुलह कवाइ[4] ॥
हीरा नइ[5] माणिक घणा।
अणपरि[6] पहिरावीयउ[7] जातपुवारि ॥३५॥

तुरिय पलाणीया ठामो ठामि[8]।
स्हासू[9] जुहारण[10] चालीयउ[11] राइ[12] ॥
कुलिय छत्तीसइ गइलछइ[13]।
माणिक मोती भर्‌यउ नालेर ॥
सासू[14] आसीसत[15] बन्दिया[16]।
थे[17] अविचल राज करउ[18] अजमेर[19] ॥३६॥

---

१. आ० १२ रषीयो।
२. आ० १२ राउ।
३. आ० १२ तेजी।
४. आ० १२ कबाय।
५. आ० १२ अरू।
६. आ० ६, आ० १२ इणपरि।
७. आ० १२ पहिरा।
यह छन्द आ० ६ में ३८, आ० १२ में ३७ है।
८. आ० १२ ठाइ।
९+१०. आ० ६ जुहारकरण, आ० १२ सासुजुहारण।
११+१२. अ० २, आ० ६ चाल्यांछइ राइ, आ० १२ चालीयोराइ।
१३. अ० २, आ० ६ साथछइ, आ० १२ छत्तीसेगयल छै।
१४+१५. अ० २ आ० ६ भाणमती आसीस, आ० १२ आसीस।
१६. अ० २, आ० ६ द्यइ, आ० १२ तन्नैदीयै।
१७. आ० ६, तुम्हें, आ० १२ थेतउ।
१८+१९. अ० २, आ० ६ कीज्यो अजमेर, आ० १२ काणै अजमेर।
यह छन्द आ० ६ में ३६, आ० ६ में ६८, अ० २ में ७१ तथा आ० १२ में ३८ है।

परणि अरणि धरि चालीय आय[1] ।
बाजा[2] बाजीया नीसाणेरे घाइ ॥
दोवड़ बाजइ[3] दुडबडी ।
बाजइ[4] बरघू अरूवलीभेरि[5] ॥
धारिकी उमी धाहदे ।
धारकउ दीप[6] चालउ[7] अजमेर ॥३७॥

परिणउरण[8] घरि[9] आइयउ[10] राय[11] ।
सगली हे जानमाहि हुउ उछाह ॥

१. आ० १२ चालीयो राउ ।
२. आ० ६ बाजा हो ।
३. आ० १२ वाजाइछै ।
४. आ० १२ वाजै छै ।
५. आ० १२ भलीभेरि ।
६. आ० ६ द्विज, आ० ६ दीरक ।
७. आ० ६ ( में यह शब्द बाद में बढ़ाया गया है ) आ० ६ गढ़ अजमेर, आ० १२ चल्यो ।

यह छन्द आ० ६ में ४०, आ० ६ में ६६, अ० २ में ६६, आ० १२ में ३६ है । लेकिन अ० २ में इस छन्द का पाठ है—

हुई पहिरावणी हरषीयउ राई ।
अंचल बंधी राजकुमार ॥
चौरी चढ़यो भोजकी ।
बाजइ बरगूं भूगलभेर ॥
हुवउ षंबारउ रावलइ ।
धार कउ द्विज चाल्यो अजमेर ॥

आ० १२ में ५वीं पंक्ति है :—वारि कि ऊमी धीहदइ ।

८. आ० ६ परणि अरणि, अ० २ परणी, आ० ६ परणी नै, आ० १२ परणि अरणि ।
९. अ० २, आ० ६ ( में नहीं है ) ।
१०. अ०, आयउ, आ० १२ चालीयो ।
११. अ० २, आ० ६, वीसलराय, राउ ।

राजा कहइ जन[1] साभलउ ।
म्हानइ[2] तूठउ हो[3] देवमुरारि ॥
चउरी चडउ[4] राजा भोज की ।
वडा वडेरा मेल्या करतारि ॥३८॥

हस्त गुजइ नितु[5] वाजइछइ भेर ।
देषि गउरि[6] म्हाकउ गढ़ अजमेर ॥
आना हो सागर वीहली ।
पाधा[7] तापहु कर आदि बराह ॥
सोरठि साभरि कउ धणी ।
वर वीसल पश्चिम केरउ[8] राइ[9] ॥३९॥

गरब करि बोलीयउ[10] संभरि[11] बाल[12] ।

---

१. आ० १२, कहै जांनी ।
२. आ० ६ भाइ, अ० २, मोहि, आ० १२ म्हानै ।
३. अ० २ तूठउ छै, आ० १२ तूठो हो ।
४. आ० १२ चढ्यो ।

यह छन्द आ० ६ में ४१, आ० १२ में ४० है । आ० १२ में दूसरी पंक्ति है—

"सगली ही जांनमैहूउ उछाही ।"

५. आ० ६ छइ, आ० १२ हस्ती गुंजै नितु ।
६. आ० ६ गोरी, आ० १२ गोरी ।
७. आ० १२ पाघ ।
८. आ० १२ कउ ।
९. आ० १२ राउ ।

यह छन्द आ० ६ में ४३ तथा आ० १२ में ४१ है ।

१०. अ० २ ऊभोछइ, आ० ६ ऊभो, आ० १२ बोली ।
११. आ० ६ सीभर्यो
१२. आ० ६ राय, } ११+१२ — आ० १२ वीसलराउ ।

मउ समउ[1] अवर[2] न कोइ भूपाल ॥
मोधरि[3] साभरि उग्रहइ[4] ।
म्हारइ[5] चिहुँदिसि थाणा[6] जेसलमेर ॥
राजकउ[7] वइसणउ[8] गढ अजमेर ॥४०॥

गरब[9] न[10] कीजइ[11] धणी[12] संभरि वालि[13] ।
तुम समांछइ[14] घणारि भुवाल[15] ॥
एक उड़ीसा कउ धणी ।
वचन माका[16] मानि न[17] मानि[18] ॥

---

१. आ० ६ मोसमउ, आ० १२ मोसम ।
२. अ० २ ऊर ।
३. आ० ६ मोघरे, अ० २ म्हांवरि, आ० ६ माहरिघरि ।
४. आ० १२ उग्रहै ।
५. आ० १२ म्हारै ।
६. आ० १२ थांणउ ।
७. आ० ६, राजा को, आ० १२ राजा कौ ।
८. आ० ६, अ० २, थानिक, आ० १२ राजा बैसणो ।

यह छन्द आ० ६ मे ४४, आ० ६ अध्याय २ में १, अ० २ अध्याय २ में २ तथा आ० १२ में ४२ है। आ० १२ में एक पंक्ति अतिरिक्त है—

"लाष तुरी पापइ पडै ।"

९. अ० २ गरभि ।
१० + ११ + १२. अ० २ बोलो हो, आ० ६ करिहो, आ० १२ न कीजै धणी ।
१३. आ० ६ राव, आ० १२ सांभरिवाल ।
१४. आ० १२ समअछै ।
१५. आ० ६ भूपाल, आ० १२ भूपाल ।
१६. आ० ६ हमारउतु, आ० १२ हुइ म्हांका ।
१७ + १८. अ० २ मानितु मानि, आ० ६ मान निसांव, आ० १२ मानि मैं मांनि ।

जउ[१] थारइ[२] साभरि उग्रहइ[३] ।
तिन्ह[४] उवा घरि[५] उग्रहइ[६] हीरा की षाणि ॥४१॥

चतइ चमकीयउ वीसलराउ ।
षणका[७] वचन[८] रह्या मन माहि ॥
म्हे[९] विसाराइा[१०] गोरडी[११] ।
हम तुम्ह[१२] बार वरस का काणि[१३] ॥
कहउ[१४] तुम्हारउ[१५] जे सुणउ[१६] ।
म्हें तउ जाइ देषां हीरा की षाण ॥

१.+२. आ० ६ थारि घरि, आ० १२ जइ थारे ।
३. आ० १२ उग्रहै ।
४.+५. अ० २ राजा उणि घरि,आ० ६ उण घरि,आ० १२ उहाघरि।
६. आ० १२ उग्रहै

यह छंद आ० ६ में ४५, आ० ६ अध्याय २ में २, अ० २ अध्याय २ में ४ है। आ० १२ में ४३ है।

७. आ० १२ कणका ।
८. अ० २ बोल ।
९. अ० २ हूँ ।
१०. अ० २ वीसद्दयो, आ० १२ विसराया ।
११. अ० २ ते वेदिठा, आ० १२ तुम्हें गोरडी ।
१२. आ० ६ अम तम, अ० २ म्हानु, आ० १२ हम तुम ।
१३. अ० २, आ० ६ लांच, आ० १२ कहि काणी ।
१४. आ० १२ कह्यो ।
१५. आ० १२ तुम्हारो ।
१६. आ० १२ सुण्यो ।

यह छंद आ० ६ में ४६, आ ६ अध्याय २ में ३, अ० २ अध्याय २ में ५, आ० १२ में ४४ है। इस छंद की पाँचवीं और छठीं पंक्ति अ० २ और आ० ६ में इस प्रकार हैं—

५. कउ म्हारइ हीरा उग्रहइ ।
६. नहीं तो गोरी तिजूं हूँ पराणा ।

तथा आ० ६ में तीसरी पंक्ति है—

म्हें[१] विरास्या[२] बोलियउ[३] दोस[४] ।
पग की[५] पाणहीसं[६] किसउ[७] रोस[८] ॥
कीडी उपरि कटकी किसी ।
म्हें हस्या थे करि जाणीयउ साच ॥
कुमी[९] मेल्हि[१०] उलग[११] चलउ[१२] ।
जल[१३] विहुणीय किम जीवइ मछ[१४] ॥ ४३ ॥

---

मन माहिं कुमषाणोषरो ।

इस छंद की पहिली और दूसरी पंक्तियाँ अ० २ और आ० ६ में परस्पर स्थानान्तरित हैं।

१+२ अ० २ हूँ बरा की, आ० १२ म्हें विरांसी ।
३. अ० २ धणी, आ० ६ म्हाराधणी, आ० १२ बोलियो ।
४. अ० २ रोस ( इसके पहले इसमें 'मोकियउ' है ) ।
५. अ० २ पांवकी आ० ६ ( में नहीं है ) आ० १२ पावनी ।
६. आ० ६ पाणही सिं, आ० ६ पाणही उपरि, अ० २ पाणहीसुं आ० १२ पानहीं थुं ।
७+८ अ० २ कियउ रोस, आ० ६ एकसो रोस, आ० १२ किसौ रोस ।
९+१० अ० २ ऊभडी मेल्हे आ० १२ कुमीय मेल्हि ।
११. अ० ६ उलगइ, आ०६ नै, अ० २ (में नहीं है) आ०१२ मतउलग ।
१२. आ० ६ चलिउ, आ० १२ जाइ ।
१३. अ० २ में (इसके पहले राजा है ) । आ० १२ जलहि ।
१४. अ० २ हांस । आ० १२ जीवइलामाछ ।

यह छंद आ० ६ में ४७, आ० ६ अध्याय २ में ४, अ० २ खण्ड २ में ६ तथा आ० १२ में ४५ है । अ० २ में इस छंद की तीसरी और चौथी पंक्ति इस प्रकार है—

३. ' मेय हसती बोलियो ।"
४. "आपणइ मान हतो मानस छइ सांस ।"

आ० ६ में इसी प्रकार चौथी पंक्ति है :—

४. "आपणइ मनि तुम्हे मानियो सांच ।"

जनम[1] हूवउ[2] थारउ जैसलमेरि ।
परणि आणी तउ गढ़ अजमेर ॥
वरस बारह[3] का दावड़ी[4] ।
कहारे[5] उडीसउ अरू जगनाथ ॥
अनं छोडउ[6] पाणी तिजउ ।
तउ कहि[7] नइ[8] गोरी थारी[9] जनम की बात ॥ ४४ ॥

जनम की बात सुणउ[10] धरइ नरेस ।
वनषंड[11] भोगवउ[12] हरिण कइ वेषि ॥
कोकउ वंभण दिन गिणउ आज ।
नरजला करती एकादसी ॥

---

१+२-अ० २, आ० ६, जनमी गोरी तू । आ० १२, जनम हुउ ।
३. अ० २ बार ।
४. अ० २, आ० ६ गोरडी ।
५. अ० २, कुं समर्‌यो, आ० ६, किम समरूं ।
६. अ० २, आ० ६, मेल्हूं ।
७+८ अ० २, कहित ।
६. आ० ६, अ० २, थारा ।

यह छंद आ० ६ में ४८, आ० ६ अध्याय २ में ५, अ० २ खंड २ में ७, आ० १२ में ४६ है ।

आ० १२ में २री पंक्ति है—परणिनै आंणी तोनै गढ़ अजमेर ।
,, ४ थी पंक्ति है—कहांरे उडीसवि देपु आंपणी नयांण ।
,, ५ वीं पक्ति है—उलगाणा हुइ गमकरूँ ।
,, ६ ठीं पंक्ति है—कोकि भतीजा नै सौपिस्यु राज ।
,, ७ वीं पंक्ति है—छोडु देस सवालषो ।
,, ८ वी पंक्ति है—कोकु वंभण दिन गिणु आज़ ।

१०. आ० ६ पूछइछइ ।
११.+१२. अ० वनषंड रहती ।

एक आहेडीय[१] वनह मझारि ॥
विहु[२] वाणा उरिआ[३] हणी।
मरण[४] हुवउ[५] जगनाथ दुवारि[६] ॥ ४५ ॥

हिरण मरण[७] समर्‌यउ जगंनाथ।
आइ पहुतलउ[८] त्रिभुवन नाथ ॥
संप चक्र गदा धरु[९]।
तू[१०] तउ[११] मागि[१२] हे[१३] हिरणीय[१४] चितह[१५] मझारि ॥
जउ तू[१६] तूठउ[१७] त्रिभुवन धणी।
म्हारउ[१८] पूरव[१९] देसकउ[२०] जनम निवार ॥ ४६ ॥

---

१. आ० ६ आहडी आयो।
२. अ० २ ले, आ० ६ दाए।
३. अ० २ उरहु।
४. अ० २ जनम।
५. अ० २ दीजयो, आ० ६ हूयो, आ० ६ हुउ।
६. आ० ६ कइ दुवारि।

यह छंद अ० २ खंड २ में ८, आ० ६ खंड २ में ६, आ० ६ में ४६ है। आ० १२ ( में नहीं है )। इस छंद की ३री पंक्ति अन्य प्रतियों में नहीं है। ज्ञात होता है कि यह पंक्ति इस छंद में भूल से लिखी गई है।

७. अ० २ मघि।
८. आ० ६ यहूतौ।
९. अ० २ गजाधरीय।
१०+११+१२+१३ आ० ६ मागिहो।
१४. आ० ६ हिरणली।
१५. आ० ६ चितय।
१६. अ० २ तो।
१७. अ० २ तूठा।
१८. अ० २ ( में नहीं है )।
१९+२०. अ० २, आ० ६ पूरबदेस म्हारो।

यह छंद अ० २ खंड २ में ६, आ० ६ खंड २ में ७, आ० ६ में ५० है। आ० १२ में नहीं है।

पूरब देसनउ[1] कवनउ[2] लोक ।
पान फूलातणउ[3] नव[4] लहइ[5] भोग ॥
कण संचइ[6] कुकस भषइ ।
अति चतुराई गढर ग्वालेर ॥
कामणी जेसलमेर री ।
स्वामी पुरुष भलागढ़ अजमेरि ॥ ४७ ॥

जनम दीयउ[7] मारुकइ देसि ।
राजकुवरि[8] अरू[9] रूपि असेसि ॥
रूपि नइ[10] रूपिन[11] मेदन ।
पहिरणइ[12] लोवड़ी[13] झीणइ[14] पुलकि ॥

---

१. अ० २ देसके, आ० ६ देसका ।
२. आ० ६ कचना, आ० ६ कछुहाजी, अ० पूरव्या ।
३. आ० ६ फूलाकउ ।
४+५. अ० २ तुं लहइ ।
६. आ० ६ संघवै ।

यह छंद आ० ६ में ५१, आ० ६ खंड २ में ८, अ० २ खंड २ में ११ है । आ० १२ में नहीं है । अ० २ में इस छंद की छठीं पंक्ति है—

"भोगी लोक दखण को देस ।"

तथा आ० ६ में है :—"भोगी लोक दखण के देस ।"

७. आ० ६ हूयो, अ० २ हूवउ ।
८. आ० ६ राजघरिणि ।
९. अ० २ अति, आ० ६ नइ ।
१०+११. आ० ६ निरूपी ।
१२. आ० ६ पहिरणि, आ० ६, अ० २ आछा ।
१३. अ० २, आ० ६ कापड़ ।
१४. आ० ६ जीणइ जी ।

आछि गोरी घण[1] पातली[2]।
अहर[3] प्रवालि[4] नइ[5] दाड़िमा[6] दंत ॥
इसीय विधाता विहि घड़ी।
कामणी कहइ कि रूप अनंत ॥ ४८ ॥

हउ न पती जी गोरी थारहो[8] वमण[8]।
जा[9] नवि[10] देष[11] आपणइ नयण ॥
उलगाणउ हुवउ[12] गम[13] करउ[14]।
कोकि[15] भतीजउ[16] संपीसिउ[17] राज ॥
छोडउ[18] देस सवालषउ[19]।

---

१. आ० ६ ( में नहीं है )।
२. अ० २ कूवली आ० ६ कूमली।
३. अ० २ अहिरघ, आ० ६ अहैर।
४. अ० २ वाला, आ० ६ पवालो।
५+६. अ० २ निर्मल, आ० ६ जिसा निरमला।

यह छंद अ० २ खंड २ में १२, आ० ६ खंड २ में ६, आ० ६ में ५२ है। आ० १२ ( में नहीं है )। इस छंद की ७ वीं और आठवीं पंक्ति अ० २ और आ० ६ में नहीं है। इन दोनों प्रतियों में पाँचवीं पंक्ति है—

"ललयांगी ( ललांगी—आ० ६ ) घन कूवली।

७+८. आ० ६ थारा हे वमण, आ० ६ थारइ हे वमण।
६+१०. आ० ६ जवहो न।
११. आ० ६ देषुं।
१२. आ० ६ हुइ।
१३+१४. आ० ६ निगम करूं।
१५+१६. आ० ६ काक भतीजा नै, आ० ६ कोका भुतीजानुं।
१७. आ० ६ सूंपूं, आ० ६ संपिसउं।
१८. आ० ६ छोडहो।
१६. आ० ६ मंडवरो।

कोकउ[१] हो बंभरण दिन गिरणइ[२] आज ॥ ४९ ॥

पंडिया[३] हो थारा गुण केरो[४] दासि[५] ।
जोसि[६] दिन[७] मउडउ[८] परगास[९] ॥
मास च्यारि[१०] विलंबाय ज्यो[११] ।
तू नइ सोवन सीगी कपिली गाइ ॥
लाष टका[१२] कउ[१३] मुहडउ ।
स्वामी[१४] पलहि ज्यो[१५] दिन[१६] प्रीयलिउ[१७] समझाय[१८] ॥५०॥

---

१. आ० ६ आ० ६ तेडे । २. आ० ६ घरूं, आ० ६ गिणवो ।

यह छंद अ० २ (में नहीं है), आ० ६ खंड २ में ११, आ० ६ में ५३ है । आ० १२ (में नहीं है) ।

३. अ० २ पांड्या वीरा, आ० १२ पंडीया हूं ।
४. आ० ६ गुणाकी, आ० १२ गुणकरी ।
५. अ० २ दास ।
६. आ० ६ जोइसी, अ० २ दिनदस, आ० १२ जोइसी ।
७. अ० २ महूरत, आ० ६ वीस ।
८. आ० ६ मोंडा, आ० १२ मउडौ । ९. आ० १२ परकसि ।
१०. अ० २ एक, आ० १२ मास च्यारे ।
११. आ० ६ लगि विलंबज्यो, आ० १२ विलंबाविज्यो ।
१२+१३. आ० ६ लाखकउ, आ० ६ हाथां तणो ।
१४+१५+१६. अ० २ दूजइ फेरइ, आ० ६ फेरी, आ० ६ स्वामी पडिषिज्यो ।दन ।
१७. अ० २ (में नहीं है) आ० ६ प्रीय लेइ, आ० १२ पिपल्यु ।
१८. आ० ६ समझावि, आ० १२ मनाय ।

यह छंद अ० २ खंड २ में २४, आ० ६ खंड २ में २३, आ० ६ में ५४, आ० १२ में ४७ है । लेकिन आ० ६ में निम्न पंक्तियां और हैं—

१. राजकूयरि वोलि एक चित्त ।
२. विप्र हकारीयो वेगि तुरंत ॥
३. आया प्रोहित राव का ।

आ० १२ में ४थी पंक्ति है:— तोनै सोन सीगी अरु कपिलीय गाय ।

पंडीया तोहि[1] बोलावइ[2] राय[3] ।
पतडउ लेहि[4] राज माहि[5] आइ[6] ॥
सुदन[7] देई[8] म्हाका[9] जोइसी ।
काढ़ि पतडउ[10] अरु[11] बोलिनइ[12] साच[13] ॥
मास च्यार राजा दिन नहीं ।
तिथि तेरसि अरु[13] मंगलवार[14] ॥
इग्यारयउ चन्द्रमहाइ देवनइ[15] ।
तीजउ[16] चन्द्र[17] थारा घोडला[18] जोग[19] ॥
नीका लाभइ नही ।
पूषि नक्षत्र अरु[20] कातिग मास ॥

---

१. आ० ९ तोनइ ।
२. आ० ६ बोलावइछै, आ० १२ बोलावैए ।
३. आ० १२ राउ ।
४. आ०६ पतडउ लेइ करि, आ० १२ पतडउ लेई ।
५+६. अ० २ बेगो आइ, आ० ६ रावलि चालि, आ० ९ राडु ले आइ, आ० १२ तैवलगुनै आवि ।
७. अ० २ सूदन, आ० ६ सोदिन । आ० ९ सुदिन, आ० १२ सुदिन ।
८+९ अ० २ आ० ६ कहे रूडा, आ० ९ देइ म्हारा ।
१०. आ० १२ पतडौ ।
११. आ० १२ तु ।
१२. आ० १२ बोलिनै ।
१३+१४. अ० २ वार सोमवार, आ० ६ नै सुभ सोमवार, आ० १२ ने मंगलवार ।
१५. अ० २ आ० ६ देव है, आ० १२ इगारमौ चंद्रमा देव नै ।
१६. अ० २ आ० ६ तीसरो, आ० १२ तीजौ ।
१७. अ० २ चंद्र छइ, आ० १२ चंद्रमा ।
१८+१९. अ० २ घोडिला जोग, आ० १२ घोडिला जोगि ।
२०. आ० ६ धूरि ।

तिण[१] दिन[२] राजा[३] थे गम करउ।
तउ आगलउ[४] राउ[५] पूरइ थारी आस[६] ॥ ४१ ॥

झूठउ[७] रे बंभण[८] कहिउं[९] रे विचार।
किम रे दिन नहीं मास चियारी[१०] ॥
खालचि खागउरे जोइसी।
म्हे तउ मामा[११] छाडिस्या गढ़ अजमेर ॥
काका[१२] वरंजया[१३] ना रहा।
उलग चालिस्या निश्चइ आज[१४] ॥ ४२ ॥

---

१+२+३. अ० २, आ० ६ जीण दिन सामी।
४. अ० २ ज्युंघणी आगइ, आ० ६ आंगइ, आ० १२ आगिला।
५. आ० ६ तुमारी।
६. अ० २ पूरइ हो आस, आ० ६ पूरै जिम आस आ० ६ तुझ पूरइ आस, आ० १२ तुम्ह पूरवै आस।

यह छन्द अ० २ खण्ड २ में २६, आ० ६ खण्ड २ में २४, आ० ६ में ५५ तथा आ० १२ में ४८ है। इस छन्द की चौथी पंक्ति अ० २ में है—

"बांचइ पतडउ बोलइ छइ सांच।"

तथा आ० ६ में है :— "बांच्यो पतडउ बोलिवो सांच।"

इसी प्रकार तीसरी पंक्ति अ० २ में है—"मास एक लगि राजा दिन नहीं।" आ० १२ में यह नवीं पंक्ति है—"योगिनी का लभहा नहीं।" आ० १२ में १० वीं पंक्ति पुष्प नक्षत्र अ कातिक मास।

७. आ० ६ झूठोरे।
८. आ० १२ बांभण।
९. आ० १२ कह्यो।
१०. आ० ६ च्यारि।
११. आ० ६ भाई।
१२. आ० १२ थांके।
१३. आ० १२ वरज्यै।
१४. आ० १२ आसवेर।

यह छन्द आ० ६ में ५६, आ० १२ में ४६ है। आ० १२ में दूसरी पंक्ति है :—किम दिन नाहीय मास विच्यारि। तथा चौथी पंक्ति है—म्हेतो छांडिस्या जोइसी गढ़ अजमेर।

राजा अरु[1] गोइडी पडीय छइ कांणि[2] ।
जाणिकि चांक दं न्हीं[3] पणिहारि ॥
राजा गर्व्व[4] बोलीयउ[5] ।
सो[6] वचन गोरडी[7] म्हाकउ वयउन सुहाइ[8] ॥
जीभ दोषउ दुहजिण हूयउ ।
तिणि वचन बाधियउ[9] उछग जाइ ॥ ५३ ॥

उलग जांण कहइ[10] घणी[11] कउण[12] ।
जिह्वा की गाठड़ी गरथ न कूल्हडइ[13] लूण ॥
करि अकुलीणीय[14] कणि[15] करइ ।
कइ रिण का चंपीया[16] घर न सुहाइ[17] ॥

---

१. आ० १२ नै ।
२. आ० १२ छै कांण ।
३. आ० १२ दीन्हा ।
४. आ० १२ गरबीय ।
५. आ० १२ बोलीयो ।
६. आ० १२ इसा ।
७. आ० १२ गोरी नै ।
८. आ० १२ किमन सहाइ ।
९. आ० १२ बाधीयो ।
यह छन्द आ० ६ में ५७ है । आ० १२ में ५० है ।
आ० १२ में पांचवीं पंक्ति है—"जीभ दोषो दुहुजण हूँउ ।"
१०+११. आ० ६ करिइघणी, आ० १, घणीकहै ।
१२. आ० १२ कुउंण ।
१३. आ० १२ कुल्हणै ।
१४. आ० ६, कइं, आ० ६, अकुलेणी, आ० १२, घरी अकुलीणी ।
१५. आ० ६, कलह ।
१६. आ० १२, चापीया ।
१७. आ० १२ परिनइ सुहाइ ।

कइ जोगी हुइ नीसरइ ।
कइ[1] मुडउ[2] लेइ[3] नइ उलग[4] जाइ ॥ ५४ ॥

रहि रहि गोरडी माम म हारि ।
प्रथमइ[5] तउ[6] अवकर बोलीयउ[7] नारि ॥
साभरि[8] नंदी तव[9] नवलखी ।
उहु अवकर[10] म्हारइ[11] मनि रह्यउ लिषाइ ॥
हउरि[12] उडीसइ गम करं ।
एक सरी[13] घणं उलग जाइ[14] ॥ ५५ ॥

साभरि[15] धणीय[16] किम[17] उलग जाइ[18] ।
म्हा की गइल[19] दे[20] करहा[21] पठाइ ॥

---

१+२+३. आ० ६, साभरयो राउ, आ० १२, कइ मुडो लेई ।
४. आ० ६, क्युंयोलगै ।
यह छन्द आ०६ में ५८, आ०६ खण्ड २ में १२, आ०१२ में ५१ है ।
५+६. आ० ६. प्रथम तईं, आ० १२ प्रथमही ।
७. आ० ६, बोलिउ, आ० १२, अनुकर बोलीयो ।
८. आ० ६, नारि सइंभर ।
९. आ० ६, तै, आ० १२ तठइ ।
१०. आ० १२ अउकर ।
११. आ० १२ मोरै ।
१२. आ० ६ हूं रे ।
१३. आ० १२ रसी ।
१४. आ० १२, जांह ।
यह छन्द आ० ६ में ५६ है । आ० १२ में ५२ है । आ० १२ में ५ वीं पंक्ति है—"हूँ रे उडीसै गम करूं ।"
१५. आ० २ रहि रहि, आ० ६ जोरे ।
१६+१७. आ० २ रावतू, आ० ६ घणी तम्हे, आ० १२ घणीय क्यु ।
१८. आ० ६ जाउ ।
१९. आ० ६ गेलि, आ० १२ म्हा कीयगयल ।
२०+२१. आ० ६ तूं कर हौ ।

पीहरि जाइ[1] करि[2] आपसाइ[3] ।
अणिस्यं[4] अरथ[5] गरथ[6] भंडार ।।
आणू[7] हीरा पाथरी[8] ।
म्हाकइ तउ भोज स्यूं आणंलीभार ॥ ४६ ॥

ना हमि[9] गरजू भोज की धार ।
ना हमि[10] गरजू अरथ भंडार ।।
ना हमि[11] गरज हीरा तणा ।
गोरी अधिक सराहीयउ पूरबउ राइ ।।
हमि तउनि किउ करि गिराया ।
उलग कइ[12] मिसी देषण जाइ[13] ॥ ४७ ॥

---

१+२. आ० ६ जाऊ हूँ ।
३. आ० ६ माहरै ।
४. आ० ६ आणूजी आ० १२ आणिस्यां ।
५+६. अ० २ नइ दरब, आ० ६, आ० ८ गरथ ।
७. आ० १२ आणिस्युं ।
८. आ० १२ पाषरी ।

यह छन्द अ० २ खण्ड २ में १५, आ० ६ खण्ड २ में १४, आ० ८ में ६०, आ० १२ में ५३ है । इस छन्द की छठी पंक्ति आ० ६ और आ० ८ में है—

६ "म्हा कइ तउ भोज स्युं आणंलीभार ।"

आ० १२ में ३री पंक्ति है :—"जाइस्युं पीहर आपणै ।"

आ० १२ में छठी पंक्ति है :—"आणिस्युं भोज सरेसीयधार ।"

९. आ० १२ नां हम्हे ।
१०. आ० १२ नां हम्हे ।
११. आ० १२ नां हम्हे ।
१२. आ० १२ रै । १३. आ० १२ जाइ ।

यह छन्द आ० ८ में ६१, आ० १२ में ५४ है । आ० १२ में चौथी पंक्ति है—"अधिक सराह्यो गोरी पुरब्यो राउ ।" आ० १२ में पांचवीं पंक्ति है—"म्हानो हो तैन क्यु करि गिराया ।"

हुउ तउ बोलतों बोलइ[1] थी छन सुहाइ[2] ।
तउ घण पाहण लीयउ उचाय ॥
सोपम[3] ऊपरि रालीयउ[4] ।
हिवट्ठ दूसण किणइ न देणउ जाइ ॥
उछइ[5] तपि हरि ध्याईयउ[6] ।
तउ प्रीय बाल अम्ह मेल्हीय जाइ ॥ ४८ ॥

तइ तउ उछा गौरी बोलीया बोल ।
तइ नवि राषीयउ प्रीत[7] तणउ तोल ॥
तइ कहउ[8] तिम कोई नवि कहइ[9] ।
म्हे राज पाठ सवि चलिया[10] मेल्हि[11] ॥
वचन थारा भणीम्हे नींसरा ।
हस्ती बांधियां मेल्हि[12] ण[13] जाइ[14] ॥
साभरि म्हेलिस्या नवलषी ।
म्हे तउ[15] सांच करेस्या पूरम्या[16] राइ ॥ ४९ ॥

---

१. आ० ६ हो तो बोलतां बोल, आ० १२ हूतो बोलतां बोली ।
२. आ० ६ तीवइ न दुहाइ, आ० १२ थी वचन सुहाइ ।
३. आ० ६ सोपग, आ० १२ सोपग ।
४. आ० १२ रालीयो । ५. आ० १२ उछै । ६. आ० १२ घाईयो ।
यह छन्द आ० ६ में ६२ है, आ० १२ में ५५ है ।
आ० १२ में दूसरी पंक्ति है—"जब घण पाथर लीयो उचाइ ।"
आ० १२ में चौथी पंक्ति है—"हिवै दोसन किणही चैणो जाइ ।"
आ० १२ में छठी पंक्ति है—"तउ मुझ मेल्हिप्रिय उलग जाइ ।"
७. आ० १२ प्रिया । ८. आ० ६ तइ कह्यो, आ० १२ तइं कह्यो ।
९. आ० १२ कहै १० + ११ आ० ६ चालिस्यां मेल्हि, आ० १२ चालिस्या म्हेलि
१२ + १३ + १४ आ० ६ मेल्हिस्यां जाइ, आ १२ म्हेल्हिस्यां जाइ ।
१५. आ० १२ म्हेतौ । १६. आ० १२ पूरव्यां ।
यह छन्द आ० ६ में ६३ है । आ० १२ में ५६ है ।

तिन गुनह बकसइ[1] स्वामी सइ कोइ।
सरब ने करहि[2] सु तुम्ह थीइ[3] होइ ॥
थे म्हा बीजउ भरषमा[4]।
तइ तउ एक वच कहि वाली देहि ॥
लालच करि कहइ कामिणी।
किम उलग चालइ नवल सनेह ॥ ६० ॥

उलग जाता किम रहइ[5] नारि।
बोलिया[6] बोलतें[7] चित्तह[8] विचार ॥
बोलयउ हो पालउ आपणउ।
उतइ[9] षाणि उगाहिस्या हीरा की जाइ ॥
मुझ विण क्षिण तू जिनरहइ[10]।
वेगि[11] मिलिस्या तुझ नइ आइ[12] ॥ ६१ ॥

---

१. आ० ६ स्वामी तीनि गुनह बकसइ, आ० १२ बगसै।
२. आ० ६ करउ, आ० १२ करहु।
३. आ० १२ थी।
४. आ० १२ भारषमा।
यह छन्द आ० ६ में ६४ है। आ० १२ में ५७ है।
आ० १२ में चौथी पंक्ति है—"एक वचन कहि वालीय देह।"
आ० १२ में पांचवीं पंक्ति है—"लालचकरि कांमणि कहै।"
५. आ० १२ रहां। ६. आ० १२ बोलियो।
७. आ० १२ बोलसो।
८. आ० १२ चित्त।
९. आ० १२ ( में नहीं है )।
१०. आ० १२ तूं जीनां रहै।
११. आ० १२ गोरी बेगा।
१२. आ० ६ वली तुझपै आइ।
यह छंद ६ में ६५ है। आ० १२ में ५८ है।
आ० १२ में तीसरी पंक्ति है—"बोल्यो जी पाल्यो आंपणो"।

हउ न पतीजुं राजा था कीने रो बात ।
साभण चालिस्यइ राइ कइ साथ ॥
बांदडी[1] हुइ[2] करि वापरउं ।
पावतला[3] सिस्याउ[4] ढोलिस्या[5] बांइ ॥
उभो[6] पहरइ[7] जागिसिउ ।
अण[8] परि[9] सेविस्यउ आप रायउ राय[10] ॥ ६२ ॥

गहिली है सुधि कि लागी बाइ ।
अखो लेइ कोइ उलग जाइ ॥
भोली[11] हे[12] नारि[13] कि[14] वाउली ।
कूंडइ[15] चांदि किम ढाकणउ जाइ ॥
रतन छिपाया गोरी किम[16] रहइ[17] ।
डइठइ[18] वाचाकउ[19] हीयाउ पूरब्यउ[20] राउ ॥ ६३ ॥

---

१ + २. अ० २ दासी हुइ ।
३ + ४. आ० ६ पावतल सिस्यो, आ० १२ पाउतलां सिस्युं ।
५. आ० ६ ढ़ोलू, आ० ६ घालस्यो, आ० १२ ढोलिवाव ।
६. अ० २ पुहर ।
७. अ० २ पुहर प्रति, आ० ६ पोहरइ ।
८ + ६. अ० २ इण हर, आ० १२ इणपरि ।
१०. अ० २ नाह, आ० १२ उलगुं आपणउ राउ ।

यह छंद अ० २ खंड २ में ३०, आ० ६ खंड २ में २७, आ० ३ में ६६, आ० १२ में ५६ है ।

आ० १२ में दूसरी पंक्ति है—"सत्रण चालिस्यै रावसै साथि ।"

आ० १२ में तीसरी पंक्ति है—"ऊलभी पहुरै जागिस्युं ।"

आ० १२ में पाँचवीं पंक्ति है—"बंदीय हुइ करि हुं रहुँ ।"

११ + १२. अ०२ आ०६ गहिली । १३ + १४. अ०२ आ०६ मूघंउ तूं ।
१५. आ०६ कहो, आ०१२ कूडै । १६ + १७. आ० ६ किम रहै ।
१८ + १६. अ० २ आगइ वाचा कौ । आ० १२ वाचा किउ ।
२०. आ० १२ पूरव्या ।

पाइ पडइं राजा मानिओ जोग।
काइ हसावइ[1] दुरजन लोग[2]॥
कामिणी सुं कुमया किसी।
नयण नीर रहउ[3] जल पूरि[4]॥
हीयडलइ सास न मावइय[5]।
काइ भयंगम पावीय[6] षीर॥ ६४॥

वरिइज[7] नइ हें[8] घण वरसता मेह।
साठि[9] दिवस लगइ[10] तुम्ह सं सनेह[11]॥
मिलिस्या बरस बारा पछइ[12]।
मनह उराही नइ कह कास॥

---

यह छंद अ० २ खंड २ में ३१, आ० ६ खंड २ में २८, आ० ९ में ६७, आ० १२ में ६० है।

आ० १२ में पहिली पंक्ति है—गहिलीय मूष किम लागीय वाइ।

आ० १२ में पाँचवीं पंक्ति नहीं है।

१. आ० १२ हसावउ।
२. आ० १२ लोक।
३. आ० ९ रह्यो, आ० १२ रह्यो।
४. आ० १२ भरपूरि।
५. आ० १२ मावई।
६. आ० ९ पावए, आ० १२ पावउ।

यह छंद आ० ९ में ६८, आ० १२ में ६१ है।

७. आ० वरजि, आ० १२ वर्जि।
८. आ० १२ नैहे।
९. आ० ९ सात आ० १२ सात।
१०. आ० ९ लगि, आ० १२ दिवां लगै।
११. आ० १२ तुझ स्यु नेह।
१२. आ० ११ बारह पछै।

सांबरि[1] नीर मंचीर भरि।
कल्हकामणि तणउ नेह निवास[2] ॥ ६५ ॥

चालउ उलग जाण न देइ[3]।
कइ मुझ मारि कइ सरीसीय[4] लेइ[5] ॥
अंचल ग्रह साधण[6] कहइ[7]।
दुइ दुष सालइ हो सामीय साल ॥
जोवन मुरडीय मारिस्या[8]।
दोस किसउ[9] जइ[10] साधण[11] वांस[12] ॥ ६६ ॥

---

१. आ० ६ सांभर। २. आ० १२ विशाम।

यह छन्द आ० ६ में ६६ तथा आ० १२ में ६२ है।
इस छन्द की तीसरी पंक्ति आ० ६ में है—"नाल्ह रसायण इम भणै"
तथा चौथी पंक्ति है— "मनहि उडि काटि तो कास"
आ० १२ में चौथी पंक्ति है—"मनहि उकादियो नां रहुमांस"
तथा पाँचवी पंक्ति है—"साभरि नीर न वीसरां"

३. अ० २ आ० ६ देहि।
४. अ० २ साथ तुं, आ० ६ मुझ सरसी।
५. अ० २ लेहि।
६. आ० ६ अ० २ तै धन।
७. अ० २, आ० ६ रही. आ० १२ कहै।
८. आ० ६ मारिज्युं, आ० १२ मारिस्यै।
९. आ० ६ कसा को।
१० + ११. आ० गोरडी को, आ० १२ राजा।
१२. आ० ६ नाह।

यह छंद अ० २ खंड २ में ३२, आ० ६ खंड ७ में २६, आ० ६ में ७० है। इस छन्द की ४, ५, ६ठी पंक्तियां अ० २ में इस प्रकार हैं—

४. इक इकेली जोवन पूर।
५. सूनी सेज वीदेस पिउ।
६. इतुइ दुष नाल्ह कह दूणो कूण।

आ० १२ में पहिली पंक्ति है—चालस्यो उलगाण जाण न देइ।
आ० १२ में चौथी पंक्ति है—दोइ दुष सालै सामुही साभ।

छोडि नइ[1] गोरी[2] तउ दे[3] मुक आय।
बरस[4] दिन रहंउ थारी[5] हे[6] आय॥
कठन पयउहर[7] दिव[8] कीया[9]।
तब हसि करि गोरडी[10] कहइ[11] विचार[12]॥
ए[13] दिव[14] कीया[15] आकरा।
स्वामीय[16] जा[17] दिवा[18] हुआ[19] सुर नर छार॥ ६७॥

कातिग स्वामी तू आवण देहि।
कुदन न चालिजइ बरिसइ हो[20] मेह॥
लाखच करि कामणि कहइ[21]।

---

१. अ० २, आ० ६ अंचल, आ० १२ छाडि नै।
२. अ० २, आ० ६ घणि, आ० १२ गोरीडी।
३. आ० ६ देहि, आ० १२ (में नहीं है)।
४. अ० १ दोय।
५+६-अ० देवकी, अ० १२ थारडी।
७. आ० १२ पयाणइ।
८+९-आ० ९ देव कीया, आ० १२ हिवकरुं।
१०. अ० २ गोरी, आ० १२ गोरीय।
११. अ० २ पूछइछइ, आ० ६ पूछइ, आ० १२ कहै।
१२. अ० २ आ० ६ नाह।
१३+१४-आ० ६ एक दिव, आ० १२ ए दिन।
१५. आ० ६ सघण, अ० २ छइ परिउ, आ० १२ वका।
१६+१७+१८-अ० २ इण दिवघी, आ० ६ इह दिवसां।
१९. अ० २ हुया।

यह छंद अ० २ खंड २ में ३३, आ० ६ खंड २ में ३०, आ० ९ में ७१ है। लेकिन आ० ६ में दूसरी पंक्ति छूट गई है।

आ० १२ में अंतिम पंक्ति है—"ए दिन न्यं हुवै सुर नर सार।"

२०. आ० १२ वरिस्यै।
२१. आ० १२ कहै।

पगि पडी[1] हुइ नव कर जोडि[2] ॥
मुषि माहि करइ दशा[3] आंगुली ।
हाहा जोवनह माहि म छोड ॥ ६८ ॥

गहिली हे मुंधि[4] कि[5] षरीव[6] गुवारि[7] ।
हीयडलइ नयण[8] नही हे[9] नारि[10] ॥
तीरथराज प्रयाग जा[11] ।
मोहइ[12] तिरी[13] उडीसा तणी[14] जगीस ॥
रहस्या पहर न पल घडी ।
तउ सषी[15] चाळिस्यां विस्वा बीस[16] ॥ ६९ ॥

---

१. आ० १२ पगेपडि ।
२. आ० १२ वीनवी हुय करु जोडि ।
३. आ० १२ करिदस ।

यह छंद आ० ६ में ७२ । आ० २ में ६५ है । आ० १२ । अंतिम पंक्ति है—"हाहा योवन भर स्वामी हमहि न छोडि ।"

४. आ० ६ मूंष, आ० १२ मूष ।
५. आ० ६ ( में नहीं है ) ।
६. आ० ६ षरी ।
७. आ० ६ गमार, आ० १२ गभारि ।
८. आ० ६ थारइ, आ० १२ हीयडले नीयण ।
९+१०. आ० ६ नार, आ० १२ थारैहे नारि ।
११. आ० १२ स्यौं ।
१२+१३. आ० ६ मोहै तिउंरा, आ० १२ मोहि तुझीसा ।
१४. आ० १२ कीषरीय ।
१५. आ० १२ गोरडी ।
१६. आ० १२ विसवा हो वीस ।

यह छंद आ० ६ में ७३ है तथा आ० १२ में ६६ है—
इस छंद की पांचवीं पंक्ति आ०१२ में है—"रहिस्यां पल न एक घडी ।"

हिव[1] छंडी[2] स्वामी[3] थाहरी[4] आस।
जोगवि होइ सेव[5] वनवास॥
कइ तप तपं[6] बाणारसी।
कइ सरीर झंपउ[7] देसि[8] केदारि[9]॥
कइ हिमालइ माहि गिलउ।
स्वामी[10] धणा[11] मरिसी[12] गंग नइ[13] पारि॥ ७०॥

जइ[14] धण मरिसी गंग माहे[15] जाइ।
उलग जात[16] न[17] रहाइ[18]॥

---

१. अ० २, आ० ६ ( में नहीं है ), आ० १२ ( में नहीं है )।
२. अ० २, आ० ६ मेल्हि, आ० १२ छांडी हो।
३. अ० २ में धणी, आ० ६ मेरे धणा।
४. आ० १२ थारडी।
५. आ० ६ सेवां, आ० १२ सेवु।
६. अ० २ तणुहु, आ० ६ तपसी, आ० १२ तपीसि।
७. आ० १२ झंपाइ।
८+९. आ० ६, देइ केदारि, आ० १२ देउ केदार।
१०+११. अ० २, कइ जाइ, आ ६ कै हूँ, आ० ६ स्वामीकै आ० १२ स्वामी कै।
१२. आ० ६ मरिस्ये, अ० २, अ० ६ सेवसूं, आ० १२ मरिस्यै।
१३. आ० ६, कइ, आ० १२ कै।

यह छंद अ० २ खंड २ में ३५, आ० ६ खंड २ में ३२, आ० ६ में ७४ तथा आ० १२ में ६७ है।

इस छंद की पांचवीं पंक्ति आ० १२ में है—

"कइरे हिमलैमाहि गलु।"

१४. आ० १२ ( में नहीं है )।
१५. आ० १२ मरिसी।
१६+१७—आ० ६, जातांजी, आ० १२ जातां तो हमन।
१८, आ० ६ में 'तोन' और है।

असवचन[1] किम बोलिजइ[2] ।
मरस्या[3] जे नकुलीणी नारि[4] ॥
तुं तउ कुलवंती किम मरइ ।
एतउ श्रोर मिसि छोडा हे नारि ॥ ७१ ॥

बीज तीजइ[5] राजा गमण न होइ ।
चउथि[6] गणपति पूजइ[7] सहु कोइ ॥
पांचमि छठि तुम्ह[8] दिन नहीं ।
सातिमि चुहुदिसि[9] कंपइ काल[10] ॥
तिणि दिन गाम न चालिजइ ।
आठमि कइ दिन दहइ दिसासूल ॥
तिण दिन उलग गम नहीं ।

---

१. आ० ६ इसावचन ।
२. आ० १२ बोलिजै ।
३. आ० ६ मरस्यइं, आ० १२ मरिस्ये ।
४. आ० १२ जिकां अकुलीणीय नारि ।

यह छंद आ० ६ में ७५ है और आ० १२ में ९८ है ।
यह छंद की ५ वीं पंक्ति आ० १२ में है—तू कूलवंतीय [illegible]
इस छंद की ६ ठी पंक्ति आ० १२ में है—
एमै तू कूरा मिसि छोडी हे नारि ॥

५. आ० १२ बीज तीजां ।
६. आ० १२ चौथि ।
७. आ० १२ पूजै
८. आ० १२ राजा ।
९. आ० १२ चिहुँ दिसि ।
१०. आ० १२ कंपइ का ।

एकादशी जोगनी[1] सामुही[2] जोगु[3] ॥
द्वादशी कइ दिन पारणो[4] ।
तेरसि तेजीया[5] तीन्होवार ॥
चउदिसि[6] तुरीय न[7] पलाणिजइ[8] ।
पूनिम कइ[9] दिन पूरउ[10] चंद ॥
रहिन सकइ[11] संभर[12] धणी ।
पडिवा कइ[13] दिन गुडइ[14] गयंद ॥ ७२ ॥

तिथ महूरत सो गिणइ[15] नारि ।
व्याहण चालिजइ[16] कोइ[17] कुआरि[18] ॥
उलग जात हो[19] दिन किसा[20] ।
वचन का वाधा हो निसरि जाइ ॥
भरणि भद्रा ते नवि गिणइ[21] ।
झूठी हे गोरी म्हानइ[22] बुणास न देइ[23] ॥ ७३ ॥

---

१. आ० १२ योगिणी । २. आ० १२ सामुहउ ।
३. आ० १२ जोग । ४. आ० १२ पारणउ ।
५. आ० १२ तेउजीया । ६. आ० १२ चौदिसि ।
७. आ० १२ ( में नहीं है ) । ८. आ० १२ पलाणिजै ।
९. आ० १२ कै । १०. आ० १२ पूजै ।
११. आ० १२ सकै । १२. आ० १२ साभरि ।
१३. आ० १२ कै । १४. आ० १२ कि गुडहु ।
यह छंद आ० ६ में ७६ तथा, आ० १२ में ६६ है ।
इस छंद की ५, ६, तथा ७ पंक्तिया आ० १२ में नहीं है ।
१५. आ० ६ गिणै, आ० १२ गिणै ।
१६. आ० १२ चालै ।
१७. आ० ६ काइ, आ० १२ ( में नहीं है ) ।
१८. आ० १२ राजाकुमार । १९. आ० १२ जातां ।
२०. आ० १२ किसउ । २१. आ० १२ गिणै ।
२२. आ० १२ म्हाने । २३. आ० मलाइ ।
यह छंद आ० ६ में ७७ तथा आ० १२ में ७० है ।

चालउ उलगाणउ छंडोय काणि।
अरथ दरब थारा[१] जीत्र की हाणि[२] ॥
तो वुरइ[३] राचा[४] हम[५] वुरउ[६]।
तउ[७] मुआ[८] रावउ[९] ही घर जाइ[१०] ॥
अरथ दरब गाडयउ[११] रहइ।
जेह[१२] न[१३] सिर जीयो[१४] सोईय[१५] षाय ॥ ७४ ॥

कडूवा वोल न बोलि[१६] हे[१७] नारि।
म्हे[१८] तउ[१९] मेल्ही[२०] चितह वीसारि[२१] ॥

---

१. अ० २, आ० ६ लीया, आ० १२ थारै।
२. आ० १२ में काली ही हांणि।
३. आ० ६ विरो, अ० २ बुरो।
४. अ० २, आ० ६ घणा।
५+६. अ० २ मौ वीरौ, आ० ६ मा वीरो, आ० ९ हम बुरो।
७+८. अ० २ तोहि बुरौ, आ० ६ तोहि वीरो, आ० १२ तो मुआ।
९. अ० २ थारौ, आ० ६ थारि, आ० १२ राउतन्न।
१०. आ० ६ जाय, आ० १२ घरही जाइ।
११. आ० ६ काढ़ो, आ० १२ गाड्या।
१२+१३+१४. अ० २ जिण सिरज्योहोई, आ० ६ जिणकूं सरजीया आ० १२ जेहने सिरज्याहुवै।
१५. आ० ९ हुई सोई, आ० १२ सोइषाइ।

यह छंद अ० २ खड में ४१, आ० ६ खंड २ में ३८, आ० ३ में ९८, आ० १२ में ७१ है।

आ० १२ में इस छंद की तीसरी पंक्ति है—

"हउबुर स्वामी अम्हेबुरा।"

१६+१७. आ० ६ वोलिस।
१८. अ० २ तुं, आ० ६ तै, आ० १२ म्हां।
१९. अ० २ मो आ० ६ मुझ।
२०. अ० मेल्हसी, आ० १२ म्हेलीय।
२१. आ० ऊतारि, आ० १२ उतारि।

जीभ का वाधा नवि[1] पाव[2] ।
दबका दाधा हो उपव[3] होइ[4] ॥
नाएह भणइ[5] सुणिज्यो सइ[6] कोइ ॥ ७१ ॥

छुंडी हो[7] स्वामी[8] म्हे थारी हो आस[9] ।
मेइला हो[10] थारउ[11] किसउ वेसास ॥
बांदी[12] धण[13] करि[14] नव[15] गिणी[16] ।
म्हाकी[17] सगा सुणीजा माहे[18] लोपीय[19] माम[20] ॥

---

१+२. अ० २, आ० ६ नुपांगुरई, आ० १२ पाल्हेवै ।

३. अ० २, कुपली, आ० १२ कुपल ।

४. अ० २ मेल्हि ।

५. अ० २, आ० ६ कहइ, आ० १२ भण ।

६. आ० १२ सहु ।

यह छंद अ० २ खंड २ में १८, आ० ६ खंड २ में १७, आ० ६ में ७६ तथा आ० १२ में ७२ है ।

७+८. अ० २ मेल्ही हो मइ धणी, आ० ६ मेल्ही छै मेरे धणी, आ० १२ छाडी हो स्वामी ।

९. आ० १२ थारडी आस ।

१०+११. अ० २ आ० ६ मेला राजा थारउ, आ० ६ मैलाजो हो थारो, आ० १२ मइला थारउ ।

१२+१३+१४. अ० २ तोहूँ दासी, आ० ६ हूँ वांदी, आ० बंदडी करिधण ।

१५+१६. अ० २, आ० ६ करि गीणी, आ० १२ नां गिणी ।

१७+१८. अ० २ आ० ६ सगा सणीजा मा, आ० ६ म्हांका सगा सुणीजा की, आ० १२ सगा सणीजा ।

१९+२०. अ० गमीमा, आ० ६ नीगमी माम, आ० ६ लोपी है लाज, आ० १२ लोपीयकाइ ।

जीव तजो[1] मुयावडइ[2]।
वालंहो धण[3] तुम्हारडा[4] दाम[5] ॥ ७६ ॥

तठइ आईडइ श्रावज मावीय काण।
श्रावण अहि[6] बहुसारयउ[7] श्राखि ॥
क्या[8] छइ[9] जीभ की[10] श्राडरी।
स्वामी[11] कइ[12] धण[13] थारइ हीयइ[14] न समाइ ॥
कइ या पीहरि लाडली।
इव[15] कइ[16] दुष देई[17] उलग[18] जाइ ॥ ७७ ॥

---

१. श्रा० ६ जीवत हो।
२. श्रा० मूई भली, श्रा० १२ मश्रां श्राचडै।
३. श्र० २ बालू लोभी हूँ, श्रा० ६ बालूं हो भोली राजा, श्रा० ६ बालो हो धण, श्रा० १२ बालु हो स्वामी।
४+५. श्र० २ थार दाम, श्रा० ६ तुम्हारा दास, श्रा० ६ तुम्हारडो राज, श्रा० १२ थारडा दाम।
यह छंद श्र० २ खंड २ में १७, श्रा० ६ खंड २ में १६, श्रा० ६ में ७३ तथा श्रा० १२ में ७३ है।
६. श्रा० ६, ग्रहीत।
७. श्र० २, तिय बइसाडी छइ, श्रा० ६, बैसांडीयो।
८+६. श्र० २ कै या, श्रा० ६ कै ए, श्रा० ६, काया छइ, श्रा० १२ कइश्रा।
१०. श्र० २ बोलकी, श्रा० ६ बोली।
११+१२+१३. श्र० २ माधन वीरा, श्रा० ६ सामधण वीरा, श्रा० ६ स्वामी कै धण, श्रा० १२ कर धण।
१४. श्रा० ६ हृदै, श्रा० १२ थारै हीयै।
१५+१६. श्र० २ कौणे, श्रा० ६ श्रबकि, श्रा० १२ हिवै दुष।
१७. श्रा० १२ देई किम।
१८. श्रा० ६ ऊलगे।
यह छंद श्र० २ खंड २ में १७, श्रा० ६ खंड २ में ३४, श्रा० ६ में ८१ तथा श्रा० १२ में ७४ है।

तठइ सुणि हे भावज[1] बोलइवइ[2] राउ[3] ।
करि जोड़ा अरू[4] कहइ[5] सुभाउ[6] ॥
वीसल दे करइ[7] वीनती ।
थे परहरै कोप मो देइ[8] आसीस ॥
दुष दारुण म्हारइ[9] को[10] नही ।
ऊलग जाणि[11] की षरीय जगीस ॥ ७८ ॥

ऊभी हो[12] भावज देइ छइ[13] सीष ।
रतन कचोलइ किम[14] पड़[15] भीष ॥

---

इस छंद की ५ वीं पंक्ति आ० २ में इस प्रकार है—
"हंसि गलि लाई भोजि करंण ।"
एवं आ० ६ में है :—"हंसि गलि लाई भांगी काणि ।"
आ० १२ में इस छंद की पहली पंक्ति है—
"तठै आई छै भावज मानिय कांणि ।"
तथा आ० १२ में इसकी दूसरी पंक्ति है—"आंचलि थांकै सारीय आणि ।"

१. आ० ६ ( में नहीं है ) आ० १२ में "तठइ" नहीं है ।
२. आ० ६ वोलीयउ, आ० १२ बोलैछै ।
३. आ० १२ राइ ।
४. आ० २२ कर जोडी अरु, आ० ६ नइ ।
५+६. आ० ६ लागू पाइ, आ० १२, कहु सभाइ ।
७. आ० १२ करै ।
८. आ० ६ मोहि द्यो ।
६. आ० १२ म्हानै ।
१०. आ० १२ कौ ।
११. आ० १२ जाण ॥

यह छंद आ० ६ में ८२, आ० १२ में ७५ है ।
आ० १२ में इस छंद की ४ थी पंक्ति है—
तुम्ह परिहरौ कोप मुझ देहु आसीस ।

१२. आ० २ ऊभीय, आ० ६ ऊभी छै, आ० १२ ऊभीय ।
१३. आ० १२ दीय छै ।
१४+१५. आ० २ राय सांप जै, आ० ६ संपजै, आ० १२ रतन कचोले
बी पडै ।

सा[1] किम[2] पगइ[3] ठेलिजइ।
इसीय नारि निखि कइ धरि वासि॥
इसीय न देवल पुतली।
कवलनयण[4] घण षरोय[5] सुमीठ[6]॥
दई[7] निपाई[8] विह घडी।
म्हे तउ इसीतिरी न रवि तलइ दीठ॥ ७९॥

आकुली[9] होइ[10] नइ पाछइ[11] पछताइ।
इव[12] कय[13] नाह मनावणउ[14] जाइ॥
परहर[15] तूठइ[16] वर[17] पाइ[18]।

---

१+२. अ० २ ते नांउ, आ० ६ तोहि, आ० १२ सो क्युं।
३. अ० ६ पग सिउं, आ० १२ पगस्युं।
४. अ० २ नयण संलूणो, आ० १२ सरणनयण।
५+६. अ० २ वचन सुमीत, आ० १२ अरु षरीय सुमीठ।
७+८. अ० २ दईप नरवाली, आ० १२ दाईप निगाई।

यह छंद अ० २ खंड २ में २८, आ० ६ खंड २ में ३५, आ० ६ में ८३ तथा आ० १२ में ७६ है।

इस छंद की ४ थी और पाचवीं पंक्तियां आ० ६ में इस प्रकार हैं—

४. असीय न रामतणै रहे वास।
५. असीय विधाता घड़ि सकि॥

तथा आ० १२ में ८ वीं पंक्ति है—इसीय नारिय रवितलै दीठ।

९. अ० २ आडो, आ० १२ आजकुली।
१०. अ० होइ।
११. अ० २ नइ षरो, आ० ६ षरी, आ० १२ नै।
१२+१३. अ०२ नांर बोलावउ, नार बोलावइ आ० १२ में केवल 'इब' है।
१४. अ० २ बन कवन मुखि, आ० ६, हूँकिण मुखि, आ० १२ नाह नमनावणो।
१५. आ० ६ हरि।
१६. अ० २ पूजो होइ, आ० ६ पुज्योहोय।
१७+१८. अ० बाहुडे, आ० ६ बाहुडइ, आ० ६ परि पाइये।

तइ[1] तउ[2] सासूनि[3] गिणी न देवर[4] जेठ ।।
म्हाकउ कहउ न राषियउ[5] ।
म्हातउ[6] हे गोरी[7] पांछिला[8] भेटि[9] ।। ८० ।।

तठइ[10] हीयडलउ[11] गहवरइ[12] उसास[13] ।
चालिछइ[14] गोरडी भाटणि पासि ।।
पाइ पड़ी लालच करइ[15] ।
तो नइ[16] कोडि तंकानउ[17] नवसर हार ।।
आभर[18] सगला[19] सोभता ।
भोलइ म्हार[20] तुम्ह विचइ[21] सिरजण हार ।।

---

१+२+३. अ० २, आ० ६ देवर मनावइ, आ० १२ सासू ।
४. अ० २ अरी बड़ो आ० अरबडो, आ० १२ गिणीय न देवर ।
५. आ० १२ दाषीयो ।
६. अ० २ हुइ, आ० ६ हावि, आ० १२ हम तुम्ह ।
७. अ० २, आ० ६ गोरी सुं ।
८. अ० २ आ० ६ छेहली, आ० १२ पाछिलि ।
६. अ० २ भेट, आ० १२ भेट ।

यह छंद अ० २ में ६२, आ० ६ खंड २ में ६०, आ० ६ में ८५ आ० १२ में ७७ है । अ० २ तथा आ० ६ में इस छंद की तीसरी पंक्ति है—"मइ तो काई नवि बोलियो ।"
तथा आ० १२ में ३ री पंक्ति है—"हरि तठे वर पाइजे ।"

१०. आ० १२ तठैं ।
११. आ० १२ हीयडलो ।
१२. आ० १२ गहबर्‌यो ।
१३. आ० ६ भरइ उसास, आ० १२ भरे ऊसास ।
१४. आ० १२ चालै छै ।
१५. आ० १२ करै ।
१६. आ० १२ तोने ।
१७. आ० १२ टंका को ।
१८. आ० १२ आभरण ।
१९. आ० १२ सिगला है ।
२०. आ० १२ म ।
२१. आ० १२ विचिछे ।

चंद सूरिज दयउ दुवु[1] साषिया[2] ।
उतालग जाता म्हाकइ राजा नइ राषि ॥ ८१ ॥

भाटिया कहइ[3] सुणि राजा[4] का पूत ॥
उलग जाण कउ षरउ कुसूत[5] ॥
बेटि ब्याही राजाभोज की ।
सोनउ सोलहउ काइ[6] करइ छार ॥
मरण जीवण राजा[7] पग[8] तलइ[9] ।
कनक[10] कचोलउ[11] उर[12] धरइ[13] भार[14] ॥
हेडाऊ का तुरीय जिम ।
हथ[15] न फेरइ[16] सउ सउ[17] वार ॥ ८२ ॥

---

१. आ० १२ बैकु ।
२. आ० १२ साषीय ।

यह छंद आ० ६ में ८६, आ० १२ में ७८ है। इस छंद की अंतिम पंक्ति आ० १२ में है—"उलग जाता म्हाकउ नाह निवारि ।"

३. आ० १२ भाटणी कहै ।
४. आ० १२ राव ।
५. आ० ६ षरौकसूत ।
६. आ० ६ वीरा कांई, आ० १२ सोलहउ सो नौ कांइ ।
७ + ८ + ६. अ० २, आ० ६ छैइ पग तलइ, आ० १२ राजा पग तलै ।
१० + ११. अ० २ कनक कचोली, आ० ६ कनक कचोलडि, आ० ६ कनक कचीला, आ० १२ कनक कचोलौ ।
१२ + १३ + १४. अ० २, आ० ६ उरि भयो भार, आ० १२ उरि धरै भार ।
१५ + १६. अ० २ तुये दिन दिन हाथ फेरनइ, आ० ६ दिन माहिं हाथ फैरे, आ० १२ हाथ न फेरौ ।
१७. अ० २ सौ, आ० ६ दस ।

यह छंद अ० २ खंड २ में ३६, आ० ६ खंड २ में ३६, आ० ६ में ८७, आ० में ७६ है—

इस छंद की दूसरी और तीसरी पंक्तियां अ० २ और आ० ६ में नहीं हैं।

कनक कचोला दुनं विष हुया[1]।
विष बल्ली नवि छिवणी जाइ[2]॥
अमृत फल थाते विष हुया।
कडवी जिसी नली होइ[3]॥
मरम परायउ[4] नवि छेदियइ[5]।
तेतलउ[6] अषत[7] दुषत मार म जोइ[8]॥ ८३॥

साचण उभीछइ[9] टेकि पगार[10]।
कडिहि पटोली चूनडी सार[11]॥
काने हो[12] कुंडल झिगमिगइ[13]।
पागा[14] पाइल[15] षरीय सुचंग[16]॥

---

१. आ० ६ दोनुं विष हुआ, आ० १२ कनक चोलउ दोनूं विष हुआ।
२. आ० ६ नवि वावणी जाइ।
३. आ० ६ जिसा नावोली होइ, आ० १२ कडवीम लिसी ना वोलीय होइ।
४. आ० १२ परायो।
५. आ० १२ न छेदिय।
६+७. आ० ६ ते तो अषत, आ० १२ तू अषत।
८. आ० ६ दुषत भारणिय जोइ, आ० १२ दुषत भाटणि गम जोइ।

यह छंद आ० ६ में ८८, आ० १२ में ८० है। इस छंद की दूसरी और तीसरी पंक्तियां आ० १२ में नहीं है।

९. आ० १२ ऊभीछै।
१०. आ० १२ पणीर।
११. आ० १२ कडिहि पटोली सिर चूमडी सार।
१२. आ० १२ सते।
१३. आ० १२ झिगमिगे।
१४. आ० १२ पार हो।
१५. आ० १२ पावल।
१६. आ० १२ सुरंग।

हीरा जड़ता[1] माथइ राखड़ी।
मनोहु[2] सरवगति[3] वीसरा थारा चींत[4] ॥
राति दिवस चलि चलि[5] करउ[6]।
स्वामी[7] था[8] घरा[9] छइ[10] राजा किसी[11] इह रीति[12] ॥ ८४ ॥

लाज गहेली[13] हे लाज[14] निवार[15]।
तुरीय पलाणीया ऊभछइ[16] वारि ॥

---

१. आ० १२ जडित।
२. आ० १२ मोनै।
३. आ० १२ रावगति।
४. आ० १२ वीसरी षारीय चिचि।
५+६. आ० ६ हांलु हांलु करो, आ० १२ राति दिन चालु २ करै।
७. अ० २ (में नहीं है)।
८+६+१०. आ० ६ थां घरि, अ० २ नित दिन ऊगही, आ० ६ तीयां घरि बोलबा, आ० १२ स्वामी थारै घरे।
११. अ० २ भाषु दीनतौ, आ० ६ भा‸ु न राति।
१२. आ० १२ एछै रीति।

यह छंद अ० २ खण्ड २ में ६१, आ० ६ खण्ड २ में ५६, आ० ६ में ८६, आ० १२ में ८१ है। इस छंद की प्रथम ५ पंक्तियां अ० २ तथा आ० ६ में इस प्रकार हैं—

१. सावन ऊभी टेकि कि बाड़ि।
२. रतन-कुण्डल केसिर तिलक लीलाड़।
३. जाल जलाल्ो गोरड़ी।
४. सोवन पायल पत्र झलकंति।
५. रतन जड़ित सिर राषड़ी।

१३. अ० २ लांवड गहेला, आ० १२ गहेचीय।
१४+१५. अ० २ हेला उठि बार, आ० १२ लाड निहारि।
१६ अ० २ आंगणइ छै, आ० ऊभाछ।

दावइ तउ सवारइ[1] म्हे चालिस्यां।
तू तउ[2] चोवा चंदन चरचनइ[3] गात[4]॥
पहर पटोली[5] चूनड़ी।
आड़ा[6] आविनइ[7] आपड़ी[8] बाग॥
पोषउ[9] गाजिनइ मन तणउ[10]।
पकत साइ देइ परण्या गलइ लागि॥ ८४॥

स्वामी चालण मतउ[11] घायलउ सुवण[12]।
राजनइ[13] चालता वरजइ छइ[14] कुण[15]॥

---

१. आ० १२ आज सवरैं।
२. आ० ६ तो।
३. अ० २ चौल।
४. अ० २ कराइ।
५. अ० २ न आछी।
६. अ० १२ आडी।
७. आ० १२ आविनै।
८. आ० १२ पाकडी।
९. आ० १२ पोषो।
१०. आ० १२ भाजिनै मणत नो।

यह छंद अ० २ खण्ड २ में ६५, आ० ६ में ६०, आ० १२ में ८२ है। किन्तु अ० २ में इस छंद की अंतिम दो पंक्तियां नहीं हैं। तीसरी पंक्ति है जो इस प्रकार है—उठी सवारां चालस्यां।

छठी पंक्ति भी इस छंद की उपर्युक्त छठी पंक्ति से बिलकुल भिन्न है—

६. "गाढ़ो रोई गोरी गलिलाई।

आठवीं पंक्ति आ० १२ में है—

"सकति वांहा दे'पारा गलिला।"

११. आ० १२ मतौ।
१२. आ० १२ नौ घालौली सौण।
१३. आ० १२ राइ नै।
१४. आ० ६ वरजै, आ० १२ वरजसी।
१५. आ० १२ कौण।

कह्यउ[1] हमारउ[2] जे सुणउ[3] ।
स्वामी सेव[4] दुहेली[5] अरु परदेसि ॥
कुहक[6] मोर सुहामणा ।
तउ तउ देषि कुबुधीय धणाकउ वेस ॥ ८६ ॥

उलग जाता किम रहा नारि ।
बोलिया बाल नइ चितह विचारि ॥
वोलग्रउ पाला म्हे तउ आपणउ ।
बइसि[7] ऊगाहिस्या हीरा का षाण[8] ॥
मुहि किसषाणइ जिन रहइ[9] ।
म्हे तउ वहगा आविया देषे हे नारि ॥ ८७ ॥

---

१. आ० १२ कह्यो ।
२. आ० १२ हमारौ ।
३. आ० १२ सुणै ।
४+५. आ० ६ सेवा दुहेली ।
६. आ० १२ कुहकै ।

यह छंद अ० २ खण्ड २ में १३, आ० ६ खण्ड २ में १०, आ० ६ में ६१, आ० १२ में ८३ है—

अ० २ तथा आ० ६ में इस छंद की पहिली और दूसरी तथा चौथी और छठी पंक्तियां इस प्रकार हैं—

१. कुंवरी कहई सुणी सांभर्या राव ।
२. काई स्वामी तुं उलगइ जाइ ।
४. थारइ छइ साठ अंतेवरी नारि ।
६. राज कुंवरी निति भोगवि राय ।

आ० १२ इस छंद की अंतिम पंक्ति है—

देषि कुबुधीय घण केरो वीस ।

७. आ० १२ बैसि ।
८. आ० १२ की षाणी ।
९. आ० १२ रहे ।

नोट—यह छंद अ० २ में ६१ है । आ० ६ में यह पुनः ६२ है

उवग जाया की परीय जगीस ।
राजा चावण को[1] देइ छइ[2] सीपि ॥
इणि विधि[3] राज माहे संचरे[4] ।
बइठा राजा सभा परधान[5] ॥
तिणि सुं[6] मीठा बालिज्यो[7] ।
नाई साहणी[8] दूणड[9] मान ॥
बांदीय[10] सरिसउ मति[11] हसउ[12] ।
तटइ राइ बोला इसी भीतर गोठि ॥

---

तथा अ० १२ में ८४ है। लेकिन इस छंद तथा इस प्रति की छंद संख्या ६१ में निम्न अंतर है—

पंक्ति ४. उतइ षाणि उगाहिस्या हीरा की जाइ ।
" ५. मुझ विग छिण तू जिन रहइ ।
" ६. बेगि मिलिस्या तुझ नइ आइ ।

आ० १२ में इस छंद की दूसरी पंक्ति नहीं है ।

आ० १२ में इस छंद की तीसरी पंक्ति के स्थान पर है—
"बोल्यो पलिस्यां आपणो ।"

तथा अंतिम पंक्ति के स्थान पर है—
"बेगा आविस्या तुगीय पलाणि ।"

१. आ० ६ नीति गति, अ० २ कुंवरधन ।
२. अ० २ षेसउँ, आ० ६ धण दीयै ।
३. आ० ६ ईणि परि ।
४. अ० २ राज माहे परिहरई, आ० ६ राजमाहे बेसइयो, आ० ६ राज माहि गम करे ।
५. अ० २, आ० ६ राज चलायक अरु परधान ।
६+७. अ० २, आ० ६ ईसासुं विरोध नहुँ बोलिजइ ।
८. अ० २, आ० ६ नावी साहुणी, आ० ६ नाई साहुणी ।
९. अ० २ सुघराई, आ० ६ सुंहणी, आ० ६ दोनु ।
१०. अ० २ दासी ।
११+१२. अ० २ भिण हंसोउ, आ० ६ मति हसै ।

राज जतन करि बोलिज्यो ।
काक नहड़ा अरु नीची दिठि ।।

उजग जाण की षरीय दुसार[1] ।
राजनी[2] रीति[3] जाणि[4] षंडा नी[5] धार ।।
मुरष लोग न जाणही[6] ।
चोर जुवारी कइ[7] खाज[8] ।।
तिण स्युं[9] हसी म[10] बोलिज्यो ।
राजा जी पूछइ[11] मरम की बात ।।
झूठी साची थे मत कहइउ[12] ।
मुहड़ा आड़ उ थे देज्यो हाथ ।।

---

यह छंद अ० २ खण्ड २ में ५६, आ० ६ खण्ड २ में ५७, आ० ६ में ६३ है। किन्तु आ० ६ में ८, ६, १० इस प्रकार हैं :—

८. सूणि रावल तुं हज किण जाय ।
९. राज माहि नातोभिण करो ।
१०. राजा तेड़ो चोषड़ी हेवि ।

१. अ० २ तोसार ।
२+३. आ० ६ राजा की नीति, आ० १२ राजानीनीति ।
४. अ० २, आ० ६ जिसी, आ० ६ जाणे, आ० १२ छै ।
५. आ० ६ षेडाकी, आ० १२ षांडानी ।
६. आ० ६ न जाणइ सार ।
७. आ० ६ अवर, आ० १२ अउर ।
८. आ० १२ कलाल ।
९. अ० २ ईणुसूं, आ० ६ जासूं, आ० ६ तिणस्युं, आ० १२ सुं ।
१०. आ० १२ हसीय न ।
११. आ० १२ पूछैछै ।
१२. आ० १२ कहो ।

यह छंद अ० २ खण्ड २ में ६०, आ० ६ खण्ड २ में ५८, आ० ६ में ६४ तथा आ० १२ में ८५ है। इस छंद की अंतिम दो

कान नयड़ा पग दूरि हा।
स्वामी साचइ रति गति सांचीय बात॥

झलकती काढ़ि[1] बांधी जम दीठ।
सुद्धि किरमाणीय दीन्हउछइ बाठ॥
सेल[2] समदीयउ[3] सोरठी।
बेडी[4] करी[5] डाविय किना सिणगार॥
आयुध ले हयवरि चढ्या।
सषीउ[6] उलगाणा[7] चालण्या हार॥

तठइ[8] तुरीय पलाणीया अंगणइ[9] आणि।
समरि[10] भवानीय चडियउ[11] केकाण॥

---

पंक्तियां अ० २ तथा आ० ६ में नहीं है। तथा आ० १२ में अंतिम दो पंक्तियां हैं--

"कान" नैडा पग दूरही।
स्वामी थावर विगति सांचीय बात।

१. आ० ६ कडि, आ० १२ कडि।
२. आ० ६ से।
३. आ० ६ समदीया, आ० १२ समादियो।
४+५. आ० ६ बडी, आ० ६ फरी, आ० १२ फारी।
६ आ० ६ सषी, आ० १२ सषी।
७. आ० ६ उलग, आ० १२ उलगाणउ।

यह छंद जिस प्रकार अ० २ में ८६ का दूसरा हिस्सा है उसी प्रकार आ० ६ में भी यह ६४ का दूसरा हिस्सा है। तथा आ० १२ में भी ८५ का दूसरा हिस्सा है।

इस छंद की दुसरी पंक्ति आ० १२ में है—

'सुधकिर माणएदीहो छै वाठ।"

८. आ० १२ तठै। ९. आ० १२ आंगण।
१०. आ० १२ समरि। ११. आ० ६ चढ्यो।

दहीय[1] वंदावइ गोरडी ।
तब हंसि वीडउ[2] दे दीन्ही[3] बांह ।
सावण मनमाहे परहसी[4] ।।
बेग[5] आविज्यो धण का[6] नाह ।

तुरीय पलाणीया वीसल राउ ।
गोरडी दीन्हीय बावीय बाह[7] ।।
आपडीया जल ना रहइ[8] ।
जाणि करि[9] सरवर फुटो छइ[10] पालि[11] ।।
दूसड लागउ[12] वाहला[13] ।
झूरतीय[14] छोडीय संभरि[15] बाल ।।

---

१. आ० १२ दही ।
२. आ० १२ वीडौ ।
३. आ० १२ दीन्हीय ।
४. आ० १२ मनमाही रे हसी ।
५. आ० ६ बेगा, आ० १२ वेगा ।
६. आ० ६ घणवेरे ।

यह छंद आ० ६ में ६५ और आ० १२ में ८६ है ।

७. आ० ६ बाह ।
८. आ० १२ रहै ।
९. आ० १२ कि ।
१० + ११. आ० फूटीय पालि ।
१२. आ० १२ दूसरुलीयो ।
१३. आ० ६ बाल है, आ० १२ वालदउ ।
१४. आ० ६ झूरती, आ० १२ झूरती ।
१५. आ० १२ सांभर ।

यह छंद आ० ६ में ६६ तथा आ० १२ में ८७ है ।

चलउ उलगाणेउ[1] सउख बुलाय[2] ।
साघण प्रीय वउलावण जाइ ॥
रहि न सकइ[3] पगला भरइ ।
हुई दाहिणी भैरवी सउण सुचंग ॥
वउलाया[4] घण पगालाग[5] ।
स्वामि नइ[6] आइ नइ[7] कुसल बदाइ[8] ॥
गुह कइ छइ राजा दाहयाउ ।
तुरीय डकाईयउ सँभरि राय[9] ॥

राजा जी लावइ[10] छइ चावल[11] षाल ।
डावी देऱ्या दाहणी[12] माल[13] ॥
डावी महासती पचउ करइ[14] ।
वामा[15] राजा[16] सींह सीयाल ॥

---

१. आ० ६ चाल्यो उलगाणो, आ० १२ चाल्यउ उलगांणउ ।
२. आ० १२ सउ बुलाइ ।
३. आ० १२ सकै ।
४. आ० १२ बौलायो ।
५. आ० १२ पाये लागि ।
६. आ० १२ नै ।
७. आ० १२ ( में नहीं है ) ।
८. आ० ६ पठाइ, आ० १२ घणपाठवइ ।
६ आ० १२ राउ ।
यह छंद आ० ६ में ६७, आ० १२ में ८८ है।
इस छंद की ७वीं पंक्ति आ० १२ में है:—"गुहिकै राजा दाहिमो" ।
१०. आ० ६ लांघइ, आ० १२ लंघिया ।
११. आ० २ पीलाहा, आ० ६ पांजियो, आ० ६ षागल, आ० १२ चाविल ।
१२. आ० २ जीमणी, आ० १२ दाहिणी ।
१३. आ० १२ चील ।
१४. आ० २ फैकरइ, आ० १२ फुंकरै ।
१५+१६. आ० २ डावा सरस ।

वामइ[1] सारस कुरलीयइ ।
तठ[2] तुरीय डकाईयउ[3] संभर वाल[4] ॥

चालउ[5] उलगाणउ ऊखालीय[6] वाल ।
आडउ फिरइ[7] तिहां कालउ नाग ॥
वासिग देव दया करिउ ।
दुध पषालिस्यां थारा पाग ॥
दूध कटोरइ पायस्यां ।
भगति करेस्यां थारी दुइकर जोडि ॥
सोनारूपा की पाषडी ।
उलग जाता म्हाकउ नाइ न होइ ॥

तउ तउ[8] सुणि हे गोरडी[9] बोलइ[10] वासिग नाथ[11] ।
सउण न मानइ[12] गोरी[13] थारउ[14] नाथ[15] ॥

---

१. आ० ६ हावीरे, आ० १२ वामै ।
२. आ० १२ तठै ।
३. आ० ६ धुंदाबि, आ० १२ डकाईयो ।
४. आ० १२ भरि राउ ।

छंद आ० २ खंड २ में ८१, आ० ६ खंड २ में ७४, आ० ६ में ६८ तथा आ० १२ में ८६ है ।

५. आ० ६ चाल्यो । ६. आ० ६ कुलाणी ।
७. आ० ६ आयो ।

यह छंद आ० ६ में ६६ ।

८. आ० १२ ( में नहीं है ) । ९. आ० १२ गोरी ।
१०. आ० १२ बोलै । ११. आ० १२ राउ ।
१२. आ० १२ मानै ।
१३. आ० ६ भोली, आ० १२ ( में नहीं है ) ।
१४. आ० ६ थारो, आ० १२ थारौ ।

वचन विरोघी[1] नीसरइ[2] ।
तितइ उकाहियउ जाइहोजाइ ॥
उव तउ[3] राषा[4] न रहइ किमइ[5] ।
थे तउ गोरडि रहउ समझा मन माहि ॥

आइ[6] दमोदर प्रीय समझाय[7] ।
मइ पीडउ उत्रग जाइ ॥
विष दोषइ मइ पीडीय ।
उणा नइ वारमउ थावर बारमउ राइ ॥
उभीय मेल्हनइ चाली ।
रोवती छोडि धण चालीयउ नाह ॥

---

१.+२. आ० १२ विरोधो नीसरै ।
३. आ० १२ ( में नहीं है ) ।
४. आ० १२ राष्यो ।
५. अ० १२ काही, कउ नार हे ।

यह छंद आ० ६ में ११, आ० १२ में ६० है ।

इस छंद की अन्तिम पंक्ति आ० १२ में है—

"ते तो रहि हे गोरडी समझि मन माहि ।"

६. अ० २, आ० ६ आवि ।
७. अ० २, चइसिनुपाठ, आ० ६ बैठो छइ पाठ ।

यह छंद अ० २ खंड २ में २६, आ० ६ खंड २ में २६, आ० ६ में १०१ है । लेकिन अ० २ और आ० ६ में, २ से ६ तक की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

२. कहिन वीरा म्हांका पीउ की बात ।
३. षरौ हो अयांणउ ( आ० ६ पीयाणो ) उषरइ ।
४. आठमउ ठाँव रवि ( आ० ६ थावर ) बारमउ राइ ।
५. अइगण ( आ० ६ अहिगण ) अतिहि ( आ० ६ तिही ) बुरा ।
६. सिर धुणि गोरी मेल्हीनाह ।

रोवती बाउडी चालीवड[1] नाह ।
सूनंइ मन्दिर दीन्हीय[2] वाह ॥
सावण कुरलीय[3] मोर ज्युं ।
तवइ सात सषी[4] मिलि बइठीछइ आइ[5] ॥
जाहि[6] निसन्तान जेडवर[7] गाय[8] ।
बोलउ नाहअप परिजाइ ॥

सषीय[9] सहेलीय[10] रही समझाय ।
निगुणी हे गुण होइ तउ[11] नाह[12] कइ[13] जाइ ॥

---

१. आ० ६ चालिउ ।
२. अ० २ मेल्हेइछइ, आ० दायै जई, आ० १२ दीवीय ।
३. आ० ६ झूरइ, आ० ६ कुरली, आ० १२ कुरलै ।
४. अ० २ पाँच पडोससा, आ० ६ पाडि पाडोसए, आ० १२ में "तवइ" नहीं है ।
५. आ० ६ देखवा आय ।
६. अ० २ ओ, आ० १२ जिहि ।
७+८. अ० २, आ० ६ करि गयो, आ० १२ ज्युँ उवइ गयी ।
यह छंद अ० २ खंड ३ में १, आ० ६ खंड ३ में २, आ० ६ में १०२ आ० १२ में ६१ है ।
लेकिन अ० २ तथा आ० ६ में १ली पंक्ति है—
"प्रीय बोलावै घन रोवती जाइ ।"
फिर आ० ६ में ५ वीं और ६ ठी पंक्तियाँ हैं—
"सोयन स्त्री नै करि गयो ।
असी रातनाउँ माणस जाय ॥"
एवं अ० २ में ६ठी पंक्ति है—
"दिवस नइ रात भौ चितांता जाइ ।
तथा आ० १२ में ६ठी पंक्ति है—भीली नाह हुइ सुभ्रषि पारन जाइ ।
९. अ० २, आ० पंच ।
१०. अ० २, आ० ६ सखीमिलि ।
११+१२. अ० २ तउप्रीय, आ० तोपीउ ।
१३. आ० ६ किम ।

फूल्ल पगर जिउं गाहि जइ ।
चंपीया तेजीउ[1] तुरीय जिम उललाइ[2] ॥
मृग चारंता गोरी मोहिजइ ।
मोली अंचाल बाधीयउ नाह[3] क[4] जाइ ॥

सुणउ सहेलीय म्हारीय वात ।
कंचूउ[5] षोल्लि दिषाया[6] गात ॥
त्रिय चरित्र[7] मइ लष[8] कीया ।
म्हरिय राउ न जाणए वात[9] ॥
तउ वडउ परि[10] भयसि पीडार[11] ।
जियं दीठा मुनिवर[12] चलइ[13] ॥

---

१. आ० ६ रौजीउ ।

२. आ० ६ केकाण ।

३. आ० ६ प्रिय ।

४. आ० किम, अ० २ कुं ।

यह छंद अ० २ खंड २ में १६, आ० ६ खण्ड २ में १८, आ० ६ में १०३, किन्तु अ० २ में ४, ५ पंक्तियाँ छूटी हुई हैं, तथा आ० ६ में ४ थी पंक्ति छूटी हुई है ।

५. अ० २, आ० ६ चोली, आ० १२ कांचूउ ।

६. आ० १२ दिषाडीयो ।

७. अ० २, आ० ६, लाखचरित्र, आ० १२ त्रिया-चरित ।

८. अ० २, आ० ६ आगइ, आ० १२ थेइ लषी ।

९. आ० ६ प्रकार ।

१०. आ० ६ पिणि ।

११. आ० ६ थीडार ।

१२. आ० ६ मुनि ।

१३. आ० ६ विरचै ।

म्हे तउ[1] उक्कर[2] वोळ्लियउ कोवियउ नाह[3] ।
तिणि कुवचनइ सखी घण छुळी ॥
डालीयउ[4] पासउ[5] चूकउ[6] दाउ ॥

आगइ[7] प्रिय की वइरणि[8] नदीय बनास[9] ।
तब साघण[10] घरि मण्डइ[11] आस ॥

---

१. आ० १२ तइतउ ।
२. आ० १२ अवरकर ।
३. आ० १२ राउ ।
४. आ० १२ डालीयो ।
५. आ० १२ पासौ ।
६. आ० १२ हुंचूकौ ।

यह छन्द अ० २ खण्ड में २०, आ० ६ खण्ड २ में १६, आ० ६ में १०४, आ० १२ में ६२ है ।

लेकिन अ० २ और आ० ६ में पंक्तियों का क्रम इस भाँति है—

१ पंक्ति—इस छंद की ५वीं पंक्ति ।
२ पंक्ति—अस्रीय चरित्र नविलहै विचार ( उलषइ गँवार अ० २ ) ।
३ पंक्ति—इस छन्द की ३री पंक्ति ।
४ पंक्ति—इस छन्द की २री पंक्ति ।
५ पंक्ति—तउ ( तोहि आ० ६ ) यती नो म्हारो बाल हो ।
६ पंक्ति—निहचै करि मोजगै चालणहार ।

आ० १२ में ४थी और पाँचवीं पंक्ति है—

४. मूरष राव न जाणे सार ।
५. राव वडो पणि भइसि पीडार ।

७. आ० १२ आगे ।
८. आ० ६ बरयणि, आ० १२ कू वैरणि ।
९. आ० १२ निवास ।
१०. आ० १२ साघण ( "तव" नहीं है ) ।
११. आ० १२ माहि मांडीय ।

कांबिल गाडीय नइ ऊतर्‍या ।
इव तउ[1] बरिसि[2] सुहावा मेह[3] ॥
नदीय वहइ[4] प्रीय बाहुडइ ।
दूध पाणी जिमि बधइ सनेह[5] ॥

राजा छाड्या[6] गोरी[7] जेसलमेर ।
छाड्या[8] टोडा[9] गढ़ अजमेर ॥
छाड्या चुकवि चालिला ।
छाड्या[10] राणा का[11] रिणवास ॥
पाड्यो[12] वउलावी[13] बाहुड्याउ[14] ।
गोरी राव गउ ऊतरि वनास ॥

---

१ + २. आ० ६ अवतौ वरिसि, आ० १२ हिवै तूसो वरस ।
३. आ० १२ हो मेह ।
४. आ० १२ वहै ।
५. आ० ज्युवधै स्नेह ।
यह छंद आ० ६ में १०५, आ० १२ में ६३ है ।
६. अ० २ छोडइछइ, आ० ६ छोडिया, आ० १२ छांड्यो ।
७. आ० ६ भोली, अ० २ तोडइ नइ, आ० ६ टोडौ नै, आ० १२ भोली ।
८. अ० २ आ० ६ मेल्ही ।
६. आ० ६ तोडा ।
१०. अ० २ छांडया, आ० ६ छोडिया, आ० १२ छांडया ।
११. अ० २ आ० ६ सइंभरि, आ० १२ राणीका ।
१२ + १३. अ० २ एक बलावे, आ० ६ एकावलान, आ० १२ पांडूयो बोलावी ।
१४. आ० १२ बाहुड्यो ।
यह छंद अ० २ खंड २ में ७६, आ० ६ खंड २ में ७३, आ० ६ में १०७।१, आ० १२ में ६४ है ।
इस छंद की अन्तिम पंक्ति आ० १२ में इस प्रकार है :—
"गोरी राव ऊतसिरि गया नदीय निसवास ।"

गोरी राव उतरि गयो नदीय वनास।
नारिका जीव[1] न[2] हीयडलइ[3] सांस॥
भूयं भूती[4] हुई भुम[5] पडी।
उवा तउ[6] नीर न पीवइ[7] न सँभरइ[8] चीर॥
बादल घायउ[9] चंद[10] जं[11]।
उघरउ गात उघाडा नइ[12] विकल सरीर॥
सात[13] सहेलीय बइठी[14] छइ[15] आइ।
काढ़उ[16] न पीवइ[17] उषध नीषाइ॥

१. अ० २ नाड़िनू, आ० ६ जीभ, आ० १२ नासिका जीव।
२+३. अ० २ हीयउ नै, आ० ६ नहीं डालै, आ० १२ नहिगलै।
४. आ० ६ भुइ, अ० २ भौ, आ० १२ संसती।
५. आ० १२ भुइ।
६. आ० १२ उवा।
७. आ० १२ पीवै।
८. आ० १२ संभरै।
९. आ० १२ छायो।
१०. आ० १२ बुंद।
११. आ० १२ ज्युं।
१२. आ० १२ उघरै गात्र उघाडो नै।

यह छन्द अ० २ खण्ड २ में ८०, आ० ६ में १०७। २, आ० १२ में ६५ है।

लेकिन अ० २ में ३, ४, ५, ६ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:—

३. बन भौभूती भुइ पड़ी।
४. चीर समाल्या नुं पीवई नीर।
५. जांणे हांथणइ हरणो हणी।
६. आको गात्र उघाड़िज्यो जोबनपूर।

१३. अ० २, आ० ६ पञ्च।
१४+१५. अ० २ मिली वइठा, आ० ६ बैठीय, आ० १२ बैठी छै।
१६. अ० २ कइरउ, आ० १२ काढयो।
१७. अ० २ पीवौ, आ० १२ पीवै वर्वि।

दांत[1] सूकट[2] पड्या[3] डावडी।
भोळी[4] तो[5] था[6] भली दवदंती हे नारि ॥
सोह[7] नल[8] राउ[9] छोडी गयो[10]।
पुरष सउ[11] नीच[12] नहीं संसारि[13] ॥

थे भली सराहा द.दन्ती हे नारि।
बारह बरस नल कीन संभलइ[14] ॥
जे चित आवइ सांभरि धणी।
जाणउ जे अपहछ[15] करउ[16] ॥
तउतउ धरणी[17] माता लइ नइ[18] विहार ॥

---

१+२+३. अ० २ दांत कष्ट बँध्यो, अ.० ६ दंर सकट बाँध्या, आ० १२ दंत सूकड पड्या।
४. अ० २, आ० ६ ( में नहीं है ), आ० १२ ( में नहीं है )।
५+६. अ० २ तो थी भली हुती, आ० १२ तो थी।
७+८. अ० २ नल, आ० ६ जां नल।
९. आ० ६ मेल्ही, आ० १२ रायं।
१०. अ० २ मेल्हे गयो, आ० ६ वन गयो।
११. आ० ६ इसो, आ० १२ समो।
१२. अ० २ निगुण, आ० ६ नगुण, आ० १२ ( में नहीं है )।
१३. आ० १२ कठिन संसार।

यह छंद अ० २ खण्ड ३ में २, आ० ६ खंड में ३ में ३, आ० ९ में १०८, आ० १२ में ९६ है।
लेकिन आ० ६ में २री पंक्ति है:—बान न पायि नैसरि नाह।

१४. आ० ९ संभाल।
१५+१६. आ० ९ आपहच करूं।
१७. आ० ९ घरतीय।
१८. आ० ९ लै।

यह छंद आ० ९ में १०९ है।
लेकिन आ० ९ में छूटी हुई ४थी पंक्ति भी है—
हिय इडले दुष न सहणोजाइ।

उवा तउ[1] सूनइ[2] मंदिरि बइठीय आइ ।
जोवता गउषि[4] चडी मुरझाइ ॥
नाह नहीं[5] देषउ[6] चिहुदिसि[7] ।
मानइ[8] विरह संतावइ कोलइ[9] अंत ॥
जोवन गाजइ जम हसइ ।
उवा तउ[10] मंइण[11] की विधि घोलइ[12] मुहि[13] कंति॥

हिवइ[14] राजा पहुतउ उडीसइ[15] जगनाथ ।
असीअ सहस[17] चउरासीया सीष[18] ॥

---

१. आ० १२ तौ ।
२. आ० १२ सूनै ।
३. आ० १२ बैठी छै ।
४. आ० १२ गौखि ।
५+६. आ० ६ न देखउं, आ० १२ न देषइ ।
७. आ० ६ चिहुँ दिसइ, आ० १२ चिहुँ दिसै ।
८. आ० १२ ( में नहीं है ) ।
९. आ० १२ कोल है ।
१०. आ० १२ ( में नहीं है ) ।
११. आ० १२ मयण ।
१२. आ० घोलै ।
१३. आ० १२ मुँह ।

यह छंद आ० ६ में ११०, आ० १२ में ६७ है ।

१४. आ० १२ हिवै ।
१५. आ० ६ उड्डीसइ, आ० १२ उड्डीसै ।
१६. आ० १२ ( में नहीं है ) ।
१७. आ० १२ असीं सयस ।
१८. आ० ६ राउकै साथि, आ० १२ सीष ।

जाइ बसावउ[१] गोइरइ[२] ।
मइ[३] फूटी अरु धुरूया रेनीसाथ ॥
रावस गुन[४] इम संचरइ[५] ।
तब मन हरख्यउ वीसल बहुभाय ॥

राजाजी भेटीउ राज प्रधान[६] ।
तुम्ह दिव रावउ[७] दुणउ[८] जी मान ॥
आधीय[९] चादरि[१०] बइसणा[११] ।
सहस सोनीया[१२] उपरि पान[१३] ॥
म्हांथी तउ[१४] अउरु[१५] चढायात[१६] ।
कहइ[१७] उडीसा का परधान ॥

---

१. आ० १२ वस्याउ वइगो ।
२. आ० १२ इशरइ ।
३. आ० १२ पथ ।
४. आ० १२ गुनि ।
५. आ० १२ संचरै ।
यह छंद आ० ६ में १११ आ० १२ में ६८ है ।
६. आ० परधान ।
७. आ० ६ तुम्हरि दिवारी,आ १२ तुम्हरि दिराबुंजी ।
८. आ० १२ दुणौ ।
९. आ० १२ आधी ।
१०. आ० १२ चामरि ।
११. आ० १२ बैसणै ।
१२. आ० १२ सौनइया ।
१३. आ० १२ मांन ।
१४. आ० १२ तुठो ।
१५. आ० १२ आचर ।
१६. आ० १२ चढाय ।
१७. आ० १२ तउक है ।
यह छंद आ० ६ में ११२, आ० १२ में ६६ है ।

मन्त्र[1] बइरागर बहु विधि जाण।
जिणि रिझाव्यो राय चहुआण॥
बात गुपति सबे[2] पीछवी[3]।
इणि तउ राणी भानमती नइ दीन्हा बइसारि॥
राणी जी साभलउ[4] वीनती।
उतउ[5] मोटउ क्षत्री कुलह सिणगार॥
उलग आपउ छइ आपणी।
उव तउ राणी राजमती भरतार॥

जाहि हो मन्त्री बार न लाउ[6]।
वेगि बोलावउ[7] बोसल राउ॥
मान महत देई[8] कोकिल्यो[9]।
मन्त्री आलसूं आ माहि आईय गंग॥
करम करापति आपणइ।
आजु दीहाडउ[10] सहीय सुचंग[11]॥

---

१. आ० १२ मंत्री।

२. आ० १२ सवि। ३. आ० १२ प्रिछवी।

४. आ० १२ सांभलो।

५. आ० १२ ( में नहीं है )।

यह छंद आ० ६ में ११३, आ० १२ में १०० है।

इस छन्द की अन्तिम पंक्ति आ० १२ में है:--

"राजमती राणी तणो भतार।"

६. आ० १२ लाइ।

७. आ० १२ बुलावो।

८. आ० १२ दे।

९. आ० १२ लाविज्यो।

१०. आ० १२ दिहाडो।

११. आ० १२ सुरंग।

यह छंद आ० ६ में ११४, आ० १२ में १०१ है।

आवीय मंत्री जिहा छइ राय।
वेग पधारउ करउ[1] पसाव॥
राणी बुलावइ थानइ रायजी।
तब हसि चडीयउ राय चऊआण[2]॥
साथि चउरासीया साम्रता[3]।
सहस किरण जाणे उगीयउ[4] भाण॥

भानमती दुवारिइ[5] आयीउ[6] राइ[7]।
राणीजी[8] मन माहे कीयउ सुभाइ[9]॥
रतन कंवल दीयउ बइसणउ[10]।
तठइ राजा बीसल करइ छइ[11] जुहार॥
राणी आसीस दइ राय जी[12]।
तउ चिरंजीविजे सं परिवारि॥

---

१. आ० ६ करीय, आ० १२ जाकरै।
२. आ० ६ तब हसि हयवर चढ़यउ चहुआण आ० १२ तब हसी नै हयवर चढ़यौ चौहाण।
३. आ० १२ सावता।
४. आ० ६ उड्यो, आ० १२ ऊगीओ।

यह छंद आ० ६ में ११५, आ० १२ में १०२ है। इस छंद की पहिली पंक्ति आ० १२ में है—"आविगो मंत्री प जिहा अछै राय।"

५. आ० १२ दुवारै।
६. आ० १२ आवीयो।
७. आ० १२ राउ।
८. आ० १२ राणी।
९. आ० १२ कियो सुभाउ।
१०. आ० १२ बैसणै।
११. आ० १२ करै।
१२. आ० १२ घौ राउजी।

यह छंद आ० ६ में ११६, आ० १२ में १०३ है। इस छंद की अन्तिम पंक्ति आ० १२ में है:—"ते चिरजीवे हो स्यउ परिवार।"

*

तठइ राणी जो पूछइ[1] गुंझ की बात।
किण विधि आवीआ कोस सइ सात॥
साविधि हमस्यु थे कहउ[2]।
म्हाचित छइ उलग की चाउ[3]।
चामरी करिस्यां राउ की[4]
इणि[5] परि बोलइ[6] वीसल राउ॥

आइ मति बात[7] कहउ मत राइ।
उलग कउ मिसि[8] कहउ था[9] काइ॥
साचउ कहउ म्हासुं तुम्हे[10]।
थांकइ नवलषी सांभरि उग्रहइ देव॥
राज था निक अजमेर माहि[11]।
राजा सो किउ करइ पराइय सेव॥

---

१. आ० ६ तठै राणी बूझइ छइ, आ० १२ तठै राणीजी बूझै।
२. आ० १२ साविधि थे हमसुं कहौ।
३. आ० १२ ताव।
४. आ० १२ रावली
५. आ० ६ इण
६. आ० ६ बोलियउ, आ० १२ बोलै।
यह छन्द आ० ६ में ११७ आ० १२ में १०४ है।
७. आ० ६ तुम्हि वात, आ० १२ आ तुम्हें वात।
८. आ० ६ उलग मिसि करो, आ० १२ उलिग कउ मिस।
९. आ० ६ थे कहउ कांइ, आ० १२ थे कगै।
१०. आ० १२ साँच कहौ हमसुं तुम्हे।
११. आ० ६ राजा थांको वैसणो गढ़ अजमेर, आ० १२ राज थानिक अजमेर महूँ।

यह छंद आ० ६ में ११८, आ० १२ में १०५ है। इस छंद की अंतिम पंक्ति आ० १२ में है:—"सो किम करै पराई सेव।"

अम्ह घरे एक छइ राजकुमार[१]।
तिणि अवकर बोलीयउ[२] अविचार ॥
तिणि बड़ा कांर ना गिणा[३]।
उणि विसिराहयउ[४] सांभर[५] देस ॥
एतलउ वचन राणी सुणउ जाम।
मंत्री वइरागर पूछियउ ताम ॥
बात कही हीआ[६] तणी[७]।
म्हे तउ भाइय करिस्या वीसलराउ ॥
छांनउ पूरबी राउ थी[८]।
जउ तुम्हि[९] मित्र[१०] करउ पसाउ ॥
दुजी ठाहर[११] ना कहउ।
तउ म्हा मन हुउ उछाह[१२] ॥

---

१. आ० १२ हम घरिछै एक राजा कुमारि।

२. आ० ६ बोलचव्या।

३. आ० ६ तिल अम्हे ओकर नविगन्या, आ० १२ तिणि अवकर म्हें नां गिणया।

४. आ० १२ विसराह्यो। ५. आ० १२ संभरउ।

यह छंद आ० ६ में ११६ आ० १२ में १०६ है। इस छंद की और दो पंक्तियां आ १२ में हैं:—

१. "सराह्यो तुम्हा सो गोरडी।"
२. "तिण म्हे उलग थीया परदेस॥"

६ + ७. आ० ६ सर्वहीया, आ० १२ हीया तणी।

८. आ० १२ छानै पुरव्या।

९. आ० ६ थे, आ० १२ जाई तुम्हे।

१०. आ० ६ मत्रो, आ० १२ मांत्र।

११. आ० १२ वाहर।

१२. आ० १२ अधिक उछाह।

यह छंद आ० ६ में १२०, आ० १२ में १०७ है।

कर जोड़ी मंत्री कहइ[1] बात।
बडीय आलोचणी[2] कीधीय मात॥
म्हा चिति भानी छइ[3] षरी।
नवलषी सांभरि कउ[4] रषवाल॥
राजा माईला[5] सारिषयउ[6]।
हिवइ तिलक देई पहिरावउ भूवाल॥

तठइ राणी जी सब कीवया रिणवास।
तिलक संजोइ नइ दीधउ जी प्रास॥
छीनउ पुरब्या राइ थी।
राणी भाई कीधउ राय चऊआण॥

---

१. आ० १२ करै।
२. आ० १२ आलौचण।
३. आ० १२ छै।
४. आ० १२ कौ।
५. आ० १२ भाएला।
६. आ० १२ सारिषौ।

यह छंद आ० ६ में नहीं है। आ० १२ में १०८ है। इस छन्द की अंतिम पंक्ति आ० १२ में है :

"तिलक देनै पहिरायो भूपाल।"

यह छंद आ० ६ में नहीं है।

डा० माता प्रसाद जी गुप्त के मतानुसार यह छंद प्रक्षिप्त ज्ञात होता है क्योंकि वे कहते हैं कि "इस प्रकार वीसलदेव का सत्कार करने पर वह "उलगाना" मात्र न रह जाता और न पीछे ब्राह्मण के कहने पर उसकी अपरिचित के रूप में खोज की आवश्यकता पडती।" दे० वीसलदेव रास परिशिष्ट पृ० २१६।

हुआ[1] उतारइ[2] राइ चहुआण।
पउलि पश्चिम तणी[3] दीयउ मेल्हाण ॥
साथि बइरागर मंत्रि छइ[4]।
बंभण भाट करइ बखाण ॥
चउरास्या सहि हरषीया।
मन[5] हरष्यउ[6] वीसल चहुआण[7] ॥

जे तलउ[8] षरच राजा तणइ[9] होइ।
भानमती राणी पूरवइ सोइ ॥
लूण कपूर सवे सहू।
नवकर[10] कापड़ा सारहू चीर ॥
चउरास्या नइ जू जू आ।
बहिणी मनि बधावइ वीर ॥
कारण करिज्यो षरच को।
तउ तत सांभरि वणो छइ म्हाकउ बीर ॥

---

१. आ० १२ हउ।
२. आ० १२ उतारउ।
३. आ० १२ पश्चिम पौलितणी।
४. आ० १२ छै।
५. आ० १२ मनि।
६. आ० १२ हरष्या।
७. आ० १२ चौहाणा।
   यह छंद आ० ६ में नहीं है। आ० १२ में १०६ है।
८. आ० १२ जेतला।
९. आ० १२ तणै।
१०. आ० ६ नवरंग।
   यह छंद आ० ६ में १२१ है। आ० १२ में इस छन्द की प्रथम पंक्ति नहीं है जो इस प्रति की छंद सख्या ११० के साथ संलग्न है।

चाल्यउ[1] उलगाणउ[2] कातिग मास।
छोड्या[3] मंदिर थरि[4] क विलास॥
छोड्या[5] चउरा[6] चउषंडो।
तठइ पंथिरि नयण गमाड्या रोइ[7]॥
भूष गई[8] त्रिस[9] उचटी[10]।
कहि[11] सषी[12] नींद किसी परि[13] होइ॥

मग सिरीय[14] दिन छोटा रे[15] होइ।
सषीय संदेस न पाठवइ[16] कोइ॥

---

१. अ० १ चालीयो, आ० १२ चाल्यो।
२. अ० २, आ० ६प्रीय तो, आ० १२ उलिगाणौ।
३. अ० २, आ० ६ सूना।
४. आ० १२ गिरि।
५. अ० २, आ० ६ सूना, आ० ६ चउड्या।
६. आ० ६ चोरां, आ० १२ चौबारा।
७. अ० २ जाई, आ० ६ जोय।
८. अ० २, आ० ६ नहीं।
९. आ० ६ तइ।
१०. अ० २ ऊछली, अ० ६ सो छूटी, आ० ६ अउचटी।
११ + १२. अ० २ उणी घडी, आ० ६ तिहां घटी।
१३. अ० २, आ० ६ नींद कहाँ थी।

यह छंद अ० २ खंड ३ में ८, आ० ६ खंड ३ में ७, आ० ६ में १२२, आ० १२ में ११० है।

इस छंद की अंतिम दो पंक्तियाँ आ० १२ में नहीं हैं।

१४. अ० २ आघणकर, आ० ६ आगैं तो, आ० १२ मगसिरीये।
१५. आ० ६ छोटडी।
१६. अ० २ मोकलोऊ, आ० ६ मोकल्यो, आ० ६ पाठव्यो, आ० १२ संदेसा हीन पठावै।

संदेसा ही वज[1] पडो[2] ।
उचा[3] परबत नीचा रे[4] घाट ॥
परदेसइ रि भुइ[5] गया[6] ।
चीरी हो नावइ[7] नवि चलइ बाट[8] ॥

दिप सषी हिव लागउ हे पोस ।
घण मरतीय कोई[9] मत दीयउ[10] होस ॥
दुष दाबी[11] पंजर हुई ।
धान[12] न भावइ[13] ना सिरि[14] न्हाण[15] ॥

---

१ + २. अ० २ बज्रजपड्यो, आ० ६ बज पडो, आ० ६ बीज पडी, आ० १२ कपडो ।

३. आ० ६ लग्रीया, अ० २ लाग्या, आ० १२ उबै ।

४. अ० २ दुर्घट, आ० ६ विसमा, आ० ६ नीचा, आ० १२ नीला लंबीया ।

५. अ० २ भूमि, आ० ६ भोमि ।

६. आ० ६ पड्या ।

७. अ० २, आ० ६ जणइ, आ० १२ नावै ।

८. आ० ६, न चालइ बाट, आ० १२, न चालै वाट ।

यह छंद अ० २ में ६, आ० ६ खंड ३ में ८, आ० ६ में १२३, आ० १२ में १११ है ।

९. अ० ६ मरतां मोहि, आ० ६ मरै तो कोइ, आ० १२ मरती कोई ।

१०. अ० २ मति ललउ, आ० ६ भिणदीयो, आ० ६ मत दियो, आ० १२ दियो ।

११. अ० २, आ० ६, दुषभीनो ।

१२. आ० ६ मो अन्न, आ० १२ मोहि अन्न ।

१३. अ० २ भावई, आ० ६ न भावि, आ० १३ भावै ।

१४ + १५ आ० ६ निसभरां, नाह, आ० १२ सिर न्हांण ।

छाहड़ी गिणइ न तावडउं ।
देषता[1] मंदिर[2] होइ[3] मसाण ॥

माह मास इसीय[4] पडय रि[5] ठंठार[6] ।
दाधी[7] हुइ वनषंड कोमी छार[8] ॥
आप[9] दहंतां जग[10] दह्यो[11] ॥
म्हारा चोलड़ी[12] माहि थी[13] दाधी[14] गात्र ॥
धणीय विहूणी[15] धण ताकिजइ ।
वेगा[16] आविज्यो[17] करह[18] पलाणि[19] ॥

---

१. अ० २ कवियक, आ० ६ किएक ।

२. अ० २ भूपड़ा, आ० ६ भूंपडी ।

३. आ० ९ हूआ, आ० १२ हुआ ।

यह छंद २ खड २ में १०, आ० ६ खंड ३ मे ९, आ० ९ में १२४ आ० १२ में ११२ है ।

लेकिन अ० २ और आ० ६ में ५ वीं पंक्ति है:—

छाहड़ी धूपनू ( आ० ६ न ) आलगई ( आ० ६ आलगै ) ।

४. अ० २, आ० ९ सिय, आ० ६ सीह, आ० १२ मासैसी ।

५+६. अ० २ पड्यो अतिसार, आ० ६ पडै अपार, आ० ९ ठंठार, आ० १२ ठंढार ।

७. आ० ९ दाधा, आ० १२ दाधा ।

८. आ० ९ धार, आ० १२ हुआ छै छार ।

९. अ० २ आ० ६ आक ।

१०+११. अ० २ बनदह्यो, आ० ६ बन दहै ।

१२. आ० ६ चोलीय, आ० ९ कांचली, आ० १२ म्हार चौलीय ।

१३+१४. आ० ६ थकी दाधा जी, आ० १२ थी दाधा छै ।

१५. अ० २ धणीय न तका, आ० ६ धणीय थका ।

१६. अ० २ वेगो ।

१७. अ० १ घर आवि ।

१८+१९. अ० २ तुरीय पलाणि ।

जीवन छत्र उमाहियउ[1] ।
म्हारी कनक[2] काया म्हारे फेरवी[3] आण[4] ॥

फागुण करहइ[5] कंपीया रुख ।
चित्रह[6] चमकीयउ निसि[7] नींद न भूख ॥
दिन रागा[8] रति[9] पालिट्या[10] ।
चिहु दिसि फिरहरया[11] वाउया वाइ[12] ॥
जिम[13] धन तिम जोवन[14] सही ।
म्हांकिउ भूरप राउ न देषै आइ ॥

---

१. अ० २ उचाईसउ, आ० ६ उपाडियो, आ० ८ उछाईयउ, आ० १२ उचाइयो ।
२. अ० २ इगिाकृत, आ० ६ कनक ।
३+४. अ० २ फेरीछइ आण आ० ६ फिर गई आण, आ० १२ मांहि पेरवीय आण ।

यह छंद अ० २ खंड ३ में ११, आ० ६ खंड ३ में १०, आ० ८ में १२५, आ० १२ में ११३ है ।

लेकिन अ० २ और आ० ६ में ४री पंक्ति है—"जलथल महीय सहू (वन आ० ६) कीया छार और आ० ६ में छठी पंक्ति है—"तुरी पल्हाणी वेगि घरि आवि ।"

आ० १२ में ३ री और ५ वीं पंक्ति नहीं है ।

५. आ० २, आ० ६ फरक्या, आ० ८ फरइ, आ० १२ फरहर्यो ।
६. आ० ८ चितिहि, आ० १२ चित्त ।
७. आ० १२ में नहीं है ।
८. आ० २ दिण परपौ, आ० ६ दिणीयर, आ० १२ दिनहराया ।
९.+१० आ० २ दिस पालटइ, आ० ६ विदिसि पालट्यो, आ० ८ दिन पालिट्या, आ० १२ रित पालट्या ।
११. आ० ८ फरहर्या ।
१२. आ० ८ वाउ. आ० १२ वाउ ।
१३. आ० १२ किम । १४. अ० २ जूहे ।

यह छंद अ० २ खंड ३ में १२, आ० ६ खंड ३ में ११, आ० ८ में

बीसलदेव रासो के छन्द इसकी अस्तव्यस्त भाषा और गणनाच्युत मात्राओं से अद्वित रहने के कारण एक समस्या अवश्य उपस्थित करते हैं लेकिन सुविधा यह भी है कि आरम्भ से इति तक प्रायः एक ही प्रकार के छन्द का प्रयोग हुआ है। इसके कतिपय छन्दों की मात्राओं की गणना करने पर इस निर्णय पर पहुँचना पड़ता है कि छन्दों के चरणों की संख्या छप्पय छन्द के अनुसार प्रायः छः चरणों की होते हुए भी मात्राएँ प्रत्येक छन्द की भिन्न-भिन्न हैं और छप्पय छन्द के लिये आवश्यक नियम का—प्रथम चार चरणों की, रोला के (२४, २४ मात्रायें ११, १३ की यति से) तथा अन्तिम दो चरणों का उल्लाला के (२८, २८ मात्रायें १५, १३ की यति से या २६, २६ मात्रायें १३, १३ की यति से)—पालन नहीं हुआ है। ये छंद, छंद-शास्त्र के नियमानुसार विषम कोटि के हैं—क्योंकि इनके प्रत्येक चरण की मात्रा असमान है और ये साधारण जाति के हैं क्योंकि प्रत्येक चरण की मात्रा ३२ से अधिक नहीं है। इस विचित्रता को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रन्थ का रचयिता छन्द-शास्त्र का पण्डित नहीं था। इसलिए बीसलदेव रासो की रचना छंद-शास्त्र की कसौटी पर खरी नहीं उतरती। यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि 'संगीत' शब्द का प्रयोग यहाँ शास्त्रीय संगीत के लिये नहीं वरन् उस 'संगीत' के लिये किया गया है। जो मानव जीवन के अन्तर्दर्शन और साथ ही उसकी रागात्मक प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति में सहायता पहुँचाता है। पशु-पक्षी तक में अनुभूति और उसकी अभिव्यक्ति की क्षमता है। आनन्द या दुःख के कारण जिस प्रकार मानव में आत्मप्रसार का भाव जागृत होता है उसी प्रकार पशु-पक्षियों में भी। वैज्ञानिकों ने तो यहाँ तक सिद्ध कर दिया है कि उद्भिद् जगत् में भी राग-द्वेषात्मक अनुभूति वर्तमान है। लेकिन जहाँ मानव ने वाणी द्वारा अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति को स्थायित्व देने की चेष्टा की है वहीं पशु-पक्षी और उद्भिद् जगत् विवश हैं। पशु-पक्षी और उद्भिद् जगत् अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति को स्थायित्व मानव की तरह भले ही न दे सकें पर इतना तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि सरिता का कलकल निनाद, अमराई में बैठे हुये पपीहे की 'पी कहाँ' 'पी कहाँ' की पुकार, नीड़ को सायंकाल लौटते हुए पक्षियों का कलरव, उषा के आगमन के साथ ही कलियों का विहसना स्थायी है और साथ ही है संगीतात्मक अर्थात् मधुर लययुक्त एवं भावात्मक।

मनुष्य ने अपनी अनुभूतियों को वाणी द्वारा संगीतात्मक रूप में अभिव्यक्त करने की चेष्टा कब से की यह कहना तो कठिन है लेकिन प्राचीन जातियों में

वइसाष[1] धुरि[2] लुणिजइ[3] धान ।
सीक्षा पाणइ[4] मह[5] पाका ओ[6] पान ॥
कनक काया घट सीचिजइ ।
म्हाकउ[7] मूरष राउ न[8] जाणइ सार ॥
हाथि लागामी तानणउ ।
उनउ[9] ऊभउ[10] सेवइ[11] राज दुवार ॥
देषि सषी हिव[12] लागउ[13] छइ[14] जेठ ।

---

यह छंद अ० २ खंड ३ में १३-१४ आ० ६ खंड ३ में १२, आ० ६ में १२७, आ० १२ में ११५ है। लेकिन अ० २ और आ० ६ में ४ और ५ के बीच की पक्ति है:—दंत फवाड्या नइ नइ रंग्या। और अ० २ में ५ और ६ के बीच निम्न पंक्तियाँ है:—

"इणी सहेली कछूइक बात ।
म्हारइ फरकइ छइ दाहिणो गात ॥"

इस छंद की तीसरी पंक्ति आ० १२ में नहीं है ।

१. आ० ६ वैसाषा, अ० १२ वैसाषै ।

२. अ० ६ सषी, आ० १२ घरि ।

३ अ० २ ल्हणुजै, आ० ६ लुणिज । आ० १२ लुणिजै ।

४. आ० १२ सीसा पाणी ।

५+६. आ० २ पाका, आ० ६ नइ पाका, आ० ६ हो पाका, आ० १२ पाका हो ।

७. अ० २ आ० ६ ( में नही है ) ।

८. आ० ६ नाह ।

६+१०. अ० पाइकइ, आ० ६ ऊभउ, आ० १२ ऊभा ।

११ आ० १२ सेविस्यैं ।

यह छंद अ० २ खंड ३ मे १५, आ० ६ खंड ३ में १३, आ० ६ में १२८, आ० १२ में ११६ है ।

१२. आ० २ आ० ६ ( में नहीं है ) आ० ६ नहिवइ ।

१३+१४. आ० ६ लागो, आ० ६ लागो, आ० ६ लागो है आ० १२ लागो ।

मुह कुमलाणा सुकि[1] गया[2] होठ ॥
मास दिवस साहण[3] तव[4] ।
घण कउ धरणि न लायए पाउ ॥
अनल[5] जलइ[6] घण[7] पर जल ।
हंस सरोवर छंडि गयउ[8] ठाउ[9] ॥

आसाढ़इ पुरि वाहुड्या[10] मेह[11] ।
षलिहल्या षाल[12] नइ[13] वहि गई षेह ॥
जइ रि[14] आसाढ़ न आवही[15] ।
माता हे भइगलजिउ पग देई ॥

---

१+२. अ० २ अरु सूकइ छइ, आ० ६ नइ सुका ।
३+४. अ० २ सषी लू बहइ, आ० ६ सारणि वहइ ।
५. अ० २ अन, आ० ६ अगनि ।
६. अ० २, अ ० ६ बलई ।
७. अ० २ दव, आ० ६ बन ।
८+६ अ० २ घाडर छइ ठाम, आ० ६ छोड्या ठाम आ० १२ तुझी गयो ठाउ ।

यह छंद अ० २ खंड ३ में १६, आ० ६ खंड ३ में १४, आ० ६ में ११६, आ० १२ में ११७ है। लेकनि अ० २ और आ० ६ में चौथी पंक्ति है:—

"बरती पावन देणो जाय ।"

तथा अ० २ में तीसरी पंक्ति है—

"सनेहा सारण बहई ।"

१०+११. अ० २ आ० ६ घडूकिया ।
१२+१३. अ० पाल्या, आ० १२ पालने ।
१४. आ० २ आ० ६ अजी ।
१५. अ० २ आ० ६ न बाहुड्यउ, आ० ६ नावीया, आ० १२ आवीयो ।

सब मत वाला[1] जैं तुलई[2] ।
तिहि कर उलग काइ करेइ[3] ॥

सावण बरसइ छइ छोडीय[4] धार ।
प्रीय विण जीविजइ किसइ[5] आधारि ॥
सह को[6] खेलइ[7] काजलो ।
तठइ[8] चीडीय[9] कमेडीय पंडिया[10] जाल ॥
बाबीहा[11] पीय पीय करइ ।
मोनइ अणप[12] लावई[13] सावण मास ॥

१. अ० २ आ० ६ सदी मतवाला।
२ अ० २ ज्यु वलई आ० ६ धुरै जिउं ।
३. अ० २ काई नेरम सतो, आ० ६ काइ करेस ।

यह छंद अ० २ खंड ३ मं १७, अ० ६ खंड ३ में १५, आ० ६ में १३० आ० १२ में ११८ है। लेकिन अ० २ और आ० ६ में उपर्युक्त छंद की ३ और ४ के बीच निम्न पंक्तियाँ और हैं:—

१. 'कोइल बोलइ छइ अंबकी डाल ।
२. मोर टहूकइ सघी डूंगरा ।"

इस छंद की पाचवीं पंक्ति आ० १२ में नहीं है ।

४. अ० २ छाडीय, आ० १२ छोटीय ।
५. अ० २ कवण, आ० १२ किसै ।
६. अ० २ सर्पायते, आ० ६ सही समाणी, आ० १२ सहुको ।
७. आ० ६ रमइ, आ० १२ षेलै ।
८. अ० २ आ० ६ ( में नहीं है )।
९. आ० ६ पंखेरूए ।
१०. अ० २ मंडिय, आ० ६ मांडो।
११. अ० २ पपीहा, आ० ६ बापहियो आ० बार्वहिया, आ० १२ वाबीहो।
१२. अ० २ असलस, आ० ६ असलास ।
१३. आ० १२ लजावै ।

यह छंद अ० २ खंड ३ में १८, आ० ६ खंड ३ में १६, आ० ६ में १३१, आ० १२ में ११६ है।

भादरवइ[1] वरसइ गुहिर गभीर।
जलथल महिअल[2] सहि भर्‌या नीर॥
जाणि कि सायर उलट्‌यउ।
निस[3] अंधारी[4] बीज[5] षिवाइ[6]॥
बादल[7] धरती स्यं[8] मिल्या[9]।
दुइ दुष[10] नल्हकं[11] सहणाजाइ॥

आसोजइ घण मंडिया आस।
धवल्या[12] मंदिर[13] घर[14] किवलास॥

---

१. आ० १२ भाद्रवै।
२. अ० २ मगेहर, आ० १२ महिअल।
३+४. अ० २ एक अंधारी, आ० ६ रैण अंधारी।
५+६. अ० २ बाच खीवाइ, आ० ६ बरसइ मेह।
७. आ० ६ सषरजो।
८. आ० ६ धरती है।
९ आ० ६ नीसर्‌या, आ० १२ ऊषिवाम।
१०. आ० ६ ए दुष।
११. आ० ६ किं, आ० १२ कुं।

यह छंद अ० २ खंड ३ में १६, आ० ६ खंड ३ में १७, आ० ६ में १३२, आ० १२ में १२० है। किन्तु अ० २ में ५ वीं पंक्ति है—

"सुनी सेज विदेश पिव।"

और आ० ६ में निम्न दो पंक्तियाँ उपर्युक्त खंड की ५वीं पंक्ति के बाद हैं:—

१. "मूरख राउ न देषइ जी आइ।
२. हूँती गोसामी नइ एकली॥"

आ० १२ में इस छंद की ५वीं पंक्ति नहीं है।

१२. आ० ६ घर।
१३. आ० ६ लीष्या।
१४. आ० ६ मांड्या।

धवल्या[1] चउरा[2] चउषंडो ।
तवघण धवल्या पउलि पगार ॥
हरिष[3] वडो हरषी फिरइ ।
अब[4] घरे[5] आविसी[6] मुधि[7] भरतार ॥

बारहमास वउलाविया नारि ।
देव मेलउ दीयउ कइ घणि मारि ॥
सूकि पाकि पंजर हुई ।
जिम भमर पुरंदर केतकी वास ॥
तिम मोरइ[8] प्रीय[9] गम कीयउ[10] ।
सेज बीसारी गोरी आतासि ॥

---

१. आ० ६ मांडा, अ० २ माड्या ।
२. आ० ६ चोरा ।
३. आ० ६ हरख ।
४. आ० १२ इब ।
५. आ० १२ घरि ।
६. आ० १२ आवसी ।
७. आ० १२ मुध ।

यह छंद अ० २ खंड ३ में २०, आ० ६ खंड ३ में १८, आ० ६ में १३३, आ० १२ में १२१ है ।

लेकिन अ० २ में ४, ५, ६, है :—४. म्हांइया सांभरिका रणिवास ।
५. एक बलावै बाहड्या ।
६. नाइ उतरि गयौ गंगा के पार ।

और आ० ६ में ४ और ६ है:— ४. दणपिर माछा जिम पलटाय ।
६. कमारा धणी राय ।

तथा आ० १२ में २री और ३री पंक्तियां नहीं हैं । ५ वीं पंक्ति है:—
"गौषि चढ़ी हरषै फिरै ।"

८. आ० १२ मारै ।
९. आ० १२ प्रिउ । १०. आ० १२ कीयो ।

ऊभी हो साधण विलविलइ ।
मइ तउ[1] दुषि वउलाविया बारह मास ॥

घुरिहि[2] सायालउ[3] उलइरिउ[4] नाह ।
रिण पइसंता घण लीयउ[5] सनाह ॥
दिन छोटा निसि आगली ।
तइ वउ आषड्या ताला दीधी ॥
चित अवरा ए[6] भोलव्यउ[7] ।
सीष ना काइ राइ न[8] दीध ॥

असी जनम कमइ दीयउ रे महेस ।
अवर जनम थाइ घण रे[9] नरेस ॥
वनिह[10] सिरजी रोझडी[11] ।
धणिहिन[12] सिरजी धवलीय[13] गाइ ॥

---

१. आ० १२ तोहु ।

यह छंद अ० २, आ० ६ तथा आ० ६ में नहीं है। आ० १२ में १२१ है। लेकिन आ० १२ में २री और ७वीं पंक्ति नहीं है।

२. आ० १२ धुरिह । ३. आ० १२ सायालो ४. आ० १२, उलह्यो ।

५. आ० १२ लउ ।

६ + ७. आ० १२ मुं भेलीयो ।

८. आ० १२ नै ।

यह छंद अ० २, आ० ६, आ० ६ में नहीं है। आ० १२ में १२२ है। लेकिन आ० १२ में ४थी पंक्ति नहीं है।

९. अ० २ घडा हो, आ० १२ घणा ।

१०. अ० २ रानइ ।

११. अ० २ हिरणली ।

१२. अ० २ सूरहन, अ० ६ सग्हान, आ० १२ वहन ।

१३. अ० २ धीणु, आ० १२ धवली ।

वनिन[1] सिरजी कोइली ।
हउ[2] बइसंती[3] आबानइ[4] दंपाकी डाल ॥
भषती दाष बिजोरडी ।
तइ तउ काइ[5] सिरजी उजगाणा की नारि ॥१२४॥

आजणी काइ न सिरजो करतार ।
पेत कमावती सं[6] भरतार[7] ॥
पहिरण आछी लोवडी ।
तुंग तुरा[8] जिम मोडती गात्र ॥
साइ लेती सामुडी ।
हसि हसि बूझति पोइ[9] की बात ॥१२५॥

---

१. आ० १२ वनहन ।
२. आ० १२ घ्यूं ।
३. आ० १२ वैसती ।
४. आ० १२ आंबानैं ।
५. आ० १२ तौकिउ ।

यह छंद अ० २ खंड ३ में ४, आ० ६ खंड ३ में ५, आ० ८ में नहीं है, आ० १२ में १२३ है ।

६+७. अ० २ जाट ज्युं, आ० १२ स्युं भरतार ।
८. अ० १२ तुरिय । ९. आ० १२ पीउ ।

यह छंद अ० २ खंड ३ में ३२।२ है, आ० ६, आ० ८ में नहीं है । आ० १२ में १२४ है ।

अ०२ में ये सात पंक्तियाँ हैं:—१. भूली है बइठनडी इणै बीसास ।
२. हूं नीव जाणू औलगि जास ॥
३ बरजती आय रखावती ब्याह ।
४. अंकन कुंआरि रहती सषी ॥
५. ओठण लोवडी काटती भाड ।
६. यह पंक्ति उपर्युक्त छंद की २री पंक्ति है ।
७. माई कांइ सिरजी उलिगाणा घरि नारि ।

एक उलगाणउ ऊलग जाइ।
इक विणजारउ विणज[1] कराइ॥
एक आहेडीय वन भमइ[2]।
म्हाका नान्हडा[3] नाह की सगुणी है[4] नारि॥
म्हा घरि छोडि विदेस गउ।
वेउ[5] म्हा[6] जोडीय न[7] सिरजीय कोइ करतार[8]॥
आठ पहर उचाट माहि।
तिण दुषि धण पंजर[9] हुई॥१२६॥

असीय बरस की वुढइ[10] वेसि।
देत पडया[11] सिर पांडुरा केस॥
आइ आवासइ संचरी।
गति[12] लागइ अरु[13] रूदन करेति[14]॥

---

१. आ० १२ एक वणजारी वणज।
२. आ० १२ भमै।
३. आ० १२ नान्ह।
४. आ० १२ सुगुणीय।
५. आ० १२ ( में नहीं है )।
६. आ० १२ म्हानै।
७. आ० १२ जोडिनइ।
८. आ० १२ ( में नहीं है )।
९. आ० १२ में 'पंजर' के पहले 'झुरि' है।
यह छंद अ० २, आ० ६ आ० ६, में नहीं है। आ० १२ में १२५ है। लेकिन ५वीं और ७वीं पंक्ति इसमें भी नहीं है।
१०. अ० २ हो बूढि, आ० ६ बूढी।
११. आ० ६ शरा।
१२. अ० २ गलइ।
१३. अ० २ नै,
१४. अ० २ कराई, आ० ६ कहाय।

किम दिन काढइ भाणिजी।
राति दिवस मोनइ[1] धारीय चींत॥
जेतइ आवइ सांभर घणी[2]।
तेतइ चंचल पाठव करउ थे मीत॥१३७॥

वात न मानीय[3] चालीछइ[4] उठि।
पाटलस ले[5] मचकाइयउ[6] पूठि॥
दात[7] पाडु[8] दाही[9] कुटिणी।
हउ तउ कोकउ[10] देवर अरु[11] वडउ[12] जेठ॥
गाल फाड़ावउ थारा गलसमी।
काढै[13] नाक[14] सरीसा[15] होठ॥१३८॥

---

१. आ० २ मो, आ० ६ मेरे।
२. अ० जइ करउ,
यह छंद अ० २ खंड ३ में २१, आ० ६ खंड २ में १६, आ० ६ में नहीं है। आ० १२ में नहीं है।
लेकिन अ० और आ० ६ में ५वीं, ७वीं तथा ८वीं पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—
५. किम भत्र नं गमनि कामिणी ( आ० ६ लोइोडकी )।
६. कह्यउ हमारउ जे करइ ( आ० ६ मुणइ )।
७. तोहि नइ कइ ( आ० ६ तोहिनीको ) सो पटत्रो ( आ० ६ सोपां· डीयो )। वरि देउ ( आ० ६ करिदीयउ ) मीत।
३. आ० ६ एतो कही नै, अ० २ इनो कहे जब। ४. आ० १२ चालीय।
५. अ० २ ले पाटो अरि, आ० ६ दोय पाटा सुं, आ० १२ लेपाटो।
६ अ० २ पटकी छइ, आ० ६ माइगी, आ० १२ मचकाइय।
७+८. अ० २ नाक पाट फडाउं।
९. अ० २ हूँ, आ० ६ ( मे नहीं है )।
१०. अ० २ तेतू, आ० ६ तेडो, आ० १० कोकुं।
११+१२. अ० २ आरी, वडो, आ० १२ अरु वडो।
१३. अ० २ ऊपलो, आ० ६ उपलै, आ० १२ काढ़ं।
१४+१५. आ० ६ ता क सरीसा।

चमकती चालती मचकइ[1] मोडि ।
वात करंता[2] सषी मानही षोडि ॥
सीलवंता सषी सारिषी ।
बोलइ छइ[3] एह बउ[4] जिसउ[5] मीठ[6] ॥
नाल्ह कइ सइ कोसुगउ ।
तुम्ह हम तिरिय न रत्ति तलइ दीठ ॥१२९॥

हेमकी कूपीली[7] मइण की मूद ।
साधण उभीछइ[8] मत्त गयंद ॥
चउबारा की चउपंडी ।
तठइ पवन[9] न रातइ न तपइ सूरि ॥

---

यह छंद अ० २ खंड ३ में २३, आ० ६ खंड ३ मे २१, आ० ६ में नहीं है । आ० १२ में १२६ है ।
लेकिन इसकी ६वीं पंक्ति अ० २ और आ० ६ में इस प्रकार है :—
"कटुं जीभ जिण बोलियउ ।"
कसूं (आ० ६) ।

आ० १२ में २री पंक्ति नहीं है ।

१. आ० १२ मचरकै ।
२. आ० १२ कहितां ।
३. आ० १२ बोलैछै ।
४. आ० १२ जेहवउ ।
५. आ० १२ वचन ।
६. आ० १२ सुमीठ ।

यह छंद अ० २, आ० ६ और आ० ६ में नहीं है । आ० १२ में १२७ है ।
लेकिन पंक्ति २, ५ और ६ नहीं है ।

७. अ० २ कुंपी, आ० ६ कूंपी गाजा ।
८. अ० २ समरई जिम, आ० ६ समंगरि ।
९. आ० २ बाव, आ० ६ बाय ।

बादळ छायड[1] चंद जे[2]।
उघिरउ गात ऊघाडउ तिलक संदूर ॥१४०॥

एहासू कहइ बहु घरि माहे[3] आइ[4]।
चंदरह[5] भोलइ गिलेसी राइ ॥
चंद पुलिंदा[6] बनि[7] गयउ।
दूध किम छबरइ वंजारि कइ फेरि ॥
उलगाणा की गोरडो।
थारउ नाइ[8] उडीसइ घण[9] गढ अजमेर ॥१४१॥

---

१. आ० ६ छायो।
२. आ० २, आ० ६ चन्द्रमा।
यह छंद आ० २ खंड ३ में ५३, आ० ६ खंड ३ में ५० है। आ० ६, आ० १२ में नहीं है।
लेकिन इसकी अंतिम पंक्ति आ० २ और आ० ६ में है—
"ओकी गात (आ० ६ उनाका) उघाड्या ( आ० ६ पट माहैं ) जोबनपूर।"
३. आ० ६ भीतर।
४. आ० २ आव, आ० १२ आव।
५. आ० ६ चांद कइ, आ० १२ चंद कै।
६ + ७. आ० ६ पूलंतो बनी, आ० १२ पुलिंदा बनि।
८. आ० २ राव, आ० ६ राय।
९. आ० २ तु, आ० ६ मैनूं
यह छंद आ० २ खंड ३ मे ५४, आ० ६ खंड ३ मे २२, आ० १३ में ५८ है। लेकिन आ० २ और आ० ६ में चौथी और पाँचवी पंक्तियाँ हैं—
४. खीर (खाना-आ० ६) की तोलड़ी (पकुड़ी आ०६) कुं (किहो-आ० ६) रहई सेर।
५. घणी थाका घण ताकजइ।
आ० १२ मे चौथी पंक्ति है:-
"दूध न छुटै मंजारह फेरि।"

गोरडी बइठी छइ[1] बंभण क जाइ ।
करि जोडी थारइ लागूँ जी पाइ ॥
राजमती करइ वीनती ।
पांइया कहिज्यो[2] घण का नाह[3] नइ[4] जाइ ॥
आगुलीया को मूंदड़ो ।
ढलि करि[5] आवइ हो[6] घणकीय[7] बांह ॥१४२॥

पाड्या ए दुष[8] म्हारा[9] जाणिस्यइ[10] कुण ।
म्हेत[11] पलिंग[12] तिज्यो[13] अनंइ परहरयउ[14] लूंण[15] ॥
पान[16] सोपारीय विस[17] बहुडइ[18] ।
ले जपमालिय[19] मंत्र जपउ[20] नाह[21] ॥

---

१. आ० १२ बैठी ।
२. आ० १२ कहे ।
३. आ० १२ घण नाह ।
४. आ० १२ नै ।
५. अ० २ और आ० ६ ( में नहीं है ) आ० १२ ढलकि ।
६. अ० २, आ० ६ आवण लागो, आ० १२ आवै ।
७. आ० १२ राजा धणकीय ।

यह छंद अ० २ खड ३ में २६, आ० ६ खड ३ में २७, आ० १२ में १२६ है । लेकिन अ० २ और आ० ६ में केवल अन्तिम दो पंक्तियाँ है ।

८+९ अ० २ जे दुष नाल्ह, आ० ६ ए दुषनाल्ह ।
१०. अ० २ कहइगो, आ० ६ कहे से, आ० १२ जाणिस्यै ।
११+१२+१३. अ० २, आ०६ परिहरयौ पलग, आ०१२ म्हेतउ पलिंग तज्यौ ।
१४. अ० २ त्रीयतज्यो आ० ६ अरतज्यो, आ० ६ अरतज्यो आ० १२ नइ परिहर्‍यो ।
१५. अ० २ न्हाण ।
१६. अ० २ काथ, आ० ६ काथो ।
१७+१८. अ० २ ते विष बडौ, आ० ६ विश वाउ, आ० १२ विस हुआ ।
१९. अ० २ करि जपमाला, आ० ६ कर जपमाली ।
२०+२१. अ० २, आ० ६ अर जपइ नाह ।

दिन[1] गिणंता नह[2] घस्या[3] ।
म्हारी[4] काग उडावता थाकीय[5] बाह ॥१४३॥

पंड्या जइ तूं चालउ[6] पीव कइ देसि ।
हउं रि कहउँ स्वामी[7] तिउ रि कहेसि[8] ॥
एक वारा[9] घरे[10] आविज्यो ।
थारी वाट बुहारी सिर का केसि[11] ॥
जोवन भरि जल उछट्यउ[12] ।
थाग न पावै[13] धरह नरेस[14] ॥१४४॥

---

१. अ० २ आंगुली, आ० १२ दिन दिन ।
२. अ० २ दिन, आ० ६ म्हारा नह ।
३. अ० २, आ० ६ गया ।
४ अ० २, आ० ६ (में नहीं है) ।
५. अ० २ दूखइ छइ, आ० ६ दूषि ।

यह छंद अ० २ खंड ३ में ३३, आ० ६ खंड ३ में ३०, आ० १२ में १३० है । लेकिन आ० १२ में चौथी पंक्ति नहीं है ।

६. अ० २ पाड़यो चाल्यो ओका, आ० ६ पाडीया चालिया, आ० १२ पाड्या चालिवु ।
७. अ० २ हूँ कहूँ बीरा ।
८. अ० २ सोई कहे-, आ० ६ असूं कहेस ।
९. अ० २ सारां ।
१०. अ० २ घरि, अ० १२ घरि ।
११. अ० २ केस आ० ६ सिरहै के केस, आ० १२ सिरह कै केस ।
१२. अ० २ भरह महाजल ऊलटई. आ० ६ भर्यो महा जलहि, आ० १२ थागन पावउं ।
१३. अ० २ थाग न पावइ, आ०६ थांगन पायुं, आ०१२ थागन पावउं ।
१४. अ० २ मुंध नरेश, आ० १२ धरा नरेस ।

यह छंद अ० २ खण्ड ३ में ३०, आ० ६ खंड ३ में २८, अ० १२ में १३१ है । लेकिन अ० १२ में दूसरी पंक्ति नहीं है ।

पंडिया जाइ कहे[1] धण का नाह सं[2]।
तइ मोनइ दीन्ही[3] थी जीमणी बाह ॥
चंद सूरिज दुइ साखीया[4]।
पवन पाणी अरु[5] धरती आकासि[6] ॥
धूप जगयउ थउ बंभणा[7]।
हउ तउ मूर्वी हो[8]स्वामी तणइ वेसासि[9] ॥१४५॥

साई[10] सांकल जड़गा कइ जड़या जंजीर।
कइ तुम्ही पहुँता समुंद कइ तीरि ॥
कइ कहो कामणी भोलवउ[11]।
एक रिसउ[12] स्वामी घरह संभालि ॥
धण थलि[13] पंगुल[14] हुई रही।
कुमिलाणो जिम चंपा[15] डाल ॥१४६॥

---

१. अ० २ जोसी कहइ वीरा, आ० ६ पांडीत कहे।
२. अ० २ भन की नाह।
३. अ० २ तोयो दीई थी, आ० ६ ति मोहि दीधा।
४. अ० २ चन्द सूरिज दुइ दीया साख।
५. अ० २ पाणी पवन अरि, आ० ६ पाणी पवन नै।
६. अ० २ धूर अकासि, आ० ६ धूर अकाश।
७. अ० २ दोव पुजाई थी बांभणौ, आ० ६ द्रव्य पुजाव्यो बाभणौ।
८+६. अ० २ मूसी हे नण दल हुइणी विसास, आ० ६ मूसी हौं नण दल एणी वेशतां।

यह छुद अ० २ खंड ३ में ३१, आ० ६ खंड ३ में २६ है। तथा अ० २ में पंक्ति तीन और चार परस्पर स्थानांतरित हैं एवं पाँचवीं और छठी के बीच अतिरिक्त निम्न पंक्ति है:—

"हूँ नवि जाणुं मईम करै।"

१०. आ० १२ स्वामी। ११. आ० १२ भोलव्या।
१२. आ० १२ रसो। १३. आ० १२ थलि।
१४. आ० १२ पंजरि। १५. आ० १२ चंपैकी।

बाले[1] हो घणीय तुम्हारड[2] जांघ ।
कठिन पयोहर तिजयउ[3] पराण ॥
बालयउ[4] जोवन खिसि गयउ[5] ।
जोवन सिर बाधीया नेत[6] ॥
जिण बांध्या रावण खिस्यंउ ।
त्रीय कारणि रामि[7] बंध्यउ सिर सेत[8] ॥१४७॥

---

यह छंद अ० २, आ० ६, आ० ६ में नहीं है । आ० १२ में १३२ है ।

१. अ० १२ बालुं ।
२. आ० तुम्हारी ।
३. आ० १२ तज्या ।
४. आ० १२ बालउ ।
५. आ० १२ गयो ।
६. आ० १२ नेत्र ।
७. अ० २ अस्त्री गेली राम, आ० ६ अस्त्री लगि राम, आ० १२ त्रिया कारणि रामि ।
८. आ० १२ वध्यो सरास ।

यह छंद अ० २ खंड ३ में ५१, आ० ६ खंड ३ में ४८ है, आ० ६ ( में नहीं है ) । आ० १२ में १३३ है । लेकिन अ० २ और आ० ६ में इसकी प्रथम ५ पंक्तियाँ इस प्रकार है :—

१. बेगि ( दयाकरि-आ० ६ ) मया करि तूं घर चालि ।
२. कठिण पयोहर छांड छइ ( छोडीया-आ० ६ ) ठामि ( वाम-आ० ६ ) ।
३. सिषर ते ( जइ-आ० ६ ) भरती रहइ ( हे—आ० ६ ) नीम्या ( नम्या—आ० ६ ) ।
४. अंचला असूर असती ( तेउसमा—आ० ६) (अचेत—आ० ६) ।
५. एक सरो धार आवजू (आविज्यो—आ० ६) ।

आ० १२ में ५वीं पंक्ति नहीं है । लेकिन एक पंक्ति और है:—

"नाकसउ पहिली पंचासथी ।"

बाल हो[1] स्वामी थारउ[2] जांण ।
दुह[3] काया मिलउ[4] एक पराण ॥
सा किम दूरइ छाडि जइ ।
कुल[5] की[6] बेटी[7] सील[8] जजीर ॥
जोवन राषयउ मइ चोर जउ ।
पगि पगि वोहि[9] पहूचिज्यो[10] पाप ॥
दूणि भवि उलगाणयउ हुइ[11] ।
अवर भवि[12] होज्यो[13] कालउ साप ॥१४८॥

पंड्या कहिजे[14] राजा गहिल गुमार[15] ।
जाता कल[16] की नल दइ सार[17] ॥

---

१. अ० २, आ० ६ (में नहीं है), आ० १२ बालुहो ।
२. अ० २ थारोऊ, आ० १२ घणी तुम्हारो ।
३. अ० २ दुई, आ० ६ दोय ।
४. अ० २ कामिलया छै, आ० ६ काया मिले, आ० १२ काया मिलि ।
५+६+७-अ० २ कूलह की बेडी, आ० ६ कुलकी बेड़ी, आ० १२ कुलकी छोडि ।
८. अ० २ सोयलं, आ० ६ सयल, आ० १२ सालउ ।
९. अ० २ आ० ६ स्वामी, आ० १२ तोहि ।
१०. अ० लागुहु, आ० ६ तोलोगे, आ० १२ पुहचिज्ये ।
११. आ० ६ हूयो ।
१२. अ० २ आवतइ भवि, आ० ६ आवतडे, आ० १२ भवे ।
१३. अ० २ होइ, आ० ६ भव, आ० १२ हूज्यो ।

यह छंद अ० २ खंड ३ में ५८, आ० ६ खंड ३ में ४६, आ० १२ में १३४ है । लेकिन अ० २ और आ० ६ मे इसकी २री पंक्ति है-

"जि क्युं ही ( अ० २-जे किम ) बाछै ( यछै-अ० २ ) दूर ( दूरो-अ० २ ) थी (थ-अ० २) ।

१४. आ० १२ पंडिया कहे ।
१५. आ० १२ गल्हिल गमार ।
१६. आ० १२ जीवतां कलि ।
१७. आ० १२ नालहीसार ।

राय अंतउर छोडिगउ ।
जब विहूणा किम माछ[1] पटाइ[2] ॥
धणी विहूणी धण ताकिजइ ।
वहगा आविज्यो जोवन[3] जाय[4] ॥१४९॥

पंड्या तिम[5] कहेज्यो जिम[6] प्रीय निरीसाइ ।
साधण तुझ विण अन्न न पाइ ॥
कुणाही[7] फाटउ कंचूवउ ।
सीस[8] फाटहु अछइ दक्षण तीर ॥
दव दाधी जिम[9] लाकडी ।
वहगा आविज्यो नणद का वीर ॥१५०॥

कहिन गोरी थारा प्रीय[10] अहिनाण[11] ।
थोड २ मोनइ[12] कहि नइ सहिनाण ॥

---

१ + २. आ० १२ जीवै माछ ।
३ + ४. आ० १२ करइ पलाणि ।

यह छद अ० २, आ० ६, आ० ६ मे नहीं है । आ० १२ में १३५ है । लेकिन आ० १२ में ३री पंक्ति नहीं है ।

५. अ० २, आ० ६ तिणी परि बोलज्यो ।
६. अ० २, आ० ६ बोलज्यो ।
७. अ० २ कूहणी ।
८. आ० ६ षोपर ।
९. अ० २, आ० ६ जाणे ।

यह छंद अ० २ खंड ३ में २९, आ० ६ खंड ३ में २७ है । लेकिन इस छंद की १, ३ और ४ पंक्तियाँ ही अ० २ और आ० ६ में हैं ।

१०. अ० २ प्रीव का, आ० ६ प्रीउ, आ० १२ प्रिउ ।
११. अ० २ सुहिनांण ।
१२. आ० १२ मोहि ।

किण[1] उणहारा[2] सारिखउ[3] ।
म्हारा लहुडा देवर कइ अणुहार ॥
इन्ह गोरो पीयड सावलउ ।
उचउ जोडो[4] कडि जमडाढ ॥
उरि जाडउ कडि पातलउ ।
द्वादस तिलक करइ[5] नवइ[6] विहाण ॥
लाषा[7] माहि[8] पिछाणिज्इ[9] ।
पंडिया म्हारा[10] प्रीतण[11] एंहा[12] सहिनाण[13] ॥१५१॥

---

१. आ० ६ कुण, आ० १२ किसि ।
२. आ० ६ अणुहार, आ० १२ उणिहारा ।
३. अ० २ कीण सारिखो, आ० ६ कुण सारिखो ।
४. अ० २ ऊँचउ गोलउ, आ० ६ ऊँचो गोरा ।
५+६ अ० २ उगतइ, आ० ६ करिउठाइ, आ० १२ करै नवइ ।
७+८+९. आ० ६ लाष मील्यामांहि लप लहइ ।
१०+११. अ० २ म्हा का प्रीवछइ, आ० ६ प्रोउ म्हारो, आ० १२ म्हारा त्रिउका ।
१२+१३. अ० २ इणतो सहिनाण, आ० ६ एण सहिनाण, आ० १२ ए सहिनाण ।

यह छंद अ० २ खंड ३ में ३५, आ० ६ खंड ३ में ३२, आ० १२ में १३६ है । लेकिन अ० २ और आ० ६ में ४थी पंक्ति का पाठ है :—

'जाणी आहनाणह लेह पीछाणि ।" तथा इन दोनों प्रतियों के बीच में दो पंक्तियाँ और हैं:—

"पाय लषांणा मो चणी ( आ० ६—मोजडी ) ।
मूछ ( मोटा-आ० ६ ) कारवाण छै डावइ हाथि ॥

आ० १२ में ६ठी पंक्ति नहीं है । तथा ६वीं पंक्ति के बदले में है—

"राजा चडीयो हय नव लपै ।"

पंड्या[1] प्रीतम[2] एह[3] सहिनाण ।
लाल वागउ अरु लाख कमाण[4] ॥
सोरठी झलकय काष माहि[5] ।
मोटा चउरासीया राउकइ ठाणि ॥
रतन जड़ित पग मोजड़ी[6] ।
पंडिया प्रीय का एसा हुनाण ॥१५२॥

बलि कहि[7] गोरी[8] थारा पीउ अहिनाण[9] ।
थोड़ा थोड़ा मांडि दे सहिनाण ॥
कउण उणहारइ[10] सारिखउ ।
दाढ़ीय राजा की भमर भमांहि ॥
मस्तक माहै छइ[11] केवडउ ।
उणरइ मांहिलइ कोइय जीभरमी जी आपि ॥
कालउ तिलउ छइ भमर संउ ।
कड्या तरकस साज हउ कुरवाण ॥१५३॥

---

१. आ० १२ पंडिया ।
२. आ० १२ प्रिउतणा ।
३. आ० १२ एहा ।
४. आ० १२ कवाण ।
५. आ० १२ दै ।
६. आ० १२ मोचड़ी ।

यह छंद अ० २, आ० ६, आ० ८ में नहीं है। आ० १२ में १३७ है ।

७. आ० १२ आल कहौ ।
८. आ० १२ री ।
९. आ० १२ प्रिउसहिनाण ।
१०. आ० १२ कउणणिहारा ।
११. आ० १२ छ ।

तेजी चढइ राजा नव लषइ ।
पंडूया प्रीड का ए सहिनाण ॥
वाहुडी गोरडी[1] तु घरे जाइ ।
लेकरि[2] आव हे[3] थारउ नाह ॥
सउण[4] त[5] वीध्या[6] गाठडो ।
सात सोपारीअ दीन्ही छइ छोडि ॥
बोलउ[7] सो[8] निरवाहिज्यो[9] ।
पाइ पडइ[10] धण बे करि जोडि ॥१५४॥

---

यह छंद अ० २ खंड ३ में ३५ ( अंशतः ), आ० ६ खंड २ में ३२ ( अंशतः ) है। इन दोनो प्रतियो में संपादित प्रति की छंद संख्या १५१ ही है। अर्थात् संपादित प्रति की १५१ और १५३ मिलाकर एक ही छंद संख्या उपर्युक्त दोनों प्रतियों मे है। १५३ की १, २, ३, ६ और ७ पंक्तियाँ भी अ० २ और आ० ६ में एक ही छंद में हैं। आ० १२ में यह छंद १३८ है। लेकिन आ० १२ में २री, ६ठी, ७वीं, तथा ८वीं पंक्तियाँ नहीं हैं। ९वीं पंक्ति के बदले है—

"राजाजी चढ़ीयो हय नवलषै।

१. अ० २, आ० ६ गोरी, आ० १२ गोरी।
२. अ० २, आ० ६, हूं लेइ।
३. आ० ६ आविश, आ० १२ आवु।
४. अ० १ सोनातो, आ० ६ सुंणज्यो, आ० १२ सउण ले।
६. अ० २ बांध्यौ, आ० ६ बांध्या, आ० १२ वंध्यो।
७+८ अ० २ ज्यूं बोलइ, आ० ६ जो बोलो, आ० १२ बोल्युं सो।
९. अ० २, आ० ६ ने निरवाहिज्यो।
१०. आ० १२, पडै।

यह छंद अ० २ खंड ३ में ३७, आ० ६ खण्ड ३ में ३५, आ० १२ में १३९ है।

अ० २ और आ० ६ में इसकी ४थी पंक्ति है—

"दीधी सोपारी दोयकर च्यार।"

कागळ ठाहर घण धरइ[1] चीर।
मम[2] ठाइर करइ नयण थी नीर॥
लेषणि ठाहर नह कर्या।
अषर ठाहर[3] मुषि[4] भरइ तंबोल॥
खेत पटोळीय लिपि दीयउ।
मिलि वहवाडा[5] करइ कल्लोल॥१५५॥

काती मासा साजण चलाइ[6]।
घाणा[7] अक्षर[8] गुरति लीषी[9]॥
आप हस्ते[10] लिखा[11] गोरडी।
जिउ-जिउ बाचइ तिम-तिम हुवइ हित॥

---

तथा अ० २ में छठी पंक्ति है —

"वचन तुम्हार लागीछइ नारि।"

आ० ६ में छठी पंक्ति नहीं है।

१. आ० १२ करै।
२. आ० १२ मासि।
३. आ० १२ अरता हरै।
४. आ० १२ मुइ।
५. आ० १२ वडवाहा।

यह छंद अ० २, आ० ६, आ० ८ में नहीं है। आ० १२ में १४० है।

६. आ० ६ पठाइ।
७. अ० २, आ० ६ कोरो, आ० १२ छांना।
८. अ० २, आ० ६ कागल।
९. आ० १२ गतलिषाइ।
१०. अ० २ हस्त, आ० ६ हसि।
११. अ० २ लिषे, आ० ६ लो, आ० १२ लिष्यो।

घणीय[1] उमाहो[2] लागिए[3] ।
राजा[4] करसे[5] घर[6] कीय चीत[7] ॥१५६॥

वाट वटाउ घण का[8] वीर ।
तुम्हे ऊतरि जावउ[9] समुद कइ तीरि ॥
सावण हुई छइ जातरी ।
लाज छोडो[10] तुम्हे अरु कहय तुम्हे बात[11] ॥
उलगाणा संभ्रम[12] कहे ।
थारी मुध ऊमाहो[13] ऊलहस्या[14] गात[15] ॥१५७ ।

---

१ + २. अ० २ घणा उपाहो, आ० ६ जण कोई माहिं, आ० १२ घणी उमाहो ।

३. अ० २ उलगइ, आ० १२ लागिस्यै ।

४. अ० २ राव, आ० ६ राय, आ० १२ राजा नी ।

५. अ० २ चलावौ, आ० ६ चलायो, आ० १२ करिसी ।

६. अ० २ घरा, आ० ६ घर, आ० १२ घरि ।

७. अ० २ आ० ६ अचेत, आ० १२ चीन ।

यह छंद अ० २ खंड ३ में २७, आ० ६ खण्ड ३ में २५, आ० १२ मे १४१ है । लेकिन आ० १२ में १ली पंक्ति है :-

"काती मासहि जाइ चलाइ ।"

और ४ थी पंक्ति है:—"जिम जिम चालिस्यै तिउं होइसी हेत ॥"

८, आ० १२ घणी के ।

९. आ० १२ जाहु ।

१०. आ० १२ लाजाछांडी ।

११. आ० १२ तुम्ह कहुँ वात ।

१२. आ० १२ उलगाणो सुईम ।

१३. आ० १२ उमाहिउ ।

१४. आ० १२ उलस्या ।

१५. आ० १२ गात्र ।

यह छंद अ० २, आ० ६, आ० ६ में नहीं है । आ० १२ में १४२ है ।

चीरी जिनेउय[1] दीन्हा छइ[2] साठि[3] ।
सइस[4] सोनई बाध्या छइ[5] गाठि[6] ॥
बरसि दीहाडाकउ सांबलउ ।
पंड्या चोयचखड जीमिजो[7] जिम हुवइ[8] भाख ॥
पहिरिज्यो[9] सांबरी पांखड़ी ।
चिहुँघडीया समा करिज्यो[10] मेल्हाण[11] ॥१५८॥

चीरी दीन्हा गोरी पंड्या कइ हाथि ।
स्वामी थे[12] चालिज्यो जोवण साल[13] ॥
सात सइ कोस कउ गाभंतरउ ।
पांड्या रूड़ा[14] चालिज्यो देस की सीम[15] ॥

---

१. अ० २, आ० ६ जनोइयकी, आ० १२ जोई ।
२. अ० २, दीघी, आ० १२ दीन्ही ।
३. अ० २, आ० ६ गाठि, आ० १२ सुगंठि ।
४. अ० २ गिणि, आ० ६ गणिकरि ।
५. आ० ६ बंधीया, आ० १२ वावंध्या ।
६, अ० २, आ० ६ सांठि, आ० १२ गंठि ।
७. अ० २, खाज्यो, आ० ६ षाय, आ० १२ जिमिज्यो ।
८. आ० ६ होए, आ० १२ पग हुवै ।
९. अ० २, आ० ६ पाये ।
१०+११ अ० २, देई मिलाण, आ० ६ दीए मे ल्हाण ।

यह छंद अ० २ खंड ३ में ३४, आ० ६ खंड ३ में ३१, आ० १२ में १४३ है। आ० १२ में ३ री पंक्ति है:—

"वरस दीहा को संबलौ ।"

१२. आ० ६ जणह ।
१३. अ० २ चलायो हेड़ाऊ कय, आ० १२ नइ साथ ।
१४. आ० १२ रूड्या ।
१५. आ० १२ सीव ।

तावडउ[1] गिणे न छाहडी ।
चीरीय[2] राषिज्यो जिम घणा कयउ जीव ॥१५९॥

पांड्या सुणि बोलइ जजमानि[3] ।
स्यां[4] घरि ऊग्रहइ[5] हीरा की षाणि ॥
म्हे कही सोचिति आषिज्यो ।
थे वाट माहे[6] चालिज्यो रूडइ साथि[7] ॥
राजकुमरि रावति[8] घणा ।
म्हारी चीरीय देज्यो राउ कइ हाथि[9] ॥१६०॥

कोस पयाणा[10] दूरे पंडीयउ[11] जाइ ।
सात अंगा कहि[12] वइ ठउ[13] षाइ ॥

---

१. आ० १२ तावड ।
२. आ० १२ चीरी ।

यह छंद अ० २ खंड ३ में २६, आ० ६ खंड ३ में २७, आ० १२ में १४४ है । लेकिन अ० २ में इस छंद की १, २, ३ पंक्तियाँ ही हैं तथा आ० ६ में १, ३ हैं, २ नहीं है । आ० ६ की और अ० २ की शेष पंक्तियाँ संपादित छंदों की १३७ और १४८ में हैं ।

३. आ० १२ वोलै जजमनि ।
४. आ० १२ थां ।
५. आ० १२ उग्रहै ।
६. आ० १२ मांहि ।
७. आ० १२ नीकै साथ ।
८. आ० १२ रावल ।
९. आ० १२ राव कै हाथि ।

यह छंद अ० २, आ० ६, आ० ९ में नहीं है । आ० १२ में १४५ है ।

१०. आ० ६ पीयाणो, आ० १२ रे पयांणो ।
११. आ० १२ रे पंडियो ।
१२. आ० ६ करी, आ० १२ कडि ।
१३. अ० २, आ० ६ बैठो हो, आ० १२ बैठो ।

हलवइ हलवइ[1] पग ठवइ[2] ।
चालता गोरी दीन्हा थी[3] सीष[4] ।।
ते सवि[5] पाड्या नइ[6] वीसरी[7] ।
चालवा[8] लागउ[9] छोटीय[10] बीष ।।६११।।

सातभइ मालि पहुतलउ[11] जाइ ।
जठइ[12] मानिजइ बलद नइ[13] हलवहइ[14] गाइ ।।
माडी पीवइ कण राखिजइ[15] ।
तुठइ[16] लाज विहुणी वाजइ घंटि[17] ।।
इसी सकत छइ[18] देव की[19] ।
चोर जाहर नहीं तेहनी[20] वांइ[21] ।।१६२।।

---

१. अ० २ सूनो चालै, आ० ६ सांसतो चालइ, आ० १२ हेलवै हेलवै
२. आ० १२ भरै ।
३. अ० २ कह्या हो, आ० ६ कहै ।
४. अ० २ आ० ६ संदेस । ५. अ० २, आ० ६ तै ।
६. अ० २, आ० ६ संघनो ।
७. अ० २, आ० ६ बीसग गयौ ।
८+६+१०+आ० १२ चालिवा लागो छोटडी ।
यह छंद अ० २ खंड ३ में ३६, आ० ६ खंड ३ में ३६, आ० १२ में १४६ है ।
११. अ० २, आ० ६ पहूंतउ हो, आ० १२ पहुतौ ।
१२. अ० २ ते, आ० ६ तिहां, आ० १२ ऊठै ।
१३. आ० १२ अरू ।
१४. आ० १२ हलवै है ।
१५. अ० २, आ० ६ रालिजै, आ० १२ रालिजै ।
१६. अ० २, आ० ६ ( में नहीं है ) आ० १२ उठै ।
१७. अ० २ घंट आ० १२ घंट ।
१८. अ० २ तिहाँ देवकी, आ० १२ सकति अछै ।
१६. अ० २ नही देवकइ, आ० ६ न देवकी ।
२०+२१ अ० २ पंथ ।

पंडियउ पहुनउ सातमइ मासि ।
देवकइ थानक[1] अरु[2] करी[3] दासि[4] ।।
तपीय[5] सन्यासीय[6] तप करइ[7] ।
उसाकी[8] कनक काया रतनालीय[9] आषि ॥
महिमा अधिकी देवकी ।
धन्न धन्न देवन्ह ही[10] जगनाथ ॥
पूज चहोडइ पंडियउ ।
चंदन चरिच अरु जोडइ हाथ ।।
मेलउ देई स्वामी राउसुं[11]
तउ सेवकरी करुणा समरथ ।।१६३।।

---

यह छंद अ० २ खंड ३ में ४१, आ० ६ खंड ३ में ३८, आ० १२ में १४७ है ।

१. आ० १२ थान ।
२ + ३ + ४. आ० १२ करी अरदास । ५. आ० १२ तपी ।
६. आ० १२ सन्यासी । ७. आ० १२ करै ।।
८. आ० १२ ( में नहीं है ) । ९ आ० १२ रतनाली ।
१०. अ० २ आ० ६ धन्न धन्न देव देवा, आ० १२ धन धन हो तूही । ११. आ० १२ मुं ।

यह छंद अ० २ खंड ३ में ४७, आ० ६ खंड ३ में ४४, आ० १२ में १४८ है। लेकिन अ० २ और आ० ६ में प्रथम दो पंक्तियाँ इस छन्द की ६ और ४ हैं । शेष पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:–

१. अमर स्यंधासन वैसणइ ।
४. जिण दिन कंठ न ऊं ऊं कार ।
६. जिण दिन स्वामी चंदन सूर ।
७. जिण दिन पवन पाणी नहीं ।
८. जिण दिन स्वामी आभन गाभ ।
९. मेतो जुग सूमा गया ।
१०. तपि तो दीप तीपायो हो आप ।

दीठउ नगर[1] पंडिय मम हुवउ उल्हास[2] ।
गिणउ नगर जाई[3] तेह नउ वास ॥
बंभण वइसइ छइ[4] अति घणा ।
बाणिया रा[5] घर अछइ कोडि पंचास ॥
कोडि बाहर[6] छत्री वसइ ।
पवणि छतीसइ[7] अंत न पार ॥
सरसउ लोक सुहामणउ[8] ।
तठइ तीनि सइ साठि घर वसइ कुमार ॥१६४॥

रक्त चंदन तणा[9] पउलि[10] किमाड[11] ।
सूभर भसीया अरथ भंडार ॥
सरब सोना का[12] साकुली ।
घरिघरि तोरण मंगला च्यारि ॥
घरि घरि अति ऊजला[13] झलमलइ[14] ।
घरि घरि तुलसी केद पुराण ॥

---

१. आ० १२ दीठ नगर ।
२. आ० १२ पंडियै उल्हासि ।
३. आ० १२ गिणयो न जाइ ।
४. आ० १२ बाभण वसै छै ।
५. आ० १२ का ।
६. आ० १२ बारह कोडि ।
७. आ० १२ पवन छत्री से ।
८. आ० १२ कुमारछ ।

यह छंद अ० २, आ० ६, आ० ९ म नहीं है । आ० १२ में १४६ है । लेकिन अंतिम पक्ति आ० १२ में नही है ।

९. अ० २ आ० ६ रगत चंदन की ।
०. अ० २ पीली, आ० ६ पौलि, आ० १२ पौलि ।
१. आ० १२ पगार ।
२. अ० २ सीसमसार की ।
३ + १४. अ० २ ऊँचा दादुर झऴमइ, आ० ६ ऊँचाईडा झऴमलइ, आ० १२ ऊजला झलहलै ।

उणि भुव[1] पाप न संचरइ[2] ।
ऊठइ[3] फिरइ जगनाथ की आण ॥१६५॥

पंडियउ जाइ नइ बाइठउछइ पउलि[4] ।
द्वादसि तिलक नइ चंदन षउलि[5] ॥
गलइ[6] जनेऊ[7] पाटकउ[8] ।
हाथि बीजोरउ[9] पुहुप की माल ॥
राइ भुवण गउ[10] जोइसी[11] ।
उभउ राषीयउ षउलि दुवारि[12] ॥१६६॥

---

१. अ० २ तिण भई, आ० ६ जिणभुइ, आ० ९ उणि भुइ, आ० १२. उणि भइ ।
२. अ० २, अ० ६ छीपही, आ० १२ संचरै ।
३. अ० २ तिहां ।

यह छंद आ० १२ में १५० है ।

आ० १२ में अंतिम पंक्ति है :—

"उठि फिरै जगनाथ घर आण" ।

४. आ० १२ रे पौलि ।
५. आ० १० षौलि ।
६ + ७. अ० २ कंठ जनोई, आ० कांधि जनोइय, आ० १२ गलै जनोई ।
८. आ० १२ पाटकी ।
९. आ० १२ विजोरी ।
१०. आ० १२-गयो ।
११. आ० १२ जोईजी ।
१२. आ० १२ उभो राषोयो पौलि दुवार ।

यद छंद संख्या १६५ तथा १६६, अ० २ खंड ३ में ४६, आ० ६ खंड ३ में ४३, आ० ९ में १६७-१६८ दोनों मिलाकर हैं। आ० १२ में १५१ है। लेकिन अ० २ और आ० ६ में उपर्युक्त दोनों छंदों की प्रथम पंक्तियों के पहले ये पंक्तियाँ और हैं :-

पंडियउ[1] बारि[2] बइठउ छइ[3] आइ।
गयउ पडिहार[4] अरु वीनव्यउ राइ॥
परदेसी कोई पंडीयउ।
म्हे स्वामी भेटिवा आवीया राज[5] दुवारि ॥१६७॥

एक सुणउ मुझ बीनती।
एह अपूरब सुणइ विचार।
रे पडिहार[6] मलावउ[7] बार।
वेगि ऊझो बुलावउ[8] सभा मझारि॥
बाँभण कुवण[9] देसांतरी।
तव पउलीय पडियउ जीयउरे बोलाई॥
आवउ देव दया करौ।
जोसीय[10] तुम्ह[11] बोलावइ राई ॥१६८॥

---

१. पंडिया जोवै पउलि पगार।
२. चंदन तिलक अंगि षांलि कराय।

और अ० २ में एक पंक्ति और है : "पठइ पोथी रामकी छै।"

१. आ० १२ पंडीयो। २ आ० १२ बारणै।

३. आ० १२ बैठो। ४. आ० १२ जाइ पइदार।

५. आ० ६ म्हे स्वामी भेटिवा आवीयो राज, आ० १२ मेटेवा आयौ राज।

यह छंद आ० ६ में १६६, आ० १२ में १५२ है। आ० १२ में दूसरी और तीसरी पंक्तियों के बीच में दो निम्न पंक्तियाँ और हैं :-

१ एक सुणो मुझ वीनती।
२. एक अपूरव सुणो विचार।

६. आ० १२ पडदर। ७. आ० १२ मलावौ।

८. आ० ६ योगी बोलावउजी, आ०१३ बेगि बुलावौ। ९. आ० १२ कवणें।

१०. आ० ६ जोइसी हो, आ० १२ जोइसी। ११. आ० १२ तोनें।

रावळ गति[1] बडीय कीयउ, रि[2] प्रवेसि[3] ।
लेइ विओरड मिलउ[4] नरेस ।।
नमळ कोधी राजा पूरिवइ[5] ।
गंग जमुन ज नीर वहाइ[6] ।।
चंद सूरिज जा लगि तपइ ।
ता लगि[7] राज की कीरति हुवइ[8] ।।१६९।।

किहाँ बसउ बंभण किहाँ तोरौ ठाउ[9] ।
जोसी कहइ थारा नगर कउ नाउ ।।
देव देसंतरी दूरि कउ[10] ।
राणी राजमती दीयउ[11] पंवाइ ।।
बरस बारह[12] उलग रहाउ[13] ।
तुम्हि घरि आवियउ[14] वीसलराउ ।।१७०।।

---

यह छंद आ० ६ में १७०, आ० १२ में १५३ है। आ० १२ में प्रथम दो पंक्तियाँ इस छंद की नहीं हैं। ये दोनों पंक्तियाँ आ० १२ की छंद संख्या १५२ में जुड़ी हुई हैं।

१. अ० २, आ० ६ जाइ।
२ आ० ६ कीयो।
३. आ० ६ राय परवेश।
४. अ० २ दुज मिलइ, आ० ६ मिलीया, आ० १२ मिल्यो।
५. आ० १२ पुरव्यो।
६. अ० २ जब लगि बहै नीर
७. आ० ६ अबिचल।
८. अ० ६ रहाइ, अ० २ राजा सयल परिवार, आ० ६ राजलै तुमा सरीर।

यह छंद अ० २ खंड ३ में ४३, आ० ६ खंड ३ में ४०, आ० ६ में १७१, आ० १२ में १५४ है। आ० १२ में पहिली पंक्ति है:—रावलै पंडियै कीयो प्रवेश। आ० १२ में पाँचवीं पंक्ति नहीं है। तथा अन्तिम पंक्ति है:—

"तां लगि कीरति तुम्हर होइ।"

९. आ० १२ ठाम।
१०. आ० १२ को।
११. आ० १२ हू दीयो।
१२. आ० १२ बारै।
१३. आ० १२ रह्यो।
१४. आ० १२ आव्यो।

यह छन्द आ० ६ में १७२ आ० १२ में १५५ है।

झूठउ रे बंभण बोलि म आल।
किम आवइ बीस(ल) भूवाल[1] ॥
जिह घरि सांभरि ऊग्रहइ[2]।
ऊतउ सगलय[3] भूप[4] तणउ रषपाल[5] ॥
सोरठ पाटण कउ धणी।
अम्हि[6] घरि किम आवइ राइ भुवाल[7] ॥१७१॥

बंभण भणइ तूं नि सुणि[8] भूवाल[9]।
विह[10] घरि थी घण रूप विसाल[11] ॥
चिहुँ देसा[12] उवा[13] लष लहइ[14]।
हस्ती[15] तिणि घण कहउ कुबोल ॥
सहि न सकउ संभर धणी।
तउ घण मेल्ही हो राइ निटोल ॥१७२॥

---

१. आ० १२ भूपाल।
२. आ० १२ उग्र है।
३. आ० १२ सगली।
४. आ० १२ भूमि।
५. आ० १२ रषवाल।
६. आ० १२ हम।
७. आ० १२ भूपाल।
यह छंद आ० ६ में १७३ आ० १२ में १५६ है।

८+९. आ० ६ निसिणि भूपाल, आ० १२ सुणि भूपाल।
१०. आ० १२ विहि।
११. आ० १२ रसाल।
१२. आ० १२ दिसि।
१३. आ० १२ बालैत।
१४. आ० १२ लहै।
१५. आ० १२ हसतीय।
यह छंद आ ६ में १७४, आ० १२ में १५७ है।

राजमती हसि बोलिया[१] बोल।
राजा कहइ चित्त[२] वस्यो कुबोल॥
समझायउ[3] समझय नहीं।
उतउ[४] राणीय सं[५] मेल्हउ घर वास॥
ऊभी मेल्ही गोरडी।
असि[६] विधि राऊ आयउ तुम्ह पासि॥१७३॥

अब बांभण दीन्हो घर कयउ[७] भेऊ।
तब[८] आधउ कुल कयउ परमेउ॥
गूझ प्रकासउ पाडोयइ[९]।
भोट छइ हींदू बडउ नरेस॥
बचन कहइ[१०] कारणि घण तीजी।
हिवइ संपउ[११] उडीसा कउ देस॥१७४॥

चमकि अरु ऊठियउ पूरिण्यउ राउ[१२]।
मर्म्मो बहुरागर छीयउ बुछाइ॥

---

१. आ० १२ बोलीयो।
२. आ० १२ मनमाहें।
३. आ० १२ समझायो।
४. आ० १२ उणितां।
५. आ० १२ राणास्युं।
६. आ० ६ इण, आ० १२ इणि।
यह छंद आ० ६ में १७५, आ० १२ में १५८ है।
७. आ० १२ को।
८. आ० १२ तबहिं।
९. आ० गूझ प्रकास्यां रे पंडियइ, आ० १२ गूझ प्रकास्यो पंडियै।
१०. आ० १२ में नहीं है।
११. आ० १२ हिवै सउयुं।
यह छन्द आ० ६ में १७६ तथा आ० १२ में १५६ है।
१२. आ० १२ चमकि करि ऊटीयो पूरव्यो राइ।

कुवण[1] राजा मोनइ उलगइ।
हिव तेह नउ मुझ देहि[2] परिमाण ।।
गढ अजमेर[3] कयउ धणी।
मंत्रि म्हारइ कुण[4] बीसल चहुआण ।।१७५।।

दीया हकारा नगर मझारि।
घरि घरि राज फिरइ[5] पडहार[6] ॥
नगरि दुहाई संचरी।
सबे ठाकुर[7] घरि बारी रह्या ।।
राइ आप आहेटइ मिसि चढइ[8]।
सिंह सिकार नइ पेलणजाइ ।।१७६।।

फिर्‌या न की[9] फेरायई आंण।
घरि घरि सज्या छइ तुरीय केकाण ।।

---

१. आ० ११ कुण।
२. आ० १२ तेह नउ मुझ्यो।
३. आ० १२ अजमेरइ।
४. आ० ६ मंत्री कवण म्हारै, आ० १२ मंत्री कौण म्हारै।
यह छंद आ० ६ में १७७ तथा आ० १२ में १६० है।
५. आ० १२ रावली फिरै।
६. आ० ६ पटधार, आ० १२ पडदार।
७. आ० ६ परिवस्था हो राइ।
८. आ० ६ आप आहेडा मिस चडे, आ० १२ आहेडा मिसि चढ़ै।
यह छंद आ० ६ में १७८ तथा आ० १२ में १६१ है।
लेकिन आ० १२ में ४थी तथा पंक्तियाँ हैं :—
४. "सबे ठकुराला सपरिवार हो।
५. लसकर नै बोलावण जाइ।"
६. आ० ६ नकीब, आ० १२ स्वामी कीइब।

देस देसाह का नीकस्या ।
राजाश्री सरव बह्रावीठइ[1] मांव ॥
छत्र चउरासीया ताणीया ।
नरवर[2] सरव जुहारण जाइ ॥१७७॥

पद्म सरोवरि बइठउ[3] छइ[4] आई[5] ।
आपण श्रीय मुषि वचन कहाइ[6] ॥
अहो जिण पूरव आसंगीयउ[7] ।
षाडउ[8] हो समुद[9] पषालीयउ[10] जाइ ॥
आपण पइ राजा कहइ[11] ।
थे बहूगा हो[12] आषिज्यो वीसल राउ ॥१७८॥

चिहुं दिसि राजा कइ[13] चमर ढुलाइ[14] ।
वृंद सहोदर[15] बइठा छइ आई ॥

---

१. आ० १२ वरताईय । २. आ० ६ नरवैजी ॥

यह छंद आ० ६ में १७६ तथा आ० १२ में १६२ है । लेकिन आ० १२ में अंतिम पंक्ति है :—

"राजा सब मिलि करै प्रमाण ।"

३. आ० ६ बइठो, आ० १२ वठो ।
४. आ० ६ छै, आ० १२ छै ।
५. आ० ६ राइ ।
६. आ० १२ कहइ ।
७. आ० १२ आसंया ।
८. आ० १२ षोंडो ।
९. आ० १२ समुद्र ।
१०. आ० १२ पषलिज्यो ।
११. आ० १२ कहै । १२. आ० १२ थे तो बेगा हो ।

यह छंद आ० में १८० तथा आ० १२ में १६३ है ।

१३. आ० १२ राजा कै । १४. आ० १२ ढोलाइ ।
१५. आ० ६ सरोवर ।

परिगह[१] दुलमल[२] सहि मिल्या[३] ।
तठइ पूरिवउ[४] राजा वषाणइ छइ[५] ॥
गढ़ अजमेरा[६] कयउ धणी ।
वेगा आणउ[७] वीसल चहुआण ॥१७९॥

दाहिणी दिसि राजा चवर दुलाइ ।
दषिण दिसि राजा बइठउ छइ आइ ॥
सिहर कलिंग पुर उग्रहउ ।
उण रइ सगली सेना बइठी छइ आई ॥
आपण पइ राजा कहइ ।
थे वहुगा आवइ वीसल राइ ॥१८०॥

आगिली दिसी राजा चमर दुलाइ ।
राउ का[८] ऊलगु बइठा छइ आइ ॥
वसइ[९] राजा वाणारसी ।
उतउ[१०] कनवजाइ दिवाईय[११] आण ॥

---

१. आ० १२ परगह ।
२. आ० १२ दुलबल ।
३. आ० १२ मिल्यौ ।
४. आ० १२ तठै पूरव्यो ।
५. आ० ६ राजा करइ वषाण, आ० १२ राजा कर वषाण ।
६. आ० १२ अजमेरह ।
७. आ० ६ बेगि आयो, आ० १२ वैगो आणो ।
छंद १८० आ० ६ में १८१ तथा आ० १२ में १६४ है ।
यह छंद आ० ६ में १८२ है । आ० १२ में नहीं है ।
८. आ० १२ को ।
९. आ० १२ वसै ।
१०. आ० १२ उणितो ।
११. आ० १२ दिवाइ ।

आपण पूरब्यउ[1] बीनवइ[2] ।
थे तउ[3] वेगा आणउ वीसल चहुआण ॥१८१॥

पाछिली दिसि राजा चमर दुलाइ ।
सींवल दीपी राजा बइठउ[4] आइ ॥
आप नरेसर वासीयउ[5] ।
तठइ पूरबी[6] राजा करइ सुभाइ ॥
म्हाको हो एही[7] बीनती ।
थे तउ वेगा आणउ वीसल राउ[8] ॥१८२॥

इतनउ सुणीइ[9] राजा मंदिरि जाइ ।
भाणमती राणी ली छइ[10] बोलाइ ॥
हसि राजा आलिंगीयउ ।
राणी हेहि तोनइ कहुँ सुभाइ[11] ॥
जो भाई करि बोलीयउ[12] ।
सो था कउ[13] भाई म्हा नइ दिष(া)इ[14] ॥१८३॥

---

१. आ० १२ पइराजा । २. आ० १२ कहै ।
३. आ० १२ ( में नहीं है ) ।
यह छंद आ० ६ में १८३ तथा आ० १२ में १६६ है ।
४. आ० १२ बैठा छै । ५. आ० १२ वीनवी ।
६. आ० १२ तठै पूरब्यो ।
७. आ० ६ एह ।
८. आ० ६ बेगि वे आणो वीसलो राउ ।
यह छंद आ० ६ में १८४ तथा आ० १२ में १६७ है ।
९. आ० ६ इतनो सुणी, आ० १२ इतनुं सुणी ।
१०. आ० १२ लीय ।
११. आ० १२ राणी जी तो नुकउण सुभाव ।
१२. आ० १२ वोलाईयो ।
१३. आ० १२ थारो । १४. आ० १२ मुझहि देषा ।
यह छंद आ० ६ में १८५ तथा आ० १२ में १६८ है ।

भानमती बोलइ सुणि[1] राइ ।
एता दिन[2] संभाळीयउ[3] काइ ॥
इतनी हो आइति[4] राज की[5] ।
किउतइ आज पूछीया[6] इइ[7] ॥
भाव भलइ[8] आखविज्यो ।
थकिउ जुडियउ[9] हो[10] सिगलउ परिवार ॥१८४॥

तब हसि करि राजा आलिंगण देहि ।
भानमती मुझ[11] कहउ सुएह[12] ॥
राजमती लिषि मोकल्यउ[13] ।
चोरी दे बंभण दीयउ पंदाइ ॥

---

१. आ० १२ सुणौ जी ।
२. आ० १२ इतना दिवस ।
३. आ० १२ न सांभरि ।
४. आ० १२ इतनी आरति ।
५. आ० १२ राजा क्युं करी ।
६ + ७ आ० ६ पूछीया कीधीय सार ।
८. आ० १२ भावि भैले ।
९. आ० १२ जुड्यौ छै ।
१०. आ० ( में नहीं है ) ।

यह छंद आ० ६ में १८६ तथा आ० १२ में १६६ है। लेकिन इसमें चौथी और पाँचवीं पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

४. आज किउं पूछियउ किउं करोसार ।
५. भाव भलेते मानिज्यो ।

आ० १२ में पंक्ति है :—"किम पूछीयो ये इव कीधीय सार ॥"

११. आ० १२ मुझसुं ।
१२. आ० १२ कहोएह ।
१३. आ० १२ मोकल्यो ।

बार बरस उलग हुया ।
था[1] घरि आव्या हो[2] वीसल राउ[3] ॥१८५॥

तब आपणउ[4] बंभण लीयउ बोलाइ ।
भानमती राणी लिखउ वधाइ ॥
सरस वचन वण वांचीया ।
तब पंडियइ[5] बात कही समझाइ ॥
भोज राजच की चउंरी चढयउ[6] ।
उतउ उलगाणउ देज्यो घरइ पठाइ ॥१८६॥

पाछिम पउलि मेलही पडदार ।
बांभण भाट करइ जइ कार[7] ॥
नट नाटिक दीसइ घणा ।
उछिरइ[8] कौतोहल दीसइ दरबारि ॥
भीतरि जाइ सुणावीयउ[9] ।
थारी वहिनडी[10] कोकइ[11] राजदुवारि ॥१८७॥

---

१. आ० ६ थां ।
२. आ० ६ आयो, आ० १२ आव्या जी ।
३. आ० १२ राइ ।
यह छंद आ० ६ में १८७ तथा आ० १२ में १७० है ।
४. आ० १२ आये ।
५. आ० १२ पंडियै ।
६. आ० १२ चोरी चढ्यो ।
यह छंद आ० ६ में १८८ तथा आ० १२ में १७१ है । लेकिन आ० १२ में अंतिम पंक्ति है :–
"उलगाणो देज्यो घरा पठाइ ।"
७. आ० १२ जयकार । ८. आ० १२ ( में नहीं है ) ।
९. आ० १२ सुणाईयो । १०. आ० १२ बहिन ।
११. आ० ६ कोक्यो, आ० १२ तू कौकियो ।
यह छंद आ० ६ में १८६ तथा आ० १२ में १७२ है ।

रायंगणि[1] अब आवीयउ राउ।
कामणी ढोलइ[2] सीतल वाउ॥
एक चन्दन लेपन करइ।
एक सषी करि देहि[3] तंबोल॥
एक गोरी[4] फूल वधावही।
एक सषी करइ चंदन पउलि[5] ॥१८८॥

तेडा आव्या राजा बीसल राउ।
पूरबी[6] राजा कीयउ[7] अधिक[8] उछाह॥
दीनी हां[9] चादर बइसणह[10]।
कवण देवावर कुण[11] तू देव॥
कवण की थे[12] ऊलग करउ।
हूं नवि जाण[13] रावलउ[14] भेव॥१८९॥

---

१. आ० १२ राय आंगाणी।
२. आ० १२ ढोलि।
३. आ० १२ देइ।
४. आ० १२ नारि।
५. आ० १२ पोलि।

यह छंद आ० ६ में १६० तथा आ० १२ में १७३ है। लेकिन इसमें तीसरी और छठी पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

३. सफल दीहाडउ आज कउ।
६. ए सखि वदइ अमृत बोल।

६. आ० १२ पूरब्या।
७. आ० १२ किधो।
८ आ० १२ (में नहीं है)।
६. आ० १२ दीन्हीं।
१०. आ० १२ बैसणै। ११. आ० १२ कवण।
१२. आ० १२ तुम्हें। १३. आ० १२ जाणु।
१४. आ० १२ रावल।

– १९० –

जइ तूं हो पूछइ धरा नरेस ।
म्हाहरउ ऊमहइ[1] सांभरि देस ॥
थाणउ[2] गढ अजमेर महि[3] ।
म्हे तउ[4] वचन बांधीया[5] आवीया[6] हेव[7] ॥
सावण वरस बारह हुवा[8] ।
म्हे[9] उलगाणा थाहरा देव ॥१९०॥

एतउ[10] वचन कहइ किया[11] काज[12] ।
सफल जनम हुव मुझ[13] आज ॥
जइ तुम्ह सुं भेटा हुई ।
तउ थे[14] लेहु उडीसा कउ देस ॥

---

इस छंद में छंद संख्या ११२, ११३, ११४ की घटना की पुनरावृत्ति हुई है :—

यह छंद आ० ९ में १९१ तथा आ० १२ मे १७४ है। आ० १२ पंक्ति है :—"आवि मिल्या तब बीसल राव ।"

१. आ० १२ उलगहै ।
२. आ० १२ थांण ।
३. आ० १२ मैं ।
४. आ० १२ (में नहीं है) ।
५. आ० ९ बंध्या, आ० १२ चांपीया
६. आ० ९ आवियां ।
७. आ० ९ एथ, आ० १२ देव ।
८. आ० १२ तजी ।
९. आ० १२ ( में नहीं है ) ।

यह छंद आ० ९ में १९२ तथा आ० १२ में १७५ है ।

इस छंद में भी उपर्युक्त छंद संख्या १८९ की तरह, छंद-संख्या ११२, ११३ और ११४ की घटना की पुनरावृत्ति हुई है ।

१०. आ० १२ एतला ।
११. आ० १२ जिण ।
१२. आ० १२ काजि ।
१३. आ० १२ मुझ हुउ ।
१४. आ० १२ थे तौ ।

म्हा[1] तुहेइ[2] सप्पइ[3] राउ जी।
हिवइ आपा[4] उगाहो[5] हो घरह नेस ॥१६१॥

तब हसि बोलयउ राउ[6] बहुभाय।
तुम्हारउ[7] वचन सामी[8] परमाण॥
वीनती एह[9] म्हाकी सुणउ।
म्हे तउ चाखती गोरीय[10] दीन्ही थी[11] बांह॥
वरस बारह पछइ आविस्यां।
हिव तुम्हि[12] कहउ[13] जिम घरि[14] जांह ॥१६२॥

तब[15] पंडउ अरु कोस्या परधान।
पूरुयउ राउ दीय[16] बहु मान॥

---

१+२+३. आ० ६ म्हे तुम्हां सप्यो।
४+५. आ० ६ आप उम्हाहउ।

यह छंद आ० ६ में १६३ तथा आ० १२में १७६ है। लेकिन
१२ में ५वीं पंक्ति है :—"म्हे थांनै राज सुपीयो।"
तथा ६ठी पंक्ति है :—"आप उगाहो धण नरेस।"

६. आ० १२ राय।
७. आ० १२ थारो।
८. आ० १२ स्वामी।
९. आ० १२ एक।
१०. आ० १२ गोरी ने।
११. आ० १२ छै।
१२. आ० १२ (में नहीं है)।
१३. आ० ६ हिवै तुम्हे कहो।
१४. आ० १२ में 'जिम' और 'घरि' के बीच में "हमि" है।
यह छंद आ० ६ में १६४ तथा आ० १२ में १७७ है।

१५. आ० १२ (में नहीं है)।
१६. आ० १२ पुरव्यो राइ दीयो।

आघा पधारउ देव जी[1]।
स्वामी तुम्हि आणउ सुधि सहिनाया[2] ॥
म्हा बइठा ही सोझिलइ[3]।
पंडया राइ[4] वीसल चहुआण ॥१६३॥

पंडिय[5] फिर का[6] सांभलि।
निरषि करु[7] दीठउ[8] हो सांभरि वाल ॥
राइ चहुआण पिछाणीया।
उदइ तउ कुंवर दीठाछइ बालइ वेसि[9] ॥
ऊचोउ[10] गोरी पातलउ।
तठइ बइठा[11] राजा नइ सनमति[12] ॥
पंडिया कागद करि घरइ।
उतउ चीरी देषिता झांपीयउ[13] सानि[14] ॥१६४॥

---

१. आ० ६ देवसी।
२. आ० १२ सहिए।
३. आ० १२ साम्भिल्यो।
४. आ० १२ राव।
यह छंद आ० ६ में १६५ तथा आ० १२ में १७८ है।

५. आ० १२ पंडियै।
७. आ० १२ कीधी फिरि।
८. आ० १२ अरु।
६. आ० १२ दीठो।
१०. आ० १० उवै तो कुमर दीठो वालै वेस।
११. आ० ६ ऊंचा, आ० १२ ऊचौ।
१२. आ० ६ बाइठा।
१३. आ० ६ समभांति, आ० १२ सनमान।
१४+१४. आ० ६ झांपियो सान, आ० १२ झांपीयो सांन।
यह छंद आ० ६ में १६६ तथा आ० १२ में १७९ है।

हिवइ चोरी दीन्ही[1] पंडइ राउ कइ हाथि[2] ।
पंडिया आव्याउ[3] कंण सं[4] साथि ॥
किणइ[5] राणी तुम्हे मोकल्या ।
राणी राजमती तुम दीयरि[6] संदेसि ॥
जइ तुम्हे रावजी नावीया[7] ।
तउ धण हीय[8] फाटि मरेसि ॥१६४॥

पाड्या तइ गांरो[9] किण वीध[10] दीठ ।
मोती[11] पोवती[12] गउषि[13] बईठि ॥

१. आ० १२ दीधी चोरी ।
२ आ० १२ हाथ ।
३. आ० १२ आयो ।
४. आ० १२ कवण कै ।
५. आ० १२ कवण ।
६. आ० ६ पाठ्यां, आ० १२ दीयारे ।
७. आ० १२ नाइया ।
८. आ० १२ हीयडे ।

यह छंद अ० २ खड ३ में ४४, आ० ६ खंड ३ में ४१, आ० ६ में १६७, आ० १२ में १८० है। लेकिन अ० २ और आ० ६ में १ ली पंक्ति के अतिरिक्त अन्य पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :-

२. लांघ्या कुं परवत दुरघट घाट ।
३. तुम कारण दूत रमिरा ( दूत रतरा-आ० ६ ) ।
४. सूना सामर का रिणवास ।
५. सूना चउरा ( चउरा-आ० ६ ) चउपडो ।
६. सूना मंदिर मढ ( गढ़-आ० ६ ) कविलास ।

६. आ० ६ गोरडी ।
१०. अ० २ किणइ दुष, आ० १२ विधि । आ० ६ को दुष ।
११. अ० २, आ० ६ चावल, आ० १२ मोतीया ।
१२. अ० २, आ० ६ वीणती ।
१३. आ० ६ गोषे, आ० १२ गोष ।

चित चोषउ[1] मन ऊमजयउ[2]।
उघिलउ भुइ पग देइ[3] कहइ[4] संदेस ॥
जउ तुम्हे रावजी नापीया[5]।
तउ थण[6] हीयडउ[7] फाटि मरेसि ॥१६६॥

तब चमकिउ[8] करि उठियउ[9] संभरि बाळ।
आंष्या आडा[10] फिरि गया जाळ ॥
इहुरि जनम अहिलउ गयउ[11]।
तब राजा हो वीसल वीनव्यउ राइ ॥
विदा करउ म्हानइ राइ जो[12]।
गाळइ विणसइ म्हारइ[13] मोटा काज ॥१६७॥

---

१. अ० २, आ० ६ मुखि मइलइ, आ० ६ चित दोषो, आ० १२ चित चोषै।
२. अ० २ चित ऊजलइ, आ० ६ चित निरमल, आ० ६ मन ऊपनो, आ० १२ मन ओरसै।
३. अ० २, आ० ६ उतरी।
४. अ० २, आ० ६ कह्योहो, आ० ६ नै कह्यौ।
५. आ० १२ नाईया।
६. आ० १२ साधण।
७. आ० १२ हियडैइ।

यह छंद अ० २ खंड ३ में ५५, आ० ६ खंड ३ में ५२, आ० ६ में १६८ तथा आ० १२ में १८१ है।
"लेकिन आ० १२ में ४थी पक्ति है:–"मुइपग देइ नै कह्यो सदेस।"

८. आ० १२ चमकि।
९. आ० १२ ऊठीया।
१०. आ० ६ आंख्या आडा, आ० १२ आंषीया।
११. आ० ६ इरे जनम अटेलो गयो, आ० १२ गहरे जनम आहिलौगयो।
१२. आ० १२ देवजी।
१३. आ० ६ म्हांहरै, आ० १२ म्हाहरा।

यह छंद आ० ६ में १६६ तथा आ० १२ में १८२ है।

साठि भरउ तुम्हे सउ ब्यारि ।
भरिज्यो[1] अरथ दरब[2] भंडार ॥
भरिज्यो हीरा पाथरी ।
पुरिपौव्यउ बोलउ बोलि विचारि[3] ॥
कहउ हमारउ जे सुगउ ।
तउ तुम्हे चालिज्यो पुतिवारि[4] ॥११८॥

तब भीतरि संचर्‌या दूउनंउ[5] राउ ।
भानमती रापी लीयउ[6] बोलाइ[7] ॥

---

१. आ० ६ भरो थे ।
२. आ० १२ गरथ ।
३. आ० १२ पूरज्यो, बोलविचार ।
४. आ० १२ एतीथवार ।

यह छन्द अ० २ खंड ३ में ६१, आ० ६ खंड ३ में ५८, ५६, आ० ६ में ०० तथा आ० १२ में १८३ है ।

किन्तु अ० २ और आ० ६ में इसका पाठ इस प्रकार है—

“कोकै पाड्या अरी परधान ।
दीधौ छै जब तिहां चउगुणउं मान ॥
चौको चावर वससणइ ।
नव गज ऊंचा हाथी च्यार ॥
आण्या छै अरथ कै दरब भंडार ।
आण्या हीरा पाथरी ।
दीधा ताजी मात गयंद ॥
कबाइ पट्टराइ नव-ज ी ।
चाल्यो राजा मास बसन्त ॥”

आ० १२ में १ली पंक्ति है :—

“साठडी रिज्यो सह सविच्यार ।”

५. अ० २ दोई, आ० ६ दुहै, आ० ६ दोनु, आ० १२ दोनुं ।
६. अ० २ लीय, आ० ६ लीया, आ० १२ लीयो ।
७. अ० २ बोलाई, आ० ६ बोलाय ।

उखगाखउ घरि चालिस्यइ ।
नयण[1] भरइ[2] अरु करइ जुहार ॥
चिरिजीवे म्हाकी वीर तूं[3] ।
राणी कोटि टंका कउ दीन्हउ छयहार[4] ॥
म्हाकी भावज नइ संपिज्यो[5] ।
जिह कउ पीहर छइ भोज की धारि[6] ॥१९९॥

रहु रहु वीरा तू[7] घरि[8] न जाइ[9] ।
थारा[10] करिस्या[11] च्यारि वीवाह[12] ॥

---

१.+२. आ० ९ नाणमरथ, आ० १२ नयण भर्‍या ।
३. आ० ९ म्हा का वीर सूं ।
४. आ० १२ आपीयो ।
५ आ० १२ थे सौंपिज्यो ।
६ आ० १२ राजा भोज की धारि ।

यह छंद अ० २ खड ३ में ६२, आ० ६ खंड ३ में ६०, आ० ९ में २०१ तथा आ० १२ में १८४ है ।

लेकिन अ० २ और आ० ६ में इसकी ४, ५, ६ ठी पंक्तियाँ हैं :—

४. सह संदेसी नया (सानईआ-आ० ६) उपरिपान ।
५. म्हा बइठा मं त्रावरो ।
६. रहो तो उडीसा परधान ।

७. अ० २, आ० ६ प्रधान तु, आ० १२ वीसल वीर ।
८. अ० २ जी, आ० ६ करहा, आ० १२ (में नहीं है) ।
९. अ० २ मतो जाई, आ० ६ न जाय, आ० ९ म जाइ, आ० १२ जाहि ।
१०. अ० २ थारो ।
११. अ० २ कराऊं हूं, आ० ६ करूं हूं, आ० ९ करेस्यां, आ० १२ करिस्यौ ।
१२. अ० २ दोती व्याह, आ० ६ थारो व्याह, आ० ९ च्यारे वीवाह ।

दुइ[1] गोरी दुइ सावली[2] ।
राइ भतीजी[3] राज कुमारि[4] ॥
बहिन दिवाइ[5] तोनइ रावलो[6] ।
थारा व्याह करावउ गंग नइ[7] पारि[8] ॥२००॥

रहि[9] बहिनडी[10] माम हारि[11] ।
म्हारइ[12] सहस स्त्रीया[13] छइ घरि की नारि[14] ॥
एक एका थी आगली[15] ।
म्हारइ[16] त्रिया छइ रतन संसारि ॥

---

१. अ० २, आ० ६ एक गोरी ।
२. अ० २ आ० ६ पूजी सामली ।
३. आ० ६ राज भतीजो ।
४. अ० २, आ० ६ नयण मुंतार ।
५. आ० ६ दिवाडू, अ , आ० ६ देवाडू
६. अ० २ देवको, आ० ६ राउको ।
७. अ० २ गंगाकर, आ० १२ गंग के ।
८. आ० ६ दूवारि ।

यह छंद आ० १२ में १८५ है । लेकिन आ० १२ में इस छन्द की ३, ४, ५, पंक्तियाँ नहा हैं । और तीसरी पंक्ति है :—

"दुरावली थारा व्याह मै ।"

९. आ० ६ रहु रहु, आ० १२ हरिय ।
१०. अ० २ बइहन, आ० ६ बैहनडी ।
११. अ० २ बचन नू हारि, आ० ६ बचन म हारि, आ० महारि ।
१२. आ० ६ अम, आ० १२ ( में नहीं है ) ।
१३. अ० २ घर साढि, आ० ६ घरि साठि ।
१४. अ० २, आ० ६ अंतेवरि, आ० म्हाहरै छै घर मांहि ।
१५. आ० ६ चढाय थी ।
१६. अ० २, आ० ६ ( मे नहीं है ), आ० १२ म्हारै एक ।

प्रेम पीयारी चाबही ।
ऊपरउ[1] पीहर[2] छइ[3] गढ़ मांडव धार ॥२०१॥
कंठ भरे[4] भरे[5] दीन्ही[6] पान ।
ऊतउ[7] देस उडीसा[8] परधान ॥
आधी चादरि[9] बइसतउ[10] ।
म्हाका सगा[11] सुणीजा[12] सकया आज[13] ॥
पूठि उघाडा[14] बहु बइसतइ[15] ।
तउ[16] त्रिया कारणि फेरियउ[17] राज ॥२०२॥

---

१+२. अ० २ जाकर पीहर छइ, आ० ६ जेके पीहर, आ० १२ जिणरौ पीहर ।

३. आ० १२ ( में नहीं है )

यह छंद अ० २ खंड ३ में ६५, आ० ६ खंड ३ में ६३, आ० ८ में २०३ तथा आ० १२ मे १८६ है ।

४+५. आ० १२ भरो भरी । ६. आ० ८ दीना,आ० १२ दीन्हा छै ।

७. आ० १२ ( मे नहीं है ) ।

८ आ० ८ उड़ीसा की, आ० १२ उड्ईसा का ।

९. आ० ८ चादर, आ० १२ चावरि ।

१०. आ० ८ वैसतो, आ० १२ बैसणै ।

११. आ० ८ सग, आ० १२ ( में नहीं है ) ।

१२. आ० ८ सणेजा ।

१३. अ० २, आ० ६ ताकसी पूठि, आ० १२ साक्या आज ।

१४. आ० १२ उघाडी । १५. आ० १२ म्हाकी हिव हुई ।

१६. आ० १२ तै तो । १७. आ० १२ फेर्यो ।

यह छंद अ० २ खंड ३ मे ६६, आ० ६ खंड ३ में ६४, आ० ८ में २०४, आ० १२ मे १८७ है । लेकिन अ० २ और आ० ६ में १, २, ५ और ६ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :–

१. सेवा पूरी चाल्यो घरि राव ।
२. टाली लागै मिलैछइ राइ ॥
३. जुग (कलि माहे–आ० ६) पाषने न अवतर्यो (वापर्यो आ० ६) ।
६. राजा के कारण विणसस लंक ।

राव सौं[1] मिलियउ[2] परिवड राउ।
कृष्ण[3] बांभण तठइ लीयोउ बोलाइ॥
समझाइ जै प्रोहित राउ का[4]।
तठै आंचल आंसु लूहइ[5] राउ[6]॥
मुष थी बोल न नीसरइ[7]।
सिधि करउ तुम्हे वीसलराउ॥२०३॥

राजा सउ[8] मिल्यउ[9] वीसल राउ[10]।
लाष दीन्हा तिहां बुलइ कबाइ॥
दीन्हा हीरा पाथरी।
दीन्हा ढोलनइ[11] नीसाणि॥
रावइ नइ[12] परिवउ वीनवइ[13]।
देय तउ[14] सिद्ध करउ वीसल चहु आण॥२०४॥

१. आ० १२ राउमु।
२. आ० १२ मिलीयोछै।
३. आ० १२ किसन।
४. आ० १२ रावला।
५. आ० १२ लूंहू।
६. आ० १२ राइ।
७. आ० १२ नोसरै।

यह छंद आ० ६ में २०५ तथा आ० १२ में १८८ है।

८. आ० १२ मुणि।
९. आ० १२ मिलीयो छै।
१०. आ० ६ वीसलो राउ, आ० १२ वीसल राइ।
११. आ० ६ ढोल अनइ, आ० १२ ढोल अनै।
१२. आ० १२ रोवनइ।
१३. आ० १२ वीनवी।
१४. आ० १२ तो।

यह छंद आ ६ में २०६ तथा आ० १२ में १८९ है।

राजा सौं[1] बोलियउ[2] बीसल राव ।
घणि लिषि मोकलगउ कि उ[3] सुभाउ ॥
रतन पदारथ संपीया ।
म्हां का सगा सुणीजा थाका[4] पूति[5] ॥
पूरिबी राउ अस बोलियउ[6] ।
तब बीसलराउ चालगउ घरि उठि ॥२०५॥

उडीसा की तलहटी ऊतरइ राइ[7] ।
नफर षंदावइ दिवस[8] गिणाइ[9] ॥
धीरय[10] देज्यो राणीया ।
दिवस चिहुँ माहि पहुचिगयो जाइ ॥
राजमती[11] नै अम[12] कहै ।
गोरी वरि नइ उमाहियउ बीसल राउ ॥२०६॥

१. आ० ६ मुं, आ० १२ मु ।
२. आ० १२ बोलीयो ।
३. आ० ६ कियो, आ० १२ किमो ।
४ आ० १२ थांकिय, आ० १२ थांको ।
५. आ० १२ पूठि ।
६. आ० ६ इस बोलियो, आ० १२ इम बोलीयो

यह छंद आ० ६ में २०७ तथा आ० १२ में २०० है ।

७. आ० १२ राउ ।
८ आ० १२ दिवस ।
६. आ० १२ षिणाई ।
१०. आ० १२ धीरप ।
११. आ० १२ राणी राजती ।
१२. आ० ६ इम, आ० १२ इम ।

यह छंद आ० ६ में २०८ तथा आ० १२ में २०१ है ।

तठइ[1] पछइ दिवावइ[2] वोसल राउ।
छइ कोइ[3] अजमेरइ जाइ॥
लाष टंका देव[4] गाठि का[5]।
इइ तउ[6] चीरी लिषि दिउ[7] मनह[8] सुभाइ॥
दिन[9] चहु[10] नइ[11] म्हे आविस्या।
सतवंती राण नइ कहिज्यो जाइ॥२०१॥

तठइ[12] जोगिनउ[13] एक अपूरब राउ।
जइ[14] मन[15] करइ तो[16] सांभरि जाइ॥
चंचल चपल सुचालणउ[17]।
थे तउ पूछउ जोगी नइ वोलावइ राइ॥

---

१. आ० १२ तठै।
२. आ० १२ दिवाईयो।
३. आ० ६ कोइ आज, आ० १२ कोई आज।
४. आ० ६ द्युंगा, आ० १२ द्यउं।
५. आ० १२ रोकडा।
६. आ० १२ (में नहीं है)।
७. आ० १२ दीयउ।
८ आ० १२ (में नहीं है)।
९ + १० + ११ आ० ६ दिन चिहु में, आ० १२ चिहे दिन नै।
यह छंद आ० ६ में २०६ तथा आ० १२ में २०२ है।
१२ + १३. आ० ६ अठै जोगनो, आ० ६, आ० २ जोगी एक, आ० १२ तठैजोगनुउ।
१४. आ० २, आ० ६ (में नहीं है) आ० १२ जउ।
१५. आ० ६ मन तौ,
१६. आ० १२ तउ।
१७. आ० २ अरि चालणइ, आ० ६ चालणो, आ० ६ सुचाचलो, आ० १२ सो चालणो।

जो मागइ[1] सो आविज्यो[2] ।
उखिनइ[3] पाटण सरसा बारह गाम ।।२०८।।

आइउ जोगी राजा कीयउ आदेस ।
भगवा कापड़ा मइला वेसि ।।
काषि अधारीय[4] सिरि जटा ।
उघितउ सोना सीगी पूरियउ[5] नाद ।।
रतन जड़ित का[6] मेषला ।
उकइ[7] बजर[8] कछोटीय[9] दाउडी[10] पाइ[11] ।।
गढ़ अजमेरां गम करउ ।
तठइ करि जोडी नइ पगि पडइ राउ ।।२०९।।

---

१. अ० २ ज्यो मागौ, आ० १२ जौ मांगइ ।
२. अ० २ ज्यूं आलज्यौ । ३. आ० १२ (में नहीं है) ।

यह छंद अ० २ खंड ३ में ६६, आ० ६ खंड ३ में ६७, आ० ८ में २१० तथा आ० १२ में २०३ है। लेकिन अ० २ और आ० ६ में ४ और ६ हैं—

४. रूप अपूरब ( सुन्दर नै—आ० ६ ) बालिय वेस ।
६. पाटण सरिसा नयर असेस ।

४. आ० १२ आंषरी ।
५. आ० १२ पूरीयो ।
६. आ० १२ कडि ।
७. आ० १२ उणरै ।
८. आ० १२ वज ।
९. आ० ० कछोटडी ।
१०. आ० १२ पाचडी ।
११. आ० ८ पाग, आ० १२ पग ।

यह छंद आ० ८ में २११ तथा आ० १२ में २०९ है ।
लेकिन आ० १२ में अंतिम पंक्ति है :—
करजोडी राजा पाय पडंति ।

जोगनउ[1] बोलइ[2] बरह नरेस।
अभूगीयउ[3] रावल[4] अरु परिदेसि ॥
राज भवणि[5] राणी वणी[6]।
तउ कहि नइ[7] कागल[8] किसनइ देसि ॥
दिठि दिठी नवि उलखउ।
गढ़ अजमेरि गउ भुलइपडेसि ॥२१०॥

---

१. अ० २, आ० ६ जोगी, आ० १२ जोगिनो।
२. अ० २, आ० ६ कहइ, आ० ६ वोलियो ( इसके बाद अ० २, आ० ६ में सुसि आ० ६ में सुन हो, है )।
३. आ० १२ अभूमियो।
४. आ० १२ रावले।
५. अ० २ राजभणी, आ० ६ राजघरिणि।
६. आ० ६ रावलभणी।
७ आ० १२ तुम्हे कहाँ
८ आ० १२ कागद।

यह छंद अ० २ खंड ३ में ७०, आ० ६ खंड ३ में ६८, आ० ६ में २१२ तथा आ० १२ में २०५ है।
लेकिन अ० २ और आ० ६ में २, ४, ५, ६ इस प्रकार हैं :—

२. विण उणहारउ किहां लहेस।
३. ऊँचे गोलइ लोबइ नाक।
५. जीव पराया ( आ० ६. जिणी परै ) ओलकाइ ( धणजा-मलई आ० ६ )।
६. चीरी प्रभु ( दीज्यो, आ० ६ ) धण कइ हाथि।

आ० १२ में ५ वां और ६ ठी पंक्तियाँ हैं :—

५. दिविही दानविउ लषुं।
६. गढ़ मेर गुजलै पडसि।

भणि[1] जोगी कहइ नरनाथ[2]।
रतन[3] कचोलउ[4] घणा कर हाथि ॥
मुगफलो जिसी[5] आंगुली।
उपरा कठन पयउहर काजला रेषि[6] ॥
बोलती बोलइ छइ[7] कालरी[8]।
उपरइ सोवन चुडली झलकइ[9] हाथि ॥
चूडि कहइ कइ[10] चूडिलउ।
थे तउ[11] वीरी तिण[12] घण कइ हाथि ॥२११॥

तब जोगी कु[13] पुछइ राउ[14] ॥
थे किणि विधि[15] परि मंडल[16] जाउ ॥

---

१. आ० १२ सांभलि।
२. अ० २, आ० ६ सुणि त्रीभुवन नाथ।
३ + ४. अ० २, आ० ६ पदम कमल छै।
५. आ० १२ सी।
६. आ० १२ काजल रेह।
७ + ८. अ० २, आ० ६ छइ आकुली।
९. आ० १२ छलक इछै।
१०. आ० १२ कहौकि।
११. आ० १२ ( में नहीं है )। १२. आ० १२ चीरी दीज्यो।
यह छंद अ० २ खंड ३ में ७१, आ० ६ खंड ३ में ६८,
आ० ९ में २१३ तथा आ० १२ में २०६ है।
लेकिन अ० २ में ३, ४, ५, इस प्रकार है :—
३. हिव होमी काचकी कामली।
४. रीस भूलउ रे प्रभु उणीहार।
५. जोगी गोरडी इणि उणीहार।
१३. आ० ९ तब जोगिनै, आ० १२ तत षिण जोगीनै।
१४. आ० ९ पूछइ ततषिण राउ, आ० १२ पूछै छै राउ।
१५. आ० १२ किणि विधि थे। १६ आ० ९ परमंडलै।

कुवण[1] विद्या छइ तुम्ह कन्हइ ।
स्वामी कइ तुम्ह जाणउ तेतक मंत[2] ॥
कइ तुम्ह कावा साधना[3] ।
स्वामी[4] कइ परकाइ[5] थे[6] करउ प्रवेस ॥
कइ पंथी हुइ संचरउ ।
नाथ जी किम साधउ[7] परदेस ॥२१२॥

तब[8] जोगिनउ सिध बोलइ तिण ठाइ[9] ।
वचन हुइ म्हाका[10] सांभलउ राउ[11] ॥
गुटक[12] विद्या छइ[13] म्हा[14] कन्हइ ।
म्हे[15] गुटकउ गिन्नी करा[16] गुर उपदेसि[17] ॥

---

१. आ० १२ कवण ।
२. आ० १२ मंतकि तंत ।
३. आ० १२ तुम्हे काई साधना ।
४. आ० १२ ( में नहीं है ) ।
५. आ० १२ परकाया ।
६. आ० १२ ( में नहीं है ) ।
७. आ० १२ किणपरि साधउ ।

यह छंद आ० ६ में २१४, तथा आ० १२ में २०७ है ।

८. आ० १२ ( में नहीं है ) ।
९. आ० ६ तिह ठांइ ।
१०. आ० १२ म्हाका वचन हुइ ।
११. आ० १२ सांभलि राइ ।
१२. आ० १२ गुटिका ।
१३ + १४. आ० ६ छै अम्ह, आ० १२ अछै म्हां ।
१५. आ० १२ ( में नहीं है ) ।
१६. आ० १२ करु ।
१७. आ० ६ गुरूपदेस, आ० १२ उपदेस ।

आवि ठमका माहि संचरा[1] ।
म्हे तउ अण विधि [2]राव साधी[3] परदेस ॥२१३॥

थे तउ चालउ हो[4] जोगी न लावउ वार ।
ततखिण जाइ जणविज्यो[5] सार ॥
राजमती राणी नइ अम[6] कहे ।
गोरी घर नइ उमाहियउ वीसलराउ ॥
तुरीय पलाण्या[7] छइ काहिजा[8] ।
दिन विहु माहि मिले सीय[9] आइ[10] ॥२१४॥

तवइ जोगिनउ चालिउ छइ[11] गुहिकउ थइ ।
सींगो नाद पूरउ[12] तिण ठाइ ॥
गुरू का वचन समरण कर्‍या[13] ।
उडु तउ[14] धरतो भूमि न देईय[15] पाउ ॥

---

१. आ० १२ संचरू ।
२. आ० ६ म्हे हणाविधि, आ० १२ इणिविधि ।
३. आ० ६ राव नाधां, आ० १२ साधाराव ।
यह छंद आ० ६ में २१५ है तथा आ० १२ में २०८ है ।
४. आ० १२ ( में नहीं है ) ।
५. आ० १२ जाणेज्यो ।
६. आ० १२ इम ।
७. आ० १२ पलाणीय ।
८. आ० ६ काहिजा, आ० १२ पाधर्‍या ।
९ + १०. आ० ६ तुम्हां मिलिस्यइ राइ, आ० १२ मिलसी आइ ।
यह छंद आ० ६ में २१६ तथा आ० १२ में २०६ है ।
११. आ० १२ ( में नहीं है ) ।
१२. आ० १२ सागानाद पूरइ ।
१३. आ० १२ समरथणा ।
१४. आ० १२ उडनो ।
१५. आ० १२ मूलन देवइ ।

दूसरी ख्याति करि गम करइ।
जोगी दुजइ दिन आवयउ संभरि माहि ।।२१५।।

तब जोगनउ[1] आवइ[2] हो संभरि माहि।
नीकी नगरीय सूबस बसाइ ।।
नवखणी नवि खंड[3] जाणिजइ[4]।
तठइ[5] पाट मढे दे राणी कीयउ[6] बोलाय ।।
बोलख दे की भूजखा[7]।
राणी राजमती नइ देज्यो जाइ ।।२१६।।

ठणरा[8] आहर फहूकइ[9] लहलहइ[10] बाह।
कइ खिवे[11] मोकलइ कइ मिलइ आप ।।
अहर[12] फहूकइ[13] तन[14] कवइ[15]।
ढखिरह कडीया चारी[16] पुणिमा रह ठाइ[17]।।

---

यह छंद आ० ६ में २१७ तथा आ० १२ में २१० है।
लेकिन आ० १२ में अन्तिम दो पंक्तियाँ नहीं हैं।

१. आ० १२ नवयोगिनौ। २. आ० १२ आयो।
३. आ० १२ नवषंडा। ४. आ० १२ जाणीये।
५. आ० १२ (में नहीं है)।
६. आ० १२ कीयो।
७. आ० १२ भूजडी।

यह छंद आ० ६ में २१८ तथा आ० १२ में २११ है।

८. आ० १२ उणिका। ९. आ० १२ फरुके।
१०. आ० १२ लहाके। ११. आ० १२ कै लेषण।
१२. अ० २, आ० ६ अङ्ग।
१३. आ० १२ फरूके।
१४+१५. अ० २ चित हसै, आ० ६ मन हंसइ, आ० १२ तन लहे।
१६. अ० २ के हड्या रो (आ० ६ को) चीर।
१७. अ० २ खीसेखीसो (आ० ६ खसखस) जाय।

मौमन अधिक ऊमाहइउ।
जाण्उ आज मिलसइ[1] सषी सामरि वाल[2] ॥२१७॥

तव जोगिनउ गढ़ अजमेर।
फिरि करि दीठाजी[3] च्यारं देस[4] ॥
पडखिषा पडलि उघाडि नइ।
तउ तउ[5] राजमती राणी नइ देषाइ ॥
खिषउ[6] आयउ राउ चहुआण कउ।
हउ[7] मुषि वचन कहंउ[8] समुझाइ ॥२१८॥

---

१. अ० २ तुझ मिलसी, आ० ६ सफै तो मिलै मोहि, आ० ६ जाणो आज मिलै, आ० १२ जांणु आज मिलै।

२. अ० २ आ० ६ सींचरयो राइ, आ० १२ सांभरिराइ ।

यह छंद अ० २, खंड ३ में ७८, आ० ६ खंड ३ में ७७, आ० ६ में २१६ तथा आ० १२ में २१२ है।

लेकिन अ० २ और आ० ६ में १ पंक्ति है—आज सषी म्हारो फरकै अंग।

२ पंक्ति है—नहीं है।

५ पंक्ति है—हेत (आ० ६ चित्त) जणायो है सषी।

३. आ० १२ ( में नहीं है )।

४. आ० ६ च्यारिउं सेर, आ० १२ चारू सेर।

५. आ० ६ तो।

६. आ० १२ खिष्यो।

७. आ० १२ हु।

८. आ० १२ वचने कहुं।

यह छंद आ० ६ में २२० तथा आ० १२ में २१३ है।

लेकिन आ० १२ में १ली पंक्ति है:—

"योगनउ पहुतो गढ़ अजमेर।"

४ थी पंक्ति है:—"राणी राजमती नै देहि बोलाइ।"

ऊठइ जोगीनइ राखी कीयउ आदेस ।
भगवा कापड़ा गइया वेस ॥
कुसल कुसल पाहुस कहइ[1] ।
ऊभा थउ गोरडी[2] दीठी निर्मल गात्र ॥
दुखि दाधी पंजर हुइ[3] ।
ऊथिरइ[4] दिवस न भूष न नींदडी रात्रि[5] ॥२२०॥

तब[6] जोगिनउ द्वारइ[7] बइठउ जाइ ।
सीस जटा घट[8] भस्मीय लाय ॥
आवइ भँतेवर कलकली[9] ।
उतउ[10] सुलखित वाखी कहइ संदेस ॥
राजमती सूं[11] कह[12] जोगीयउ[13] ।
गोरी दिन चिहु माहि आवेसी घराइ नरेस[14] ॥२२१॥

---

१. आ० १२ कहै ।
२. आ० १२ गोरी ।
३. आ० १२ पंजरि हुई ।
४. आ० १२ उथाभइ ।
५. आ० १२ राति ।

यह छंद आ० ६ में २२२ तथा आ० १२ में २१५ है ।

६. आ० १२ (में नहीं है) ।
७. आ० ६ द्वारे, आ० १२ बारणइ ।
८. आ० ६ घटि, आ० १२ घटि ।
९. आ० १२ कलनली ।
१०. आ० १२ (में नहीं है) ।
११ + १२. आ० ६ सुंदु, आ० १२ सुं कहै ।
१३. आ० ६ जोगिनउ, आ० १२ जोगीयो ।
१४. आ० १२ आविसी घरा नरेस ।

यह छंद आ० ६ में २२३ तथा आ० १२ में २१६ है ।

तठइ जोगीनइ राखी कीयउ आदेस।
भगवा कापड़ा महुआ वेस॥
कुसल कुसल पाइस कहइ[1]।
ऊभा तउ गोरडी[2] दीठी निर्मल गात्र॥
दुषि दाधी पंजर हुइ[3]।
डषिरइ[4] दिवस न भूष न नींदडी रात्रि[5]॥२२०॥

तब[6] जोगिनउ द्वारइ[7] बइठउ जाइ।
सीस जटा घट[8] भस्मीय लाय॥
आषइ भैतेबर कलकली[9]।
उतउ[10] सुलषित वाणी कहइ संदेस॥
रातमती सं[11] कह[12] जोगीयउ[13]।
गोरी दिन चिहु माहि आवेसी घराह नरेस[14]॥२२१॥

---

१. आ० १२ कहै।
२. आ० १२ गोरी।
३. आ० १२ पंजरि हुई।
४. आ० १२ उणभइ।
५. आ० १२ राति।

यह छंद आ० ६ में २२२ तथा आ० १२ में २१५ है।

६. आ० १२ ( में नहीं है )।
७. आ० ६ द्वारे, आ० १२ बारणइ।
८. आ० ६ घटि, आ० १२ घटि।
९. आ० १२ कलनली।
१०. आ० १२ ( में नहीं है )।
११+१२. आ० ६ सुंदु, आ० १२ सु कहै।
१३. आ० ६ जोगिनउ, आ० १२ जोगीयो।
१४. आ० १२ आविसी घरा नरेस।

यह छंद आ० ६ में २२३ तथा आ० १२ में २१६ है।

स्वामी कवण[1] देसावइ[2] कवण[3] सुठाइ[4] ।
थारइ परसण कइ बलिहारी[5] जाउ ॥
घाघल्या जउ थारो जीभ को ।
स्वामी दिन बहुमाहि जे[6] आवइ[7] राइ[8] ॥
रतन जड़त घृड[9] मेखला ।
थारइ[10] सोना की मुद्रा व घालुं[11] जी कानि ॥
भयणे राव जब[12] देषिस्यउ ।
जोगी वचन साचउ करे[13] म्हारउ मानि ॥२२२॥

चीरी दीन्ही[14] जोगी[15] राणी कइ[16] हाथि ।
सात सखी[17] मिल्लि[18] चालीय[19] साथि ॥

---

१+२. आ० ६ कोण दिसाउर, आ० १२ कवण देसंतरी ।
३+४. आ० ६ कौण सुठाउ ।
५. आ० ६ बलिय ।
६+७. आ० ६ जो आवे, आ० १२ में 'जे' ( नहीं है ) आवि ।
८. आ० ६ आप ।
९. आ० ६ घउं, आ० १२ घु सीगी ।
१०. आ० १२ थारै ।
११. आ० १२ घालु ।
१२. आ० १२ राव जी ।
१३. आ० १२ स्यचो करे ।

यह छंद आ० ६ में २२४, तथा आ० १२ में २१८ है । लेकिन तीसरी पंक्ति में प्रथम शब्द अस्पष्ट है शेष पक्ति इस प्रकार है:— ल्यु थारा जीभ को ।

१४+१५. अ० २ मेहली षण, आ० ६ मेली षण, आ० ६ दीन्ही, राणी, आ० १२ चीरी दीन्ही योगी ।
१६. आ० ६ जोगी कै, आ० १२ षण कै ।
१७. अ० २, आ० ६ पांच सहेली ।
१८+१९. अ० २ मिलि षण, आ० ६ लाषा ।

जाइ बइठी सखे चउषंडी[1] ।
उतउ पहिलीयवाचउ मनकइ[2] उल्हासि ॥
सायया आषिकइ[3] सोर ज्यु[4] ।
बात जाणित[5] बइठउ[6] पीयउ[7] कइ[8] साथि[9]॥२२३॥

चीठी राची गोरी[10] गल[11] लाइ[12] ।
जाणि कि बाछड़ा[13] मिलोय[14] छइ गाइ ॥
नयणा थी लोही[15] चुवइ[16] ।
उवातउ परिहसि रूनी[17] भीनउ छइ[18] हार[19]॥

---

१. अ० २, आ० ६ करि बैठी चउषंडी, आ० १२ जाइ बैठी सषी चोषंडी।
२. अ० २ ऊपली आलि, आ० ६ ऊपली मोली, आ० ६ मनइ उल्हास।
३. अ० २ षेलती, आ० ६ खेलत, आ० ६ आंषि।
४. अ० २ कसोर ज्युं, आ० ६, आ० ६ किसोरज्युं।
५. आ० ६ उवा तो जाणि कि।
६. अ० २, आ० ६ बइठी, आ० ६ बैठी उवा कइ।
७+८. अ० २ प्रीव की, आ० ६ पीउकी।
९. अ० २, आ० ६ षोलि।

यह छंद अ० २ खंड ३ में ७६, आ० ६ खंड ३ में ७६ आ० ६ में २२५, आ० १२ में २१६ है।

लेकिन आ० १२ की अंतिम तीन पंक्तियाँ हैं—

"पहिली वांच्या मनइ उल्हासि।
जाणि कि वाघडे सोर ज्युं।
जाणि करि बैठी पीउ तणै पासि।"

१०. अ० २, आ० ६ वण।
११+१२. अ० २ हीयडउ लगाइ, आ० ६ ही घायडलै लाइ, आ० ६ गलिच लाइ, आ० १२ गले लगाइ।
१३+१४. अ० २ बाछुरू है मेल्ही, आ० ६ बाछुरू ही डेली, आ० १२ बाछुडे मिलोय।
१५+१६. अ० २ आंसू खेरिया, आ० ६ आंसूषरयां, आ० १२ लोही चुवै।
१७. आ० ६ करे पर हुंसो।
१८. आ० ६ भरा।   १६. आ० ६ भंडार।

जिण[1] विण घडीय न जावता[2] ।
हिवइ ताइ स्य हुइ[3] चीरी विवहार ॥२२४॥

तठइ सात[4] सहेली बइठी छइ आइ ।
जो लिषउ[5] भोलो[6] ते हमहिं[7] सुषाइ ॥
लालच लीषउ[8] हे बहिनडी ।
म्हाकइ साम्हइ[9] हीयडइ[10] जीमणी[11] कूष ॥
दुइ दुष लागा था प्रीउ[12] का[13] ।
सषी कन्त सरेषी षेलती फाग[14] ॥
घणा विसहर[15] प्रीयउ गारुडी ।
ते गुण लिष्या हे सँभरि बाल ॥२२५॥

---

१. अ० २ जीवन, आ० ६ ज्या ।
२. आ० १२ जीवती ।
३. आ० १२ जाइ संहूयउं ।
यह छंद अ० २ खंड ३ में ८०, आ० ६ खंड ३ में ७८, आ० ६ में २२६ तथा आ० १२ में २२० है । लेकिन अ० २ में चौथी पंक्ति है---
"कब में भेटस्या सामऱ्या राव ।"
४. अ० २ आ० ६ पंच ।
५. अ० २ लिषी सखी, आ० १२ लिष्ये ।
६. अ० २ तैरय, आ० ६ तेरो ।
७. अ० २ तेसषी, आ० १२ सो हमहि ।
८. आ० ६ लिष्यो है, आ० १२ लिष्यो ।
९. अ० २ सामहै, आ० ६ सांघी, आ० १२ साम्हो ।
१०. आ० ६ हूइ ।
११. अ० २, आ० ६ डावी जो ।
१२. अ० २ साम, आ० ६ देव, आ० १२ प्रीय ।
१३. आ० १२ काकन ।
१४. अ० २ करत आलि ।
१५. आ० ६ प्रीयविसारि ।

उतउ[1] मूषउ जोगिनउ[2] नवि[3] कहइ वात ।
उणि उवइ[4] भंइसि मउ[5] पहीय नइ षेउर[6] भात[7] ॥
दूष कटोरइ पाइसुं ।
आछा चावल घणीय निवात ॥
सुसतउ जीमे वीरा[8] जोगीया ।
हिवइ हसि हास कहउ म्हारा पीयकी[9] बात ॥२२१॥

---

यह छंद आ० २ खंड ३ में ८८, आ० ६ खंड ३ में २६, १२ में २२१ है। लेकिन आ० १२ मे छठी और सातवीं पंक्तियाँ हैं :—

६. "सरेसीय षेलै थी आल ।"
७. "विसहर िय गारुडी ।"

१. आ० १२ ( में नहीं है ) ।
२. आ० १२ भूपो जोगनउ ।
३. आ० १२ न ।
४. आ० १२ ( में नहीं है ) ।
५. आ० ६ रउ, आ० १२ कौ ।
६. आ० ६ घी अरु, आ० १२ घणीय ।
७. आ० १२ वात ।
८. आ० १२ म्हारा ।
९. आ० ६ प्रीतणी, आ० १२ प्रीउको ।

यह छंद आ० २ खंड ३ में ८१, आ० ६ खंड ३ में ७६, आ० ६ में २४८, आ० १२ में २२२ है। लेकिन आ० ६ में इसकी पाँचवीं पंक्ति नहीं है तथा आ० २ और आ० ६ में इसका पाठ है :—

"जोगी था कौनु कहइ हो वात ।
दूषइन्निहावऊँ ( आ० ६ तावटनै ) घणी निवात ।
भैंस को दहीय र गरड़ा को ( मैं सीलो–आ० ६ ) भात
सूसतो ( सांसतो–आ० ६ ) बी मे वीरा जोगिया ।
पद मिणि आगलि ( अंगै–आ० ६ ) घालइ छइ वाइ ।

तउ ऊफणइ[1] दूध नइ[2] थाट ड[3] भात ।
मरिह मखिह[4] आज पकसिस्या[5] ॥
उफणिनइ[6] दूध कटोरइ घणीय निवात ।
वीघडउ[7] दही नइ[8] नान्हो[9] भात ॥
आगइ बइसिनी मावूस[10] ।
हूँ तउ हसि पूछिस्यं म्हारा प्रीय की वात ।
तिणइ विलंबीहिव कहउ ।
स्वामी मोनइ दीन्ही था जीमणी बांह ॥
ता जोगी पाळा नहीं ।
हिवइ कवे घरि आवइ हो धण को नाह ॥२२७॥

---

आगलि बइसी जीमावीयउ ( आ० ६ जीमाडीयउ ) ।
हसि हसि पूछइ प्रीउ की वात ।

आ० १२ में तीसरी और चौथी पंक्तियाँ नहीं हैं ।

१. आ० १२ उफिणै ऊन्होवी ।
२. आ० १२ अरु ।
३. आ० १२ ठाढो ।
४. आ० १२ मांज ।
५. आ० १२ पकसस्या ।
६. आ० १२ ( में नहीं है ) ।
७. आ० १२ वाघडीयो ।
८. आ० १२ अस ।
९. आ० १२ न्हुन्होजी ।
१० आ० १२ मावस्युं ।

यह छंद आ० ६ में २२६ तथा आ० १२ में २२३ है ।
लेकिन आ० १२ में छठो तथा अंतिम पंक्तियाँ हैं :—

६. हसि हसि पूछै स्युं प्रीय तणो वात ।
अंतिम ६. "हिव कांद आवै हो धण कउ नाह ।"

छिव ल्यावइ छइ अरथ दरब भंडार ।
ल्यावइ छइ तेजीय तरल तोषार[1] ।।
ल्यावइ छइ हीरा पाथर्‍या[2] ।
नव गज[3] हस्तीय कूञर च्यारि[4] ॥
कहउ हमारो गोरी जे सुषउ ।
कालिह मेल्हावे[5] एतीय वार ।।२२८।।

राय[6] चउरासीया[7] देइ[8] छइ सीष ।
ठमकती ठमकती चालिज्यो वीष ॥
तुरीय मलाविज्यो तिजि साउ[9] ।
पावन[10] वाहनइ[11] जिम संचरइ राइ ॥

---

१. आ० १२ तेजी तरल तुषार । २. आ० १२ पाथरी ।
३. आ० १२ नवगजा । ४. आ० १२ च्यार ।
५. आ० १२ मिलावुं ।

यह छंद आ० २ खंड ३ में ८३, आ० ६ खंड ३ में ८०, आ० ६ में २३० तथा आ० १२ में २२४ है। लेकिन आ० २ और आ० ६ में इसका पाठ इस प्रकार है :—

जोगी कहइ सुणि मोरी माई ( माय-आ० ६ ) ।
दिन तीसरई आवई घरी राय ( तोरी नाह-आ० ६ ) ।
हमरै देही ( हमही देउ-आ० ६ ) बधामणी ।
दीषा मोती अरथ भंडार ।।
दीषा हीरा पाथरी ।
कालिह आवइ राजा एताय वार ।।

आ० १२ में पहली पंक्ति नहीं है ।

६. आ० ६ राउ, आ० १२ राउ ।
७. आ० ६ चोरासीया नै । ८. आ० १२ दीयै ।
९. आ० ६ तुरीय म लाविज्यो ताजणउ, आ० १२ तुरीय मलावज्यो ताजणौ ।
१०+११-आ० १२ पवन वाहना ।

सुन्दरी आइ हीयडइ चढ़ी ।
रहे तउ[1]पाणीय पीस्यां[2]उवा[3]कन्हइ जाय[4]॥२२६॥

नयर उडीसा थी चढ़इ[5] राइ ।
आसणि हयवर लाघ पसउ[6] ॥
ठकुराला सवे[7] गयल छइ ।
तठइ[8] जुलमती तुरीय चउरासिया साथि ॥
मंजिल मंजिल तुरी गटीयाइ[9] ।
उतउ[10] दिवस गिणइन गिणइ राति ॥
चोतलता चिति गोहडि वसा[11] ।
तठइ धुरि हस्या ढोल[12]नइ भरहरी भेरि ॥
राजा मनिहि आणंदीयउ[13] ।
जब दिठि दीठउ गढ अजमेर ॥२३०॥

---

१. आ० १२ ( में नहीं है ) ।
२. आ० १२ पीस्यौं ।
३ आ० १२ उणि ।
४. आ० १२ जाइ ।
यह छंद आ० ६ में २३१ तथा आ० १२ में २२५ है ।
५. आ० १२ चढीयोछै ।
६. आ० १२ पसाउ ।
७. आ० १२ सवि ।
८. आ० १२ ( में नहीं है ) ।
६. आ० ६ पालटीयैं, आ० १२ पालटै ।
१०. आ० १२ ( में नहीं है ) ।
११. आ० ६ चालता चित्त बसी गोरडी, आ० १२ चालतां चिति गोरी वसी ।
१२. आ० ६ तठै घुराह्या ढोल, आ० १२ घुरहर्या ढोल ।
१३. आ० ६ राजामति आनंदीयो, आ० १२ राजाभनि आणदीयो ।
यह छंद आ० ६ में २३२ तथा आ० १२ में २२६ है ।

आज सखी तबहटी घुरइ नीसाण ।
घरि आवउ[1] बीसल चहुआण ॥
घरि घरि रचीय बधामणी ।
घरि घरि तोरण[2] मंगल च्यारि[3] ॥
घरि घरि गुडी ऊछलइ[4] ।
अब सखी[5] घरि आवियउ[6] मुखि[7] भरतार ॥२११॥

जब घर आवियउ[8] मुखि[9] भरतार ॥
परजन जिम विण करइ[10] सिणगार ॥

---

१. आ० १२ आयो ।
२. आ० १२ (में नहीं है) ।
३. आ० १२ चार ।
४. आ० ६ ऊछली, आ० १२ ऊछली ।
५. आ० १२ अबसी ।
६. आ० १२ आयो ।
७. आ० १२ मुझ ।

यह छंद अ० २ खंड १ में ८६, आ०६ खंड ३ में ८४, आ० ६ में २३३ तथा आ० १२ में २२७ है । लेकिन अ० २ और आ० ६ में इसका पाठ है :—

छित्र बारमइ बरस घरि आवीयउ राउ ।
वाजित्र वाजिया निसाणे घाउ ॥
घरि घरि गूड़ी ऊछली ।
घरि घरि तोरण मंगल च्यार ॥
रानी कुवरि हरषी फिरइ ।
जउ घरि आवीयउ मुंध भरतार ॥

८. आ० १२ आयो ।
९. आ० ६ सैं, आ० १२ मुख ।
१०. आ० १२ घण करै ।

भुमह[1] कोवंड[2] चढ़ोढिया ।
नव कुच कंचू[3] मेल्हा पंची ।।
कंत पियारइ[4] कारणइ ।
तिण कारणि घण मेल्हीया संचि ।।२१२।।

धरि आव्याउ[5] सषी मुंभिकउ कंत ।
सावण स्वामि सिउ[6] मिलिग हसंति ।।

---

१. आ० १२ तुमह ।
२. आ० १२ कोवड ।
३. आ० १२ पियारा ।
४. आ० १२ कुंच ।

यह छंद अ० २ खंड ३ में ६६, ६७ आ० ६, खंड १ में ६४, ९५ आ० ६ में २३४ तथा आ० १२ में २२८ है। लेकिन अ० २ और आ० ६ के क्रमशः ६६ और ६४ का पाठ है :--

बारा बरसां मील्यो यन ( बव–आ० ६ ) नाह ।
अरजण ज्युं घण लीयो सनाह ।
कसतूरी मरदन ( मैपट–आ० ६ ) कीयो ।
झबरक ( झबकइ–आ० ६ ) दीवलै गहिरी बाह ।
सावण पान समारिया ।
चाह करि बैठी घण ( वैठी–आ० ६ ) प्रीउ की षाट ।

तथा अ० २ के ६७ और आ० ६ के ६५ का पाठ है :–

अरजण ज्यु घण कीयो सनाह ।
गलि पैहरयो टंकाडिलो ( टंकावल–आ० ६ ) हार ।
कंचु ( कंचुकी–आ० ६ ) कसण ते (तब–आ० ६) खोलिया ।
कूं कुं चन्दन सरह ( तिलक–आ० ६ ) स्यंदूर ।
कर जोडे (जोड़ी–आ०) नरपति कहइ (नाल्होकवि–आ०६) ।
कामनी कंत सुरंग रमइ रस ( रमि–आ० ६ ) पूर ।

५. आ० १२ आयो ।
६. आ० ६ सावण मिली ।

कळस जवारा वावीया[1] ।
हरष चढ़ी घण बोलइ[2] बोल ।।
वीसल देव घरे आवीया[3] ।
वाजा हो वाजीया[4] जागीय ढोल[5] ।।
आनंद[6] वधावा ऊछल्या ।
झंमणं भाट करइ[7] छइ[8] वंषाण ।।
आज संसार सूषस वस्यउ[9] ।
सषि जयउ घरि[10] आवीयउ वीसल चहुआण[11] ।।२३३।।

छीटकउ[12] उलवट[13] छूना कउ चाउ ।
ठमकती ठमकती[14] मेल्हइ छइ पाउ[15] ।।

---

१. आ० १२ वहीया।
२. आ० १२ बोलीया ।
३. आ० ६ आईऊ, आ० १२ आवीयो ।
४. आ० १२ वजै ।
५. आ० ६ वाजिया ढोल ।
६. आ० १२ आणंद ।
७. आ० १२ तिहा करइ ।
८. आ० १२ (में नहीं है) ।
९. आ० १२ सूभर वस्यो ।
१०. आ० १२ जो घरि ।
११. आ० १२ राय चौहाण ।

यह छंद आ० ६ में २३५ तथा आ० १२ में २२६ है ।

१२. अ० २ चौथा को, आ० १२ छीट कौउ ।
१३. अ० २ लेहँगो ।
१४. आ० १२ ठमिक ठमिक ।
१५. अ० २ देल्हइ पाव, आ० ६ मेल्हइ पाउ, आ० १२ घण मेल्है पाउ ।

मन्दिर चालौ पीयउ कइ।
चोवा चन्दन भरउ[1] कचोल॥
सेज पहुती सुंदरी।
तठइ[2] सगुण स्वामी सुँ करइ किलोल॥२३४॥

सूकडम्यउ[3] घण पोखीयउ अंग।
सीस ससौभित[4] माडिय[5] मंग॥
किस्तागर चोवउ लोयउ[6]।
उणि[7] गलि पहिरउ कुसुमावलि माल[8]॥
झबकि करि दीवउ बोलियो[9]।
तठइ माईया[10] हूया छइ[11] मुंध भरतार॥

१. आ० ६ भर्यो, आ० १२ भर्यो।
२. आ० १२ ( में नहीं है )।

यह छंद अ० २ खंड ४ में ४०, आ० ६ में २३६ तथा आ० १२ में २३० है लेकिन अ० २ में इसकी ३, ४, ५ तथा छठी पंक्तियों का पाठ है:—

३—आवी अवासइ साचरी।
४—हीयडइ हरीय मन रंग अपार।
५—मन मोहाडउ आज कउ।
६—कुवर जगायउ छइ बीसल राउ।

३. आ० ६ सूकडि सिउं, आ० १२ सुकडिसु।
४. आ० १२ सीसै सोभित।
५. आ० ६ माडियउ।
६. आ० १२ चोवो लीयो।
७. आ० १२ ( में नहीं है )।
८. आ० १२ हार।
९. आ० १२ सजोइयो।
१०. आ० १२ साइय।
११. आ० १२ ( मे नहीं है )।

पान आडगरो[1] चाविजइ ।
काथ सोपारी नइ फडस कपूर[2] ॥
साजति हुइ[3] सेजड़ी[4] ।
राव[5] राणी हुआ लपट[6] चूरि ॥ ३५॥

बारा वरसा[7] घरि आवीयउ राउ[8] ।
हीयडलइ हाथ गला माहे बाह[9] ॥
अवली सवली चुवडां[10] ।
अति रंग थो राजा[11] लीयइ टाप[12] ॥
सखी सहेली चमकउ हुवउ[13] ।
म्हाबइ भइरव बउ दं चूउ[14] भीनउ छइ पीक[15] ॥ ३६ ।

१. आ० ६ अडागरा ।
२. आ० ६ अरु पडसीयो कपूर ।  ३. आ० ६ सजति हुइ ।
४. आ० १२ सेज चढ़ी ।
५. आ० ६ तठै, आ० १२ तठै राव ।
६. आ० १२ लट ।
यह छंद आ० ६ में ३३७ तथा १२ में २३१ है । लेकिन आ० १२ में सातवीं पंक्ति नहीं है । तथा आठवीं पंक्ति इस प्रकार है :–
"सुन्दरी छांडीया सुरभि कपूर ।"
७. आ० २ बारमइ बरस ।
८. आ० ६ किरीयो नाह आ० ६ आवीयो नाह, आ० १२ आवीयोनाह ।
९. आ० ६ षवा माहि बाह, आ० १२ अक भरि बाह ।
१०. आ० २, आ० ६ चूडली, आ० १२ करै आ चूंवणी ।
११. आ० २, आ० ६ अति रग थी स्वामी, आ० १२ अति रत भरि राजा ।
१२. आ० २ भरिजेहै पीक, आ० ६ भज्यो छे पीक ।
१३. आ० ६ सहे सहेली चमको, आ० १२ सही सहेली चमकै हुवै ।
१४. आ० २ अति रंग स्वामी, आ० ६ म्हारी भैरव चोली, आ० १२ म्हाका भैरव को कंचुउ ।
१५. आ० २ भरिजै छै पीक, आ० ६ काई भरी पीक, आ० १२ भीनो छै पीक ।

हडि हडि हसइ[1] आलिंगण देइ[2]।
पलिंगि न बइसइ न[3] पान न लेइ ॥
ऊभी दे[4] उलंभड़ा[5]।
तोडइ कइ अंगुली[6] मोडइ छइ[7] बांह ॥
पुरष भरोसउ[8] ना करां[9]।
तइ तउ बरस बारह की मेल्ही हो[10] नाह ॥८३७॥

टम कला[11] मुमकला[12] मो न[13] सुहाइ।
धण कइ हियडलइ[14] हाथ मलाइ ॥

यह छंद अ० २ खंड ३ में ६८, आ० ६ खण्ड ३ मे ६६, आ० ६ में ७३ तथा आ० १२ म ८३२ है।

१. अ० २ आ० ६ रूठी गोरी, आ० १२ हड हड हसै।
२. अ० २ अम्यग नू नेहि, आ० ६ अंग न लाय, आ० ६ आलिंग देइ।
३. अ० २, आ० ६ नवि, आ० १२ न बैसइ।
४. अ० २ दइलइ. आ० १२ दीयय।
५. अ० २ औलंभा।
६. अ० २ करि लागइ करि, आ० ६ आंगुली गहिना, आ० १२ तोडै छै आंगुली।
७. अ० २ मोडपूछइ आ० ६ मुरडइ, आ० १२ छै।
८. अ० २ कंत भरोसो, आ० ६ कत भरूसो, आ० १२ पुरुष भरोसो
९. आ० ६ न करां, आ० १२ ना करो।
१०. अ० २ किम रहज्यो, आ० ६ किम रहीजै।

यह छंद अ० २ खंड ३ में ६४, आ० ६ खड ३ में ६२, आ० ६ में २३६ तथा अ० १२ मे २३३ है।

लेकिन आ० १२ में अंतिम पंक्ति है :—

"बरस बारह कीत मेलीय नाह।"

११ + १२. अ० २, आ० ६ चटकला मटकला।
१३. अ० २ मोहि।
१४. अ० २ धन कइ हीयडइ, आ० ६ धणकिहइयै, आ० १२ हीयडै।

आज नहीं प्रिय[1] निरमर्मा[2] ।
म्हारा हो वारउ[3] उलग जाइ ।
बालउ रे वेस[4] न देषही[5] ।
हिवइ निगुण मुहि किसइ मेल्हाहि ॥२१८॥

हे नकटी तूं पाट उतारि ।
गलि पहिरती फुला की मालि[6] ॥
नान्हो सउ[7] घुंघट काढ़ती ।
तउ गात[8] कउ वइ देतीय रालि[9] ॥

---

१+२. अ० २ प्रीय सर्भा मरममां, आ० ६ प्रीउ नेमरया, आ० १२ प्रिउ निरममा ।

३. अ० ७ मेल्ही काई, आ० ६ रावती मेल्हइ, आ० ६ म्हारो वार्यउ, आ० १२, म्हारउ वार्यउ ।

४. आ० ६ वालउ वीम, आ० १२ वालउ वैस ।

५. आ० ६ न देषडां, आ० १२ देषही ।

यह छंद अ० २ खंड ७ में ४३, आ० ६ खंड २ में ४०, आ० ६ में २४०, आ० १२ में २३४ है । लेकिन अ० २ और आ० ६ में ४, ५ हैं—

४. निगुणी राजा थारो किसौ वेसास ।

५. करकां बांधूं हूं दिन गिणू ।

आ० १२ में अंतिम पंक्ति है :—

"हिव निगुण मुह किसइ मिल्याइ ।"

६. आ० १२ फूल की माल ।

७. आ० ६ नान्हउ सउ, आ० १२ नान्हउ सउ ।

८. आ० १२ गात्र ।

९. आ० ६ डालि, आ० १२ पूंहे तीउलि ।

कोया[1] आजता[2] आकुडया[3] ।
म्हे तउ[4] तिथि घखि मेल्हीय माथइ मारि ॥२३९॥

तइ तउ उलग जाइ किसउ कीयउ नाह[5] ।
मोडिउ सीस[6] न दीन्हीय[7] बांह ॥
कठिन पटहर ना मिल्या[8] ।
तहं[9] तउ अंग सं अंग न मीडोयउ राउ ॥
जंघ जुगल जोड्या नहीं ।
राउ जी[10] सेजि विछाय, न पेखीय[11] पेखि ॥२४०॥

---

१. आ० ६ काया ।
२. आ० १२ आजत ।
३. आ० १२ अकुडा ।
४. आ० १२ ( में नहीं है ) ।
 यह छंद आ० ६ में २४१ तथा आ० १२ में २३५ है ।
५. अ० २ काई कियो नाह, आ० ६ तइं की कीयउ नाह, आ० १२ किसुं कियो नाह ।
६. अ० २, आ० ६ मोडाउ सीसो, आ० ६ मोल्यो सीसै, आ० १२ मोडीयो सीस नै ।
७. अ० २ नूसूतो, आ० १२ नहीं दीयो ।
८. आ० १२ मल्या ।
६. आ० १२ तइं ।
१०. अ० २ रंग भरि रयणि, आ० ९ राजा, आ० १२ राजा ।
११. अ० २ नू माडियो, आ० १२ बेलियो ।
 यह छंद अ० २ खड ३ मे १००, आ० ६ खंड ३ में ६८, अ० ६ में २४२ तथा आ० १२ में २३६ है । लेकिन अ० और आ० ६ म चौथी, पाँचवीं और छुठी पंक्तियाँ हैं:—
 ४. केली गरम सा तू मिल्या गात ।
 ५. जांघ जोडावी, नू नीरखीयौ ( आ० ६ न निरख्यो नाह । )

तब बोलइ वीसल चहुआण।
अजीय तूं सूंघ न मेलइ, मान[1]॥
इकु माण तुम्ह ही मलइ[2]।
वरस बारह छोडो[3] हे नारि॥
कुवचन था उलग गयउ।
अजू तूं गरब न[4] छोडइ गमारि[5]॥२४१॥

रूसणा। कयउ स्वामी सुणउ विचार।
रूसणा[6] मीठउ मुचि[7] भरतार॥
प्रीत परेवा[8] आगलो।
प्रीति थी[9] स्वामी माटली[10] नीर॥

और छठो पंक्ति उपर्युक्त छंद की अंतिम पंक्ति है। इसके अतिरिक्त इन दोनों प्रतियों में दो और पंक्तियाँ हैं—

देव सताजौ (राजाजी-आ० ६)
राजा तुं फिरइ (देव संतापीयो-आ० ६)
घीव वीसाही (घी वसायो-आ० ६)
तु जीमो छइ तेल (जीयो तेल-आ० ६)

आ० १२ में भी दो अतिरिक्त पंक्तियाँ हैं:—

"अमृत अधर न धूंटिया।
तइ तउ धा विणठ्यो अर जीमीयो तेल।"

१. आ. ११ मेल्है माण।
२. आ० ६ इहु माण तुम्हही मलै, आ० १२ इणि माणं तूंही माल।
३. आ० १२ 'बारह' और 'छोडो' के बीच में "लाग" है।
४. आ० ६ अजो गरब, आ० १२ अजीयतूं गर्वन।
५. आ० ६ तू न तिजै ममारि, आ० १२ तजै गवारि।
यह छंद आ० ६ में २४३ तथा आ० १२ में २३७ है।
६. आ० १२ रुसणो।
७. आ० १२ मु।
८. आ० १२ पारे।
९, आ० १२ माठा बोला।
१०. आ० १२ माछुला।

प्रीति मोरा अरु दादुरा।
प्रीति मीठो म्हाक[1] अरध सरीरि[2] ॥२४२॥

ऊलग पूगी[3] वरि आवइ भरतार।
नाग्गि करि उतरि[4] समुद्र कउ पार[5] ॥
कलंकन कोइ सिरि चढ़िउ[6]।
बाधतउ जोबन[7] विरह की झाल[8] ॥
खंछण कां लागयउ[9] नहीं।
म्हा तउ[10] पगि पगि सपीय न झंपियउ आल[11] ॥२४३॥

---

१. आ० ९ म्हाकै, आ० १२ म्हाकै।
२. आ० ९ अघर सरीर।
यह छंद आ० ९ में २४४ तथा आ० १२ में २३८ है।

३. आ० १२ पहुत्ती।
४. आ० २ जाणिक उलटइ, आ० ६ जाणि कि उतरइ, आ० १२ जाणि कि ऊतरि।
५. आ० २ समंद अथाह।
६. आ० २ अकलंक कलंक मौ चढ्यौ, आ० ६ अकलकलक मोहि न चढ्यो।
७. आ० २, आ० ६ सामुहो जोवन, आ० १२ वाधतै योवन।
८. आ० २ वीरह वीकराल, आ० १२ विरह की काल।
९. आ० १२ लागा।
१० ·२ ( म नहीं है )।
११. आ० २ सोतषा मडइ अ ल, आ० ६ सषा गो भाडता आल, आ० १२ झंगीयो आल।

यह छंद आ० २ खंड ३ में ८८, आ० ६ खंड ३ में ८६, आ० ९ में २४५ तथा आ० १२ में २३९ है। लेकिन इसकी पांचवीं पंक्ति आ० २ और आ० ६ में है:—

"आग वलइ दव ( वन--आ० ६ ) परजलै।"

धन्य हो पंडिया धन्य हो राइ ।
नफर षंदाया दिवस गिणाइ ॥
धन्य हो जोगी[1] दरसणो ।
जिणि वेगि ले मेलड धणकउ नाह[2] ॥
धन्य दिहाड़उ आज कउ ॥२४४॥

संवत सहस सत्तिहितरइ[3] जाणि ।
नल्ह कवीसरि कही अमृत वाणि[4] ॥
गुण गुथ्यौ चउहाण का ।
सुकल पक्ष पंचमी श्रावण मास ॥
रोहणी नक्षत्र सोहामणउ ।
सो दिन[5] गिणि जोइसी जोडइ[6] रास ॥२४५॥

---

१. श्रा० १२ जोगीय ।

२. श्रा० ६ मेलव्यउ धण को नाह, श्रा० १२ वेगिमिलायो धण को नाह ।

यह छंद श्रा० ६ में २४५ तथा श्रा० १२ में २४० है । लेकिन श्रा० ६ में उपर्युक्त ५, ६ नहीं हैं । और उपर्युक्त ३ के पूर्व निम्नलिखित और है :—

धन्य हो गोरी गुण भरी ।
धन्य हो पूरव्यउ समण कहाइ ।
धन्य वैरागर मत्रवी ।
भानुमती रमणी धन्य सभाइ ।

श्रा० १२ में दूसरी पंक्ति नहीं है तथा अंतिम पंक्ति के अतिरिक्त एक निम्न पंक्ति और है—

"राणी राजमती मिल्यो वीसल राउ ।"

३. श्रा० १२ तिहुत्तरै ।

४. श्रा० १२ सरसीत्रवाणी ।

५. श्रा० १२ सुदिन ।

६. श्रा० ६ जोइसी जोड्यो, श्रा० १२ जोडीयो ।

यह छंद श्रा० ६ में २४७ तथा श्रा० १२ में २४२ है ।

कनक काया जिसी[1] कूं कूं रोल[2] ।
कठिन पयोहर रतन[3] कचोल ॥
केलि गरभ जिसी कूंवली[4] ।
घीलइ[5] घण जउ पीचइ नीक[6] ॥
मोडिकडि चालइ[7] गोरडी ।
उण की विरह वेदना[8] ना सहइ कोइ ॥
जिउं राजा राणी[9] मिल्या[10] ।
त्यउ[11] नाल्ह कहइ[12] मिलियो सहु कोइ[13]॥२४६॥

---

१. अ० २ घट ।
२. अ० २, आ० ६ कूं कू लोल, आ० ६ कूंको रोल ।
३. आ० १२ हेम ।
४. आ० ६ कूंयली, आ० १२ रूपकी आगली ।
५. आ० १२ घीइल ।
६. आ० १२ ज्यं घण मोडै नाक ।
७. आ० ६ का चालउ, आ० १२ कडिमोडै चालै ।
८. आ० ६ वेदन ।
९. अ० २, आ० ६ राणीसुं ।
१०. अ० २, आ० ६ मिल्यो ।
११. अ० २ यं, आ० ६ ( में नहीं है ) आ० ६ त्युं, आ० १२ त्युं ।
१२. अ० २, आ० ६ इणी कजि, आ० ६ नल्ह कहै, आ० नाल्ह कहै ।
१३. अ० २, आ० ६ सब कोइ ।

यह छंद अ० २ खंड ३ मे १०१, आ० ६ खड ३ में ६६, आ० ६ में २४८ तथा आ० १२ में २४२ है ।

॥ समाप्त ॥

# परिशिष्ट

# परिशिष्ट (क)

## चित्तौड़ि-चित्तौड़

> तालतौ भोपाल ताल और सब तलइयाँ।
> गढ़ तो चितोड़ गढ़ और सब गढ़इयाँ।

चित्तौड़ गढ़ का किला रेलवे स्टेशन से करीब दो मील पूर्व एक अलग पहाड़ी पर बना है। यह पहाड़ी समुद्र की सतह से ऊँचाई में १,८५० फुट और आसपास की भूमि से ५०० फुट के करीब ऊँचा है। इसकी लम्बाई लगभग साढ़े तीन मील और चौड़ाई कहीं-कहीं आधे मील तक है। क्षेत्रफल करीब ७०० एकड है। पहाड़ी के नीचे सात हजार आबादी का एक बड़ा कसबा है। गढ़ पर पहुँचने में सात दरवाजे पार करने पड़ते हैं। सबसे पहले "पाडलपोल" नामक दरवाजा मिलता है।

यह किला मौर्य वंशी राजा चित्रांगद का बनवाया हुआ कहा जाता है। इसीलिये इसका नाम चित्रकूट पड़ा और चित्तौड उसी का अपभ्रंश है। विक्रम की आठवीं शताब्दी के अन्त में गुहिल वंशीय राजा बापा रावल ने राजपूताने के अन्तिम मौर्य वंशी राजा मान से यह किला छीन लिया, तब से गुहिलोतों के हाथ में यह है। इसपर कुछ समय तक मालवे के परमारों का तथा गुजरात के सोलंकियों व मुसलमानों का भी आधिपत्य रहा था। महाराणा उदय सिंह के समय ( सं॰ १६२४ वि॰ ) तक यह मेवाड़ की राजधानी रही। इस किले में कई देवमंदिर, राजमहल और ऐतिहासिक प्रसिद्ध स्थान हैं। जयमल और कल्ला की छत्रियाँ, रावल पता का चबूतरा, कुम्भ श्याम का मंदिर, तुलजा भवानी, अन्नपूर्णा, चत्रंग कुण्ड, कालिका देवी, अदबर जी, अद्भुत जी, सतबीस देवल आदि के मंदिर, सूर्य कुण्ड, भीमगोड़ी. गौमुख आदि तालाब, और पद्मिनी, जयमल, पत्ता, गोरा, बादल और हिंगलू, आहाड़ा के महल और महाराणा फतह सिंह का बनवाया नया महल दर्शनीय है।

चित्तौड़ किले पर सफेद संगमरमर का बना हुआ विशाल कीर्ति-स्तम्भ ( जय स्तम्भ ) बड़ा सुन्दर है। यह भारतवर्ष भर में अपने ढंग का एक ही स्तम्भ है। यह स्तम्भ महाराणा कुम्भा ने ६० लाख रुपये खर्च करके बनवाया था और यह मालवे के सुल्तान महमूद खिलजी पर सं॰ १४६७ ( ई॰ सं॰

१४४० ) में विजय प्राप्त करने की स्मृति में बना था। इस बड़े स्तम्भ से थोड़ी दूर पर जैनियों का सात खण्ड वाला स्तम्भ है जो ७६ फुट ऊँचा है। इसे विक्रम की १४ वीं शताब्दी में दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के बघेरवाल वैश्य सहनाय के पुत्र जीजा के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के नाम पर बनवाया था।

## नागोर

नागोर इसी नाम के परगने का मुख्य स्थान है और राजपूताने में बहुत प्राचीन नगरों में से एक है। संस्कृत ग्रन्थों में इसे अहिच्छत्रपुर या नागपुर कहा गया है। नागपुर का अर्थ नागों 'नागवंशियों' का नगर है। अहिच्छत्रपुर का अर्थ है अहि 'नाग' है छत्र 'रक्षा करने वाला' जिस नगर का, ये दोनों एक ही अर्थ के सूचक हैं। अतएव यह नगर प्राचीन काल में नागवंशियों का बसाया हुआ या उनकी राजधानी होना चाहिए। पुराने समय में अहिच्छत्रपुर जांगल देश की राजधानी थी और चौहानों का पूर्वज सामन्त यहां का स्वामी था, ऐसा बिजोल्यां 'मेवाड़' के वि० सं० १२२६ फाल्गुन वदि ३ 'ई० सं० ११७० ता० ५ फरवरी' गुरुवार के शिला लेख से ज्ञात होता है। यहीं से जाकर चौहानों ने सांभर को अपनी राजधानी बनाया। प्राचीन काल में चौहानों के अधिकार का सारप्रदेश अर्थात् सांभर, अजमेर आदि का राज्य सपादलक्ष्य 'सवालक' कहलाता था और अबतक जोधपुर राज्य का नागोर परगना "श्वालक" कहलाता है।

अजमेर पर मुसलमानों का आधिपत्य होने के कुछ समय बाद नागोर पर भी उनका अधिकार हो गया। तबसे प्राचीन मंदिर आदि नष्ट किये जाने लगे। प्राचीनता की दृष्टि से एक ही हाते में पास पास बने हुए शिव तथा मुरलीधर के मन्दिर महत्त्व के हैं। इनके स्तम्भ पुराने हैं।

तीसरा बरमायां का मन्दिर है, जो योगिनी का माना जाता है। इसके प्राचीन स्तम्भों पर खुदे हुए लेखों में से एक बिगाड़ दिया गया है—शेष दो पर वि० सं० १६१८ ज्येष्ठ बदि १३ ( ई० स० १५६१ ता० १२ मई ) और वि० सं० १६५९ चैत्र सुदि १३ ( ई० स० १६०२ ता० २५ मार्च ) के लेख हैं। मुसलमानों के समय के यहाँ बहुत से लेख हैं जिनमें सबसे पुराना मुहम्मद तुगलक के समय का एक दरवाजे पर खुदा लेख है। सन् अस्पष्ट है। यहाँ पर बादशाह अकबर के समय के तीन लेख हैं, जिनमें से एक हि० स० ९७२ ( वि० सं० १६२१-२२ : ई० स० १५६४-६५ ) का हसन कुली खाँ की मसजिद में, दूसरा हि० स० ९८५ ( वि० सं० १६३४ : ई० स० १५७७ ) का

अकबरी मसजिद में और तीसरा हसन कुली खाँ के बनवाये हुए फव्वारे पर है। "आईन-इ-अकबरी" आदि ग्रन्थों का रचयिता, अकबर का प्रीतिपात्र अबुल फजल और उसका भाई शेख फैजी नागोर के रहने वाले शेख मुबारक के बेटे थे।

**शाहजहाँ के समय का एक लेख हि० स० १०४६**

( वि० सं० १६९५ वैशाख सुदि ३ : ई० स० १६३८ ता० ७ अप्रैल ) का किले के एक मकान में और दूसरा हि० स० १०५६ ( वि० स० १७०३ : ई० १६४६ ) ताहिर खाँ की मसजिद में है।

औरंगजेब के समय के तीन लेख हैं, जिनमें से सबसे पहला हि० स० १०७१ ( वि० सं० १७१७-१८ : ई० स० १६६०-६१ ) का है। दूसरा हि० स० १०७६ ( वि० सं० १७२२-२३ : ई० स० १६६५-६६ ) का, जिसमें राव अमर सिंह के बेटे राव सिंह द्वारा ज्ञानी तालाब बनवाये जाने का उल्लेख है।

गुजरात के सुल्तान मुज़फ्फ़र खाँ ने अपने भाई शम्स खाँ को नागोर की जागीर दी थी, जिसने वहाँ अपने नाम से शम्स तालाब बनवाये। उसके पीछे उसका बेटा फीरोज खाँ वहाँ का स्वामी हुआ जिसने वहाँ एक बड़ी मसजिद बनवाई, जिसको महाराणा कुम्भा ने नगोर विजय करते समय नष्ट कर दिया।

जब महाराज अजीत सिंह अपने छोटे पुत्र बख्त सिंह द्वारा मारे गये तो महाराज अभयसिंह ने नागोर की जागीर बख्त सिंह को दे दी।

जेनरल कनिंघाम लिखते हैं कि बादशाह औरंगजेब ने जितने मंदिर यहाँ तोड़े उनसे अधिक मसजिदें बख्त सिंह ने तोड़ीं। इसी कारण यहाँ के कई फारसी लेख शहरपनाह की चुनाई में उल्टे-पुल्टे लगे हुए अबतक विद्यमान है।

## टंङ्क टोंक

राजपूतों का शहर टोंक अजमेर प्रान्त में है। बहुत वर्षों तक यह होल्कर राजाओं के अधीन था। जयपुर से दक्षिण ५० मील की दूरी पर यह अक्षांश २६ १२ उत्तर और ७५·३८ देशान्तर पूर्व में बसा हुआ है। सन् १८१८ में यह ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत आ गया।

## गुजरात

झेलम से लाहौर जानेवाली सड़क पर चनाब नदी से ९ मील पश्चिम में गुजरात शहर बसा हुआ है। इसका पुराना नाम हैरात था। कनिंगघ साहब का अपना मत है कि "हैरात" की उत्पत्ति "अरात्त" से हुई है।

( The Ancient Geography of India P. P. 205-206 )। इसके बसाने वाले सूर्यवंशी राजपूत वचन पाल थे, जिनके सम्बन्ध में विशेष बातें नहीं ज्ञात हैं। ऐसा कहा जाता है कि इसको पुनः स्थापित करने वाले गुजराज के राजा अली खाँ थे जिन्हें शंकर वर्मा ने सन् ८८३ और ६०१ के बीच पराजति किया था। इन कथाओं के अतिरिक्त यह भी कहा जाता है कि सन् १३०३ में गुजरात पूर्णतया नष्ट हो गया था और गूजरो ने इसे पुनः अकबर के शासन काल में सन् १५८८ में निर्मित किया।

## बनास

बनास नदी उदयपुर राज्य के प्रसिद्ध कुंभलगढ़ के किले से तीन मील दूर की पर्वत श्रेणी से निकल कर उदयपुर, जयपुर, बूंदी, टोंक और करौली राज्यों में बहती हुई रामेश्वर तीर्थ ग्वालियर राज्य के पास चंबल नदी में मिल जाती है। इसकी लम्बाई अनुमान से ३०० मील है।

## मंडोव-मंडावरा-मंडार

मंडोर जोधपुर नगर से ५ मील उत्तर नागाद्री नामक एक छोटी-सी नदी के किनारे बसा हुआ है। यहाँ का किला एक पहाड़ी पर स्थित है। इसका अस्तित्व ई० सन् की चौथी सदी के आस-पास माना जाता है। शिला-लेखों में इसका नाम "मांडव्यपुर" मिलता है। "माडव्यपुर का ही अपभ्रंश "मंडोर" है। ऐसा कहा जाता है कि माण्डव्य ऋषि का आश्रम यहां था। ब्राह्मण वंशी हरिश्चन्द्र के पुत्र भोगभट, कक्क, रज्जिल और दद्द ने मंडोर को जीतकर यहाँ किला बनवाया था; लेकिन काल की गति से वह अब नष्ट हो गया है। यहाँ एक पंचकुण्ड नामक स्थान है जहाँ पाँच कुण्ड बने हुए हैं। आज भी हिन्दू गण इसे पवित्र मान कर स्नानार्थ यहाँ जाते हैं। पुरा काल में यह राजाओं के श्मशान का स्थान था जो वहाँ के बने हुए रावचूडा, राव रणमल, रावजोधा तथा राव गांगा के स्मारकों से सिद्ध होता है। मालदेव के समय से श्मशान इस स्थान से हटाकर मोतीसिंह के बगीचे के पास रखा गया, जहाँ अन्य छत्रियों में महाराज अजीत सिंह की भी एक छत्री है जो उन सब में विशाल और दर्शनीय है। इससे थोड़ी दूर पूर्व में "तानापीर" की दरगाह है।

नागाद्री नदी के किनारे-किनारे यहाँ महाराज तख्त सिंह के काल तक के मारवाड़ के राजाओं, राजकुमारों आदि के स्मारक बने हुए हैं। इस दग्धस्थान के पास महाराज अभयसिंह के समय का "तैंतीस करोड़ देवता" का देवालय भी

स्थित है। इस स्थान के पास एक गुफा है जिसमें की खुदी हुई मूर्ति नाहड़राव को (रघुवंशी प्रतिहार) मूर्ति बतलायी जाती है। यह गुफा देखने में बहुत प्राचीन नहीं जान पड़ती लेकिन इसके पास वाले एक चबूतरे से दसवीं सदी के लेख का एक टुकड़ा प्राप्त हुआ है, जिसमें प्रतिहार कवक के पुत्र का नाम मिलता है, जो इस समय राजपूताने के अजायबघर में सुरक्षित है। इस गुफा के ऊपरी भाग में गुप्त लिपि में कुछ व्यक्तियों के नाम अंकित हैं। मंडोर के भग्नावशेषों में एक जैन मन्दिर भी है, जो दसवीं सदी का प्रतीत होता है। उसके उत्तर-पूर्व में एक स्थान है जो "रावल की चौरी" कहलाता है। मंदोदरी नाम से "मंडोर" की समानता होने के कारण कुछ लोगों ने रावण के विवाह होने आदि की कल्पना भी कर डाली है। लेकिन यह कल्पना कोरी कल्पना ही है। तथ्य का अंश इसमें नहीं के समान है। मंडोर पहले पहल नागवंशी क्षत्रियों के अधीन रहा होगा जैसाकि उसके पास के नागकुण्ड, नागाद्री नदी, अहिरौल आदि नामों से अनुमान किया जाता है। फिर वह प्रतिहारों के अधिकार में गया और उनसे राठौरों को दहेज में मिला।

मंडोर के सम्बन्ध में राजपूताना गजेटियर भाग २, पृ० २६१-६२ में प्राचीन राजाओं के स्मारकों का उल्लेख करते हुए लिखा गया है कि "Little respect or reverence is shown towords spots which in western countries, as cemetries are considered sacred in the present day. Many of the cenetophs are homes for beggar; and even the pariah dog; and nothing is done towards repairing the monuments erected to those who were heroes in their day.

## चांवल-चंबल

चंबल नदी राजपूताने की सबसे बड़ी नदी है। यह मध्य भारत के इन्दौर राज्य (मऊ की छावनी से ६ मील दक्षिण-पश्चिम) से निकलती है और ग्वालियर, इन्दौर तथा सीतामऊ राज्यों में बहकर राजपूताने में प्रवेश करती हुई भैंसरोड़गढ़ (मेवाड़), कोटा, केशवराव, पाहण और धौलपुर के निकट बहती हुई संयुक्त-प्रदेश में इटावे से २५ मील दक्षिण-पश्चिम यमुना से जा मिलती है। इस नदी की पूरी लम्बाई ६५० मील है। इसका पुराना नाम "चर्मण्वती" था।

## सोरठ-सुराष्ट्र-सौराष्ट्र

ह्वेनस्यांग के वर्णन के अनुसार 'सुलच्च या सुराथ' देश बल्लभी के अधीन था। इसकी राजधानी बल्लभी के पश्चिम में ५०० ली अथवा ८३

मील की दूरी पर यू-चेन-ता अथवा "उज्जनता" पहाड़ी के नीचे थी। उज्जनता संस्कृत के "उज्जैन्त" का पाली रूपान्तर है। यह संस्कृत और पाली नाम गिरनार पहाड़ियों का है जो जूनागढ़ के पास हैं। "उज्जैन्त"[1] का उल्लेख रुद्रदाम और स्कन्दगुप्त के गिरनार शिलालेखों में भी प्राप्त है, यद्यपि शिलालेख के कारण सौराष्ट्र की राजधानी जूनागढ़ या यवनगढ़ में, जो वल्लभी से ८७ मील की दूरी पर है, होना सिद्ध होता है। प्रसिद्ध पर्यटक ह्वेनस्यांग लिखता है कि उसने इस पहाड़ी को घने जंगलों से आच्छादित तथा इसके दोनों किनारों को अगणित कमरों और गैलरियों से भरा पाया था। ह्वेनस्यांग का यह वर्णन "पोस्टस्"[2] के वर्णन से भी मिलता है, जिसने सन् १८३८ में इस पहाड़ी को घने जंगलों और बिना नक्काशी के चौरस खंभों पर स्थित छोटे-छोटे कमरों से भरा पाया था।

आज भी "सूरत" नाम इस प्रान्त के हिस्से का है और आज के गुजरात कहे जाने वाले नगर में मिला हुआ है। सम्राट् अकबर के समय में भी यह प्रायद्वीप दक्षिण दिशा में बहुत बड़ा था। [3]जहाँगीर के दरबार में टेरी [4]( Terry ) ने जो सूचना इस प्रायद्वीप के सम्बन्ध में दी थी; उसके अनुसार सोरेत का प्रधान शहर "जनागढ़" अर्थात् "यवन गढ़" अथवा "जूनागढ़" कहलाता था। यद्यपि यह प्रान्त छोटा था तथापि उपजाऊ था और इसके दक्षिण में समुद्र था। उस समय भी यह नगर गुजरात के साथ नहीं मिलाया गया था।

ह्वेनस्यांग का कहना है कि सातवीं सदी में "सूरत" या "सुराष्ट्र" का क्षेत्रफल ६६७ मील था और पश्चिम में यह माही नदी को छूता था। माही नदी मालवा प्रदेश में बहने वाली वह नदी है जो खम्बोज की खाड़ी में गिरती है। ह्वेनस्यांग के उपर्युक्त वर्णन को स्वीकार करने पर ऐसा कहा जा सकता है कि यह नगर इस प्रायद्वीप के सम्पूर्ण भाग को घेरे हुए था और वल्लभी नगर भी इसी के अन्तर्गत था। इसमें सन्देह नहीं कि "वल्लभी" का नाम "सूरत" से अधिक प्रख्यात था लेकिन "सूरत" नाम की ख्याति भी पूर्ण प्रायद्वीप के लिए सन् ६४० तक थी।

---

1. Journal Asiatic Society Bombay Vii P. 119. ":The Urjjayat hill" P. 123 is urjayat; and P. 124 "The jayanta mountain" should all be rendered Ujayanta..
2. Junrnal Royal Asiatic Society Bengal 1838 P.P. 874,876.
३. आईने अकबरी, भाग २, पृष्ठ ६६
4. Voyage to East India P. 80.

## अजमेर

अजमेर मेवाड़ का प्रान्त राजपूताने के मध्य भाग में बसा हुआ है। इसके पश्चिम में मारवाड़ के राज्य, उत्तर में किशनगढ़ और मारवाड़, पूर्व में जयपुर और किशनगढ़ तथा दक्षिण में मेवाड़ प्रान्त है। इसका पूरा क्षेत्रफल २२६७·६ मील है और इसकी आबादी ५०६६६४ की है। यह अक्षांश २५·२४ उत्तर तथा देशान्तर ७३·४५ पूर्व के बीच बसा हुआ है। इसके अजमेर और मेवाड़ दो भाग हैं। अजमेर की लम्बाई उत्तर तथा दक्षिण में ८० मील और चौड़ाई ५० मील है। मेवाड़ ४८ मील लम्बा और १५ मील चौड़ा है। ( Ajmer Mewara Gazetter 1904 )

पुराकाल में अजमेर को 'अजयमेरु' कहते थे। आजकल अजमेर का किला 'तारागढ़' के नाम से प्रसिद्ध है। छठी शताब्दी में महाराज अजयपाल चौहान ने इस किले को बनवाया था। ये "सपाद लक्ष" के राजा थे और इसकी राजधानी सांभर थी। इन्होंने ही अजमेर शहर को भी बसाया था। 'फयसागर' के दक्षिण स्थित 'अजयसर' आज भी इनके नाम को चिरस्थायी बनाये हुए है।

'पृथ्वीराज विजय' के अनुसार अजयदेव द्वितीय ने एक नगर बसाया था और उसी नगर का नाम राजा अजयदेव के नाम के ऊपर 'अजमेर' रखा गया। डा० बुह्लर ( Buhler ) ने भी इसी मत का समर्थन करते हुए कहा है कि अजमेर नगर अजयदेव द्वितीय द्वारा ही बसाया गया था।

'पृथ्वीराज विजय' सर्ग ३ में यह भी कहा गया है कि अरणोराज या अनाजी के तीसरे पुत्र सोमेश्वर ने अपने बड़े भाई और पूर्वज विग्रहराज के राजमहलों के समीप एक नगर बसाया था और उसका नाम अपने नाम के ऊपर रखा था। श्रीहरि विलास जी शारदा का कहना है कि "As these palaces stood in Ajmer, the town founded by Someswar and named after Arnoraj, must has existed in or near Ajmer. No one howerer has heard of such a town and there is no mention of it in any book. The fact evedently is that several chanhan Kings repaired renovated or improued the existing town and the court poets, given to exaggeration have stated that each of the kings founded this town. Ajiyadev II made improvements & additions to the town of Ajmer & probably transferred his capital from Sakambhari ( Lambher ) to Ajmer the poet gives him credit for forming it.

लेकिन द्वितीय अजयदेव के पहले ही अजमेर की स्थापना हो चुकी थी। इसका प्रमाण थड़ा ( Thadas ) तथा छत्री ( Chhatrees ) के जैन शिला-लेखों से मिलता है। अजमेर के भट्टारक रतनकीर्ति के शिष्य हेमराज की समाधि पर बनी हुई छत्री पर सं० ८१७ ( सन् ७६० ) का लिखा हुआ लेख तथा इसी प्रकार का लेख वहाँ बनी हुई अन्य तीन छत्रियों पर सन् ८४५, ८५४ तथा ८७१ यह सिद्ध करते हैं कि यह नगर अजयदेव द्वितीय के पहले बस चुका था क्योंकि ये तिथियाँ उक्त अजयदेव के बहुत पहले की हैं।

अजमेर की प्राग्-ऐतिहासिक कथा से ज्ञात होता है कि अग्निकुल से उत्पन्न होने वाले अन्तिम क्षत्री चौहानों का यह राज्य था। प्रथम चौहान अन्हल के वंश में उत्पन्न राजा 'अज' ने सन् १४५ में इसे बसाया था। सबसे पहले राजा अज ने 'नाग पहाड़' पर एक किला निर्मित कराना चाहा लेकिन किसी राक्षस के उत्पात के कारण दिन में बनवाई गई किले की दीवारें रात में नष्ट हो गई। अतः अज ने आजकल के प्रसिद्ध तारागढ़ पहाड़ी पर उस किले को बनवाया। यह किला गढ़ बीटली के नाम से और इन्द्रकोट पर उनके द्वारा बनवाया हुआ नगर अजमेर के नाम से प्रसिद्ध हुए। ये राजा अज इतिहास में अजयपाल के नाम से प्रसिद्ध हैं। कर्नल टाड ने इस नाम के साथ एक दन्त-कथा का उल्लेख करते हुए लिखा है कि अजयपाल का नाम अजयपाल इसलिए पड़ा था कि वे पहले अजों ( बकरियों ) की रक्षा करते थे और उनको यह राज्य पुष्कर के किसी महात्मा ने वरदान-स्वरूप उनकी बकरियों का दूध पीने के कारण दिया था। उनका नाम ही शायद इस दन्तकथा की उत्पत्ति का कारण है। इस दन्तकथा में सत्य का अंश कितना है यद्यपि कहा नहीं जा सकता तथापि राजा अजयपाल का अपने जीवन के अन्तिम काल में अजमेर से १० मील की दूरी पर जाकर पहाड़ियों में रहना और वहीं आजकल भी अजयपाल के मन्दिर का होना यही सिद्ध करता है कि उपर्युक्त दन्तकथा में सत्य का अंश कुछ अवश्य है।

इसके पश्चात् चौहानों के वंशजों की जो कथाएँ प्रचलित हैं वे सब इति-हास से सम्बन्धित हैं। दोलराय की मृत्यु सन् ६८५ में मुसलमान लुटेरों से अपने नगर की रक्षा करते हुए हुई। उसके उत्तराधिकारी मानिकराव ने 'सांभर' की स्थापना की और इसके बाद ही चौहान राजा 'सांभरी राव' कहलाने लगे। इनके राजत्व काल से सन् १०२४ तक का क्रमिक इतिहास अंधकारमय है। सन् १०२४ में अवश्य सुल्तान महमूद प्रसिद्ध सोमनाथ के मन्दिर पर आक्रमण करने जाते समय अजमेर से गुजरा था। तत्कालीन राजा वीलमदेव

उससे लड़ने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं था। अस्तु, नगर को खाली कर दिया गया। महमूद ने भी नगर को जहाँ तक लूटते बना लूटा। लेकिन तारागढ़ का किला लूट-खसोट से बच गया और महमूद अपने नियत स्थान गुजरात की ओर बढ़ गया। बीलमदेव के बाद बीसलदेव अजमेर का राजा हुआ जो बड़ा प्रतापी और वीर था।

## धार

'धार' का पुराना नाम 'धारा नगरी' था। इस नगरी की उत्पत्ति के बारे में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। साधारणतः तलवार की धार से इस नगरी की उत्पत्ति का सम्बन्ध जोड़ा जाता है, क्योंकि इसकी स्थापना तलवार की जोर से ही हुई थी। मुसलमान इसे 'पोराधार' कई पुराने पीरों के मकबरों के कारण और 'किलाधार' यहाँ के पुराने किले के कारण कहते हैं।

यह नगर बहुत पुराना है और करीब पाँच सौ वर्षों तक यह मालवा के परमारों की राजधानी थी। परमारों ने अपनी पहली राजधानी उज्जैन में बनवाई थी लेकिन वैर सिंह द्वितीय ने नवीं शती के अन्त में उज्जैन से अपनी राजधानी हटाकर 'धार' में बनवाई। इसी के पश्चात् धार और परमार में इतना घनिष्ट सम्बन्ध हो गया कि यह किंवदन्ती प्रचलित हो गयीः—

"Where the Parmara is, there is Dhar,
And where Dhara is, there is Parmara.
Without Dhar the Parmara is nothing,
So without the Parmara is Thar."

मालवा के राजाओं की प्रशस्ति जो उदयपुर में प्राप्त हुई है और जो उदयपुर के प्रशस्ति के नाम से प्रख्यात है, उसके ११ वें छन्द में वीर सिंह के सम्बन्ध में लिखा हुआ है–"From him was born Vairsinha whom the people called by another name, the lord of vajrata by that king the famous Dhara was indicated, when he slew the crowd of his enemies by the sharp edge (Dhara) of his sword"

उपर्युक्त दन्तकथाओं से निष्कर्ष यही निकलता है कि 'धार' नगर का नामकरण तलवार की 'धार' पर हुआ है। नामकरण की कथाओं के अतिरिक्त प्राचीन कवियों ने धार नगर की प्रशंसा में बहुत-कुछ कहा है। 'नवसहसांक चरित' का रचयिता पद्मगुप्त 'धार' के लिए कहता है :—

---

1. Epigraphia Indica I, P. 222.

विजित्य लंकामपि वर्तते या, यस्याश्च नायात्यलकापि साम्यम्।
जेतुः पुरी साप्यपरास्ति यस्या, धारेति नाम्नाकुल राजधानी ॥

अर्थात् पारमार राजाओं की राजधानी धार 'लंका' और 'अलकापुरी' से भी श्रेष्ठ है। इसके समकक्ष विष्णु की राजधानी भी हेय ठहरती है।

इसी प्रकार 'विक्रमांक देव चरित' का रचयिता विल्हण कहता है :—

भोजः क्ष्माभृत्स खलु न खलैस्तस्य साम्यं नरेन्द्रैः
सत्प्रत्यक्षं किमिति भवता नागतं हा हतास्मि।
यस्य द्वारोड्डमर शिखर क्रोड पारावतानाम्,
नादव्याजादिति सकरुणं व्याजहारेव धारा ॥

अर्थात् जिस धार नगर के अधिपति पृथ्वी के अन्य राजाओं द्वारा सम्मानित राजा भोज थे, जिसके यश का वर्णन राजप्रासाद के उच्च शिखर पर बैठे पारावत गण भी करते थे, खेद है, मैं उस नगर में नहीं गया।

अर्जुन वर्म के संस्कृत नाटक में जो 'धार' की 'भोजशाला' में पीछे से प्राप्त हुआ था, धार नगरी के सम्बन्ध में लिखा है कि यह नगर राजप्रासादों, मन्दिरों, उच्चविद्यालयों तथा नाट्यशालाओं से सुशोभित था। अलबरूनी ने इस नगर का उल्लेख अपनी यात्रा के वर्णन में १० वीं शती में किया है। सन् १३३३ में जब इब्नबतूता ने भारत भ्रमण किया था, उसने भी धारा नगरी का उल्लेख करते हुए लिखा है कि मालवा का प्रधान नगर था।

वाक्पति राज ( ६७३–६६७ ), सिन्धुराज ( ६६७–१०१० ) तथा राजा भोज ( ११०१०–०५५ ) के राजत्व-काल में धार भारतवर्ष भर में शिक्षा का केन्द्र समझा जाता था।

## जैसलमेर

जैसलमेर अक्षांश २६ं'५ और २८ं'२४ उत्तर तथा देशान्तर ६६ं'३० एवं ७२ं'५० पूर्व में स्थित है। पूर्व पश्चिम तक इसकी लम्बाई १७२ मील तथा उत्तर से दक्षिण तक इसकी चौड़ाई १३६ मील है। इसके उत्तर में भावलपुर का राज्य, पूर्व में बीकानेर और मारवाड़, दक्षिण में मारवाड़ तथा पश्चिम में सिन्धु है। इसका पूरा क्षेत्रफल १६, ४४७ स्कायर मील है। यह नगर पूर्ण रूप से रेगिस्तान है।

जैसलमेर के स्थापित करने वाले भाटी वंश के प्रसिद्ध राजा देवराज कहे जाते हैं। इन देवराज के सम्बन्ध में कहा जाता है कि सन् ८३६ में इनके जन्म

के पश्चात् इनके पिता तथा इनके सभी सगे-सम्बन्धी एक पहाड़ी जाति द्वारा मार डाले गए थे। ये एक योगी की कृपा से किसी प्रकार बच गये और जैसलमेर की स्थापना की। रावल की उपाधि भी इन्हीं के समय से प्रचलित हुई। इनके पूर्वजों के इतिहास से ऐसा ज्ञात होता है कि इस वंश की उत्पत्ति भारत के प्रसिद्ध यदुवंशियों से हुई, जिसके नेता कृष्ण थे। कृष्ण की मृत्यु के पश्चात् 'यदु' जाति विभाजित हो गई और भारत के विभिन्न भागों में जाकर बस गई। इनमें से कृष्ण के दो पुत्र सिन्धु नदी के पार उत्तर दिशा की ओर जाकर बस गए। कुछ समय के पश्चात् इन्हीं के वंशजों में से कोई एक किसी लड़ाई में मारा गया और यह जाति पुनः दक्षिण दिशा की ओर चली आई, जहाँ गुंज के लड़के शालिवाहन ने एक नगर की स्थापना की और धीरे-धीरे सारे पंजाब प्रान्त पर अपना आधिपत्य जमा लिया। इसी का प्रपौत्र 'भाटी' नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह बड़ा वीर और योद्धा था। इसने अपने बल और शौर्य से आसपास के राजाओं को जीता और तभी से यदुवंश के लोगों ने अपनी पैतृक उपाधि को छोड़कर इस राजा के नाम की उपाधि को धारण किया। पंजाब प्रान्त में भी यह जाति अपनी सत्ता अधिक काल तक नहीं कायम रख सकी। गजनी के राजा ने इस जाति पर आक्रमण कर इस जाति को दक्षिण दिशा की ओर खदेड़ दिया और इस जाति ने सतलज नदी को पार कर भारत की मरुभूमि में प्रवेश किया। यहाँ ही ये लोग बस गये। यहाँ बस जाने के बाद मुसलमानों के आक्रमणों से इस जाति को बराबर मोर्चा लेना पड़ा। मुसलमानों के आक्रमणों के अतिरिक्त इस जाति को राज्य के आसपास की बसी हुई जातियों से भी लड़ना पड़ा। ऐसी लड़ाइयों में सबसे बड़ी लड़ाई इस जाति की 'सोदा' जाति वालों से हुई।

ऐसे आक्रमणों तथा नित्य के लड़ाई-झगड़ों ने इस जाति को लुटेरा बना दिया। इस जाति का यह स्वभाव देवराज की छठी पीढ़ी में होने वाले राजा जेसल के समय में भी वर्तमान था, जब जैसलनगर और किला पहले से अधिक दृढ़ हो गया था। इस जाति के इस स्वभाव ने इतना आतंक मचाया कि सन् १२९४ में बादशाह अलाउद्दीन को इस जाति को दबाने के लिए शाही सेना भेजनी पड़ी। शाही सेना ने इनके नगर को बिलकुल वीरान बना दिया।

इसके पश्चात् रावल सबलसिंह के राजा होने तक की कोई ऐसी घटना नहीं है जो उल्लेख योग्य हो। रावल सबल सिंह, जेसल की पचीसवीं पीढ़ी में हुआ था। इसी ने सर्वप्रथम जैसलमेर के इतिहास में मुसलमानों का आधिपत्य

स्वीकार किया। इसके समय दिल्ली का बादशाह शाहजहाँ था। इसने शाहजहाँ का आधिपत्य स्वीकार कर यद्यपि अपने राज्य को दृढ़ बनाया फिर भी राज्य की भाग्य-श्री वाम ही रही, और इसकी सातवीं पीढ़ी में होने वाले राजा रावल मूलराज के समय तो ऐसी रूठी कि इस राज्य ने फिर स्वतन्त्रता का मुँह नहीं देखा। मूलराज जैसलमेर की राजगद्दी पर सन् १७६२ में बैठा था। उसके राजत्वकाल में राज्य का सारा प्रबन्ध उसके एक मंत्री सलीम सिंह द्वारा होता था। यह मन्त्री अपने काले कारनामों और अपनी क्रूरता के लिए विख्यात था। अस्तु, राज्य की व्यवस्था उचित रूप में नहीं हुई। सन् १८१८ में इस राज्य के साथ अंगरेज शासकों की सन्धि सम्पन्न हुई। (Rajputana gazetter Vol.II P. 167)

जैसलमेर का नाम प्राचीन शिलालेखों में 'वल्लमंडल', वल्लदेश और मांड भी मिलता है। वहाँ के लोग इसे अब 'मांड' भी कहते हैं। वहाँ की स्त्रियाँ सुन्दर होती हैं। कहा भी जाता है कि :—

मारवाड़ नर नीपजे, नारी जैसलमेर।
सिन्धां तुरही सांतरां, केरह्ल बीकानेर॥

अर्थात् मारवाड़-जोधपुर में पुरुष, जेसलमेर में स्त्रियाँ, सिन्ध में घोड़े और बीकानेर में ऊँट अच्छे मिलते हैं।

## 'चंपावती'

यह नगर चम्पावती देवी के नाम पर वहाँ के राजा "साल" के कश्मीर के राजा अनन्त द्वारा ई० सन् १०२८ और १०३१ के बीच मारे जाने पर उसके पुत्र द्वारा बसाया गया था। "चम्पा" के नाम से आज भी यह स्थान काश्मीर प्रान्त में प्रसिद्ध है। "चम्पा" एक बहुत बड़ा जिला है। यह लाहौल और कास्तवार के मध्य रावी और चनाव की घाटी पर बसा हुआ है। ह्वेनस्यांग ने अपने यात्रा-वर्णन में इसका कोई उल्लेख नहीं किया है। जिससे यह सिद्ध होता है कि उस समय यह काश्मीर की हद के भीतर था और इसकी कोई अलग स्थिति नहीं थी। लेकिन कुछ ऐसे ऐतिहासिक चिह्न इस जिले में वर्तमान हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि यह एक पुराना नगर था और इसकी अपनी अलग स्थिति थी। इस जिले में प्राप्त होने वाले सुन्दर मन्दिरों के समूह तथा आदमकद काँसे का एक साँड इसके प्राचीन राजाओं के धन-वैभव के साक्षी हैं। शिला-लेखों में प्राप्त वार्त्ताओं से ज्ञात है कि ये कला की वस्तुएँ ६वीं और १०वीं शताब्दी की हैं। काश्मीर के जातीय इतिहास में इस स्थान का नाम "चम्पा" अनेक स्थानों पर आया है। काश्मीर के राजवंश वाले चम्पा वंश के लोगों के

साथ आज भी वैवाहिक सम्बन्ध करते हैं। मुसलमानों के आक्रमण-काल में कुछ समय के लिए यह नगर स्वतन्त्र हो गया था। लेकिन महाराज गुलाब सिंह ने पुनः इसे बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में काश्मीर में मिला लिया था।

## 'गंगा'

समुद्र की सतह से १३८०० फुट की ऊँचाई पर हिमाच्छादित उत्तरी हिमालय के गंगोत्री नामक स्थान से गंगा का उद्गम माना जाता है। अपना नाम गंगा धारण करने के पहले ये उत्तर-पश्चिम से आती हुई जाह्नवी और इसके पश्चात् ही अलकनन्दा को भेटती हैं और तब ये तीनों धाराएँ एक साथ मिल कर गंगा की धारा कहाती हैं। और तब मुखी के पास हिमालय पर्वत को भेदती हुई ये दक्षिण और पश्चिम दिशा में हरिद्वार की ओर घूमती हैं। इस स्थान से ये दक्षिण और दक्षिण पूर्व-उत्तरप्रदेश के मेरठ और रोहिलखंड जिलों में प्रवेश करती है, और इसके बाद रोहिलखण्ड को आगरा से अलग करती हुई ये फर्रुखाबाद जिले में जाती हैं। इसके बाद अवध की दक्षिण-पश्चिमी सीमा को बनाती हुई ये इलाहाबाद, मिर्जापुर, बनारस तथा गाजीपुर और बलिया के जिलों को बंगाल से अलग करती हैं। इस प्रकार उत्तर-प्रदेश के अनेक नगरों और जिलों की सिंचाई का मुख्य साधन बन कर यह बिहार और बंगाल प्रान्तों की ओर बढ़ती है।

२५° ३१' उत्तर और ८३° ५२' पूर्व में ये शाहाबाद जिले में प्रवेश कर इसकी सीमा को निर्धारित करती हुई और इस जिले को उत्तर-प्रदेश से अलग करती हुई उत्तरी छोर पर घाघरा और दक्षिणी छोर पर सोन नदी से मिलती हैं। इसके पश्चात् यह पटना शहर की ओर अग्रसर होती है और नेपाल से आने वाली गंडक को अपनी सहचरी बनाती है। फिर पूर्व में यह कोसी से मिलकर राजमहाल पर्वत श्रेणियों को पार करती हुई द्रुत गति से दक्षिण की ओर चलती हैं और बंगाल प्रान्त के गौड़ नगर को पवित्र करती हुई समुद्र से भेंट करने के लिए आगे बढ़ती हैं। इस स्थान से करीब बीस मील की दूरी पर इसकी कई एक शाखाएँ फूटती हैं। इनमें से प्रमुख शाखा "पद्मा" के नाम से प्रसिद्ध है। पद्मा का भीषण रूप हमें वर्षा काल में दिखाई पड़ता है, जब जहाजरानी को भी इसकी तीक्ष्ण धारा को पार करना कठिन हो जाता है। इस प्रकार गंगा २३°१३' उत्तर और ९०°३३' पूर्व में मेघना नदी को योग देती हुई बंगाल में ५४० मील तथा अपने उद्गम स्थान से १५५७ मील की दूरी ते करके समुद्र में प्रवेश करती हैं।

इनके किनारे पर बसे हुए प्रमुख नगर हैं : उत्तर-प्रदेश के हरिद्वार, सोरों, कानपुर, प्रयाग, मिर्जापुर तथा बनारस; बिहार का पटना एवं बंगाल का कलकत्ता।

गंगा का एक या दो अन्य नदियों से मिलन अथवा उसका समुद्र से मिलन हिन्दुओं का तीर्थ स्थान है। प्रयाग में जहाँ यह यमुना और सरस्वती से मिलती है, आज भी कुम्भ पर्व का आयोजन होता है और लाखों नर-नारी इस अवसर पर त्रिवेणी की धारा में स्नान कर अपने पापों का क्षय करते हैं। इसी प्रकार बंगाल की खाड़ी में भी जहाँ गंगा समुद्र से मिलती हैं प्रत्येक वर्ष गंगा-सागर का मेला आयोजित होता है और लाखों नर-नारियाँ एकत्र होती हैं और गंगा की धारा में स्थान कर पुण्य लाभ करती हैं।

वैदिक साहित्य में तो कम लेकिन पुराणों में गंगा की अपार महिमा का वर्णन है। ऐसा कहा जाता है कि सूर्यवंशी राजा सगर ने किसी समय अश्वमेध यज्ञ आयोजित किया था। यज्ञ में विघ्न डालने की इच्छा से इन्द्र ने राजा सगर के अश्वमेध के घोड़े को पातालपुरी में कपिलदेव मुनि के आश्रम में चुरा दिया। राजा सगर की एक रानी से उत्पन्न साठ हजार पुत्र घोड़े को खोजते-खोजते मुनि के आश्रम में पहुँचे और यह समझकर कि मुनि के द्वारा ही यज्ञ का अश्व चुरा करा कर रखा गया है, मुनि के प्रति अपशब्दों का व्यवहार किया और उनके श्राप से क्षार हो गये। राजा सगर की दूसरी रानी के पुत्र असमंजस के पुत्र अंशुमान ने गरुड़ के उपदेशानुसार ब्रह्मलोक से पाताल में अपने पूर्वजों को तारने के लिए गंगा को लाने की अनेक चेष्टा की लेकिन उनकी चेष्टा विफल हुई। अन्त में उनके प्रपौत्र महाराज दिलीप के पुत्र भगीरथ गंगा को पृथ्वी पर लाने में समर्थ हुए और उनके पूर्वज जो ऋषि के श्राप से क्षार हो गये थे, गंगा की पावन धारा के स्पर्श होते ही मुक्त हो गए।

पौराणिक युग में यदि गंगा की पवित्र धारा ने राजा के साठ हजार पुत्रों का उद्धार किया तो वर्तमान युग भी उनकी धारा से कम लाभ नहीं उठा रहा है। चूँकि भारत कृषिप्रधान देश है इसलिए इसे अन्नादि उपजाने के लिए सर्वदा जल की आवश्यकता रहती है। गंगा की नहरों द्वारा यह कार्य बड़े सुविधापूर्वक हो रहा है। नहर की एक शाखा द्वारा एटा, मैनपुरी, फर्रुखाबाद, इटावा, कानपुर, फतेहपुर, इलाहाबाद जिलों की प्रायः ८३१००० एकड़ भूमि सींची जाती है तथा इसकी दूसरी शाखा द्वारा भी प्रायः इतने ही एकड़ भूमि सींची जाती है। रेलों की लाइन के बिछने के पहले तथा उसके बाद भी गंगा यातायात का प्रधान साधन रही हैं।

पुराणों में गंगा के चार नाम और मिलते हैं: —१ सीता, २ अलकानंदा, ३ चक्षु तथा ४ भद्रा। एक कथा के अनुसार जह्नु ऋषि ने इनके सम्पूर्ण जल को पान कर लिया था, और फिर कान के मार्ग से बाहर किया था, इसलिए इनका नाम जाह्नवी पड़ा। एक दूसरी कथा के अनुसार अगस्त्य ऋषि द्वारा समुद्र के जल को सोख लेने के बाद गंगा ने ही समुद्र को जल का दान किया था—ऋग्वेद तथा सपादलक्ष ब्राह्मण में गंगा का उल्लेख देवधुनि या देवनदी के नाम से हुआ है। तैत्तिरीय आरण्यक में कहा गया है कि गंगा और यमुना के मध्य रहने वाले लोग विशेष आदर के पात्र हैं। हरिवंश के अनुसार पुरुरवा तथा उर्वशी ने मन्दाकिनी, जिनका आधुनिक नाम गंगा है, के किनारे ५ वर्षों तक वास किया था। मेगास्थनीज़ लिखता है कि "by the two ( the Ganges & the Indus) the Ganga is much the larger...It receives besides, the river sones and the sittokatis the solomatis which are also navigable, and also the Kondochates & the sambos and the magou & the Agoramio & the omalis, moreover their fall into it the Karmenases, a great river, and the Kakanthis and the Anomatio ( Mecrindle Ancient India P. P. 190.—91 ).

## कुडाल

यह सखनावाड़ी के रईस का दुर्ग था। इस दुर्ग के सम्बन्ध में यह छोड़ कर कि इसे सन् १६६१ ई० में शिवाजी ने जीत लिया था और कुछ भी इतिहास में उपलब्ध नहीं है।

## हिमालय

भारतवर्ष का उत्तरी सीमाना हिमालय अपनी उत्तुंग चोटियों के लिए केवल भारतवर्ष में ही नहीं वरन् सारे संसार में प्रसिद्ध हैं। इस पर्वत-श्रेणी के लिए प्रयुक्त शब्द 'हिमालय' इसके नाम और अर्थ का अक्षरशः द्योतक है। हिमालय का अर्थ 'हिमस्य + आलयः' 'हिम का घर' या हिमानाम् + आलयः 'हिम के रहने का घर' होता है। प्राचीन भूगोल-वेत्ताओं ने इसका नाम इमौस या हिमौस और हैमोडास दिया है। इन नामों के द्वारा ऐसा पता चलता है कि ये नाम इस पर्वत-श्रेणी के पूर्वी और पश्चिमी हिस्से के लोगों द्वारा दिए गए हैं। हैमोडास संस्कृत शब्द हिमवत् (हेमोत्) से निकला है, जिसका अर्थ हिमाच्छादित होता है। अलेक्जेण्डर के साथ आने वाले ग्रीक निवासियों ने इसे भारतीय काकेशस के नाम से प्रसिद्ध किया था।

हिमालय की चौहद्दी के सम्बन्ध में श्री भागवत में ५ वें स्कन्ध के १६वें अध्याय में लिखा है:—'एवं दक्षिणेनेलावृतं निषधो हेमकूटो हिमालयः इति प्रागायता यथा नीलादयः। अयुतयोजनोत्सेधा हरिवर्षकिंपुरुषभारतानां यथासंख्यम्।' अर्थात् इसका विस्तार जहाँ भागवत पुराण के अनुसार सहस्र योजन बताता गया है, वहीं आज के वैज्ञानिक युग में इसकी सीमा को नापने-जोखने का कार्य हो रहा है और इसकी चौहद्दी को निर्धारित करने का प्रयास जारी है। सफलता कहाँ तक मिलेगी कहा नहीं जा सकता। यों कहा जा सकता है कि इसके उत्तरी-पश्चिमी छोर पर काश्मीर और जम्मू राज्य का आधे से अधिक हिस्सा है। इसके पूर्व में उत्तर-प्रदेश, कुमायूँ तथा टेहरी राज्य हैं। इनके अतिरिक्त नेपाल, भूटान तथा सिक्कम के वे राज्य हैं, जो भारतवर्ष की सीमा में सम्मिलित नहीं हैं।

हिमालय भारतवर्ष की प्रायः सभी प्रसिद्ध नदियों यथा गंगा, यमुना, शारदा या काली आदि नदियों का उद्गम हिमालय के उत्तरी पर्वत-श्रेणी है। 'करनाली' नदी का, जो घाघरा के नाम से भारत में प्रसिद्ध है, उद्गम स्थान उत्तर पर्वत-श्रेणियों से दूर तिब्बत से है।

हिमालय की प्रसिद्ध चोटियों में एवरेस्ट चोटियाँ २६००२ फुट, नागा पर्वत २६१८२ फुट, नन्दादेवी २५६६१ फुट, त्रिशूल २३३८२ फुट, पाचांसी २२६७३ फुट तथा नन्दकोट २२५३८ फुट हैं।

हिमालय की तराइयों में विभिन्न प्रकार के लोग पाए जाते हैं। काश्मीर में लद्दाख से लेकर भूटान तक हिन्दुस्तान के लोग ऊपरी हिस्सों में ही पाये जाते हैं, लेकिन सिक्कम, दार्जिलिंग और भूटान में से लोग इन देशों के निचले भागों में भी वर्तमान हैं। हिमालय का एक यही ऐसा हिस्सा है जहाँ बौद्ध धर्म जीवित रूप में वर्तमान है। मुसलमानों ने इस भाग में इस्लाम धर्म के प्रचार का यथेष्ट प्रयत्न किया लेकिन यहां का जलवायु तथा प्राकृतिक असुविधाओं ने सर्वदा उनके प्रयत्न को विफल बनाया। १४ वीं शताब्दी में सुलतान सिकन्दर ने इस्लाम धर्म का प्रचार तलवार के जोर पर इन हिस्सों में करना आरम्भ किया लेकिन काश्मीर प्रान्त को छोड़कर इस धर्म का प्रचार और कहीं नहीं हो सका। जम्मू तथा हिमालय की तराई में उत्तर-प्रदेश और पंजाब के हिस्सों में हिन्दू धर्म की ही प्रधानता है। नेपाल में भी राज-परिवार का धर्म हिन्दू ही है। यद्यपि यहाँ हिन्दू धर्म के साथ ही साथ बौद्ध धर्म का प्रचार भी यथेष्ट हुआ है। यहाँ के जिन हिस्सों में हिन्दू धर्म की प्रधानता है वहाँ के

लोगों की भाषा पहाड़ी है। जो राजस्थानी से मिलती-जुलती है, जिससे यह सिद्ध होता है कि इन स्थानों के रहने वालों के पूर्वज भारतवर्ष से ही आए थे। हिमालय के कुमायूँ प्रदेश के रहने वाले लोग बड़े लजाधुर प्रकृति के हैं और वे सभ्य जगत् के लोगों से मिलने-जुलने में बहुत शर्माते हैं। इस प्रकार के लोग नेपाल के कुछ हिस्सों में भी पाए जाते हैं। लेकिन उनके सम्बन्ध में विशेष नहीं कहा जा सकता।

व्यापारिक दृष्टि से हिमालय में उत्पन्न होने वाले अनाजों का कोई विशेष स्थान नहीं है। चावल, गेहूँ, जौ और मडुआ यहाँ की मुख्य उपज है। आलू की खेती भी कुमायूँ प्रदेश में होती है। कुलू प्रदेश में मेव, पीच आदि फल भी सफलतापूर्वक उपजाये जाते हैं। हिमालय के इन प्रदेशों में खेती वर्ष में केवल एक बार ही हो सकती है। चाय के बगीचे १९ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कुमायूँ प्रदेश में अधिकता से लगाये गए थे लेकिन इस शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ये बगीचे कांगड़ा और दार्जिलिंग की सम्पत्ति हो गये हैं। दार्जिलिंग में 'कुनाइन' बनाने के लिये सिनकोना की भी खेती होती है।

हिमालय की तराई में शाल, सीसम, देवदार, चीड़ आदि के जंगल बहुत पाए जाते हैं तथा पूर्वी हिमालय में जंगली रबर भी पाया जाता है जो कि 'असम' में बिक्री हेतु आता है।

हिमालय का पुराना नाम 'हेमवात', 'हिमवान्', 'हिमाचल' 'हिमन्तप्रदेश', 'हिमाद्रि' तथा 'हिमवात' है। कालिका पुराण में इसका उल्लेख पर्वतराज तथा कुमारसम्भव में 'नगाधिराज' के नाम से हुआ है। महाभारत के वनपर्व में लिखा है कि हिमवात प्रदेश नेपाल के ठीक पश्चिम दिशा की ओर बसा हुआ है और यह गंगा, यमुना, सतलज आदि नदियों का उद्गम स्थाम है। 'मार्कण्डेय पुराण, 'महाभारत' तथा 'कुमारसम्भव' के अनुसार यह पहाड़ एक समुद्र से दूसरे समुद्र तक 'कार्मुकस्य यथा गुणाः' के समान फैला हुआ है। 'कुणालजातक' के अनुसार हिमालय प्रदेश का प्रसार ऊँचाई में ५०० लीग तथा चौड़ाई में ३००० लीग माना गया है। कैलास, जिनका उल्लेख संस्कृत-साहित्य में अनेक स्थलों पर है, हिमालय पर्वत-श्रेणी के मध्य भाग के उत्तर में स्थित है। बौद्ध ग्रन्थों में हिमालय के सात बड़ी-बड़ी झीलों का उल्लेख मिलता है। उनके नाम हैः-कराणमुण्ड, रथकार, छदन्त, कुणास, मन्दाकिनी, अनोतत्त तथा सीहप्पपात। महाभारत के सभापर्व और वनपर्व के अनुसार 'मैनाक' पर्वत भी हिमालय का एक हिस्सा था जो कैलास के समीप स्थित था।

## साम्भर

सभँर नगर जोधपुर और जगपुर राज्यों की सीमा के अन्दर राजपूताने में २६°५५ उत्तर तथा ७५°११ पूर्व सांभर झील के किनारे बसा हुआ है। आधुनिक नगर की प्रायः सभी उपयोगी वस्तुओं, जैसे तार घर, विद्यालय, अस्पताल आदि से यह नगर सुसज्ज है। यह नगर चौहान राजपूतों की ८ वीं शताब्दी से ही प्रधान राजधानी माना जाता है। अन्तिम हिन्दू राजा पृथ्वीराज चौहान सांभर राव अर्थात् सांभर के महाप्रभु कहलाते थे। इतिहास से ज्ञात होता है कि यह नगर मुसलमान बादशाहों के अधिकार में १३ वीं शताब्दी से सन् १७०८ ई० तक रहा, जब कि यह जोधपुर और जयपुर के शासन-कर्त्ताओं द्वारा पुनः उनसे ले लिया गया। सांभर झील यहाँ की प्रमुख झील है। यह झील जयपुर और जोधपुर राज्यों के छोर पर २६°५३ तथा २७°२ उत्तर एवं ७४°५४ और ७५°१४ पूर्व अजमेर से ५३ मील उत्तर-पूर्व तथा दिल्ली से २३० मील दक्षिण-पश्चिम बसा हुआ है। यह झील समुद्र की सतह से करीब १२०० फ़ुट की ऊँचाई पर है। जब यह भरी रहती है तो इसका क्षेत्रफल करीब ६० वर्गमील हो जाता है। गर्मी के दिनों में यदि कोई इसके एक छोर पर खड़ा होकर दूसरे छोर पर दृष्टि डाले तो यह उसे एक अति विशाल हिम का टुकड़ा नज़र आयगा। लेकिन सचमुच में यह हिम का टुकड़ा नहीं वरन नमक का शान्त और स्थिर समुद्र है, जो देखने में हिम के टुकड़े के समान दिखाई पड़ता है। किंवदंती प्रसिद्ध है कि शांकभरी देवी ने अपनी पूजा से प्रसन्न होकर एक घने जंगल को विशाल चाँदी के टुकड़े में परिवर्तित कर दिया था और बाद में वहाँ के निवासियों द्वारा प्रार्थना करने पर उसी स्थान को नमक की झील के रूप में बदल दिया। इसलिए इस झील का नाम 'सांभर', सांकभर का परिवर्तित रूप, पड़ा। यह कथा ६ ठी शताब्दी की है।

इतिहास बताता है कि अकबर के राज्य काल से लेकर अहमदशाह के समय तक मुसलमान बादशाहों के हाथ में रहा। अब यह जयपुर और जोधपुर के महाराजाओं के हाथ में है। इसका पश्चिमी हिस्सा पूरा महाराज जोधपुर तथा पूर्वी हिस्सा सांभर नगर के साथ जोधपुर और जयपुर दोनों महाराजाओं के हाथ में है। कुछ समय के लिए यह झील मराठों और अमीर खाँ के हाथ में चली गयी थी, जब कि १८३५ से १८४३ तक अंगरेजों ने इसे शेखावटी में शान्ति स्थापनार्थ खर्चे के निमित्त अपने अधिकार में रखा था। अन्त में १८७० से यह झील पूर्ण रूप से अंगरेजों को लीज पर दे दी गई। और जयपुर तथा

जोधपुर के महाराज-गण केवल रायल्टी तथा कुछ वार्षिक रुपये पाने के अधिकारी रह गए।

## केदारनाथ

केदारनाथ ज्योतिर्लिंग हिमालय पर्वत पर स्थित है। यह अति शीतल स्थान है। हिम का साम्राज्य वर्ष के प्रत्येक माह में रहता है। इसकी ऊँचाई २२८३५ फुट है। यहाँ श्री केदारनाथ जी का अति प्राचीन मन्दिर है। ऐसा कहा जाता है कि यह मन्दिर पाण्डवों के समय का बना हुआ है। यहाँ की भूमि जलमयी है। यह मन्दाकिनी गंगा का उद्गम स्थान है। पवित्र स्थान के एक ओर मन्दाकिनी और दूसरी ओर सरस्वती नदी है जो हिमालय से निकलती हैं। इस प्राचीन मन्दिर की मरम्मत कुछ काल पूर्व महाराज नेपाल और ग्वालियर ने करवाई थी जिसके कारण अभी तक मन्दिर सुरक्षित है। मन्दिर के द्वार पर द्वारपाल खड़े हैं और दीवार पर चारों तरफ पाँचों पाण्डव, द्रौपदी, कुन्ती, पार्वती, लक्ष्मी आदि की मूर्त्तियाँ बनी हुई हैं। मन्दिर में जाते ही पहले दालान में इसके दाहिनी ओर लक्ष्मण और जानकी जी सहित भगवान् रामचन्द्र जी के दर्शन होते हैं। बीच में नन्दी और गरुड़ जी हैं। मन्दिर के भीतरी भाग में एक ओर पार्वती जी दूसरी ओर लक्ष्मी जी मूर्त्तियाँ हैं। मन्दिर के अन्दर भगवान् शंकर के पीठ भाग का दर्शन होता है। मूर्त्ति लिंग सदृश नहीं है। किन्तु एक टीले के समान है। लोगों का विश्वास है कि भगवान थक कर यहाँ विश्राम के हेतु लेट गये थे। मूर्त्ति इतनी बड़ी है कि दर्शनार्थियों को खड़े होकर घृत का स्नान कराना पड़ता है। मन्दिर का भीतरी भाग अँधेरा है और रातदिन घी का दीपक जला करता है।

महाभारत के अध्याय ८३ के ७२ वें श्लोक में केदारनाथ का उल्लेख मिलता है।

## वाराणसी

वाराणसी भारतवर्ष में हिन्दुओं के तीर्थ स्थानों में से एक पवित्र तीर्थ स्थान माना जाता है। पाणिनी की अष्टाध्यायी, पतंजलि के महाभाष्य, भागवत पुराण, स्कन्द पुराण तथा योगिनीतन्त्र में इस पवित्र स्थान का उल्लेख मिलता है। कूर्म पुराण के अनुसार यह नगर प्रयाग से ८० मील नीचे गंगा के उत्तरी किनारे पर वरणा और असी नदियों के बीच बसा हुआ है। चूंकि यह नगर वरणा और असी नदियों के बीच है इसलिये इस नगर का नाम वाराणसी है।

जैनों के "विविधतीर्थ कल्प" के अनुसार वाराणसी चार भागों में विभाजित है। १—देव वाराणसी, जहाँ श्री विश्वनाथ का मन्दिर स्थापित है। २—राजधानी वाराणसी—जहाँ यवनों का वास है। ३—मदन वाराणसी और ४—विजय वाराणसी। जैनियों के मतानुसार पार्श्वनाथ का जन्म काशी में ही हुआ था।

चीनदेश के वासियों द्वारा वाराणसी पो-लो-निन्सी समझा जाता है। उन लोगों के अनुसार इसका क्षेत्रफल ४००० ली माना गया है और इस नगर की बस्ती घनी मानी गई है। उनके मतानुसार इसके मन्दिरों में ३० संघाराम और १०० देवालय हैं।

वेदों और पुराणों में अनेक स्थानों पर वाराणसी या काशी का उल्लेख मिलता है। महाभारत के "अनुशासन पर्व" के अनुसार इस नगर के स्थापित करने वाले देवदास किसी युद्ध में हराए जाने के बाद जगल में भाग गये थे तथा "उद्योग पर्व" के अनुसार भीमसेन के पुत्र इन्हीं देवदास को प्रतर्दन नामक एक पुत्र भी था। देवदास की जीवनी के सम्बन्ध में "हरिवंश" में भी बहुत कुछ हमें मिलता है।

यद्यपि हिन्दू और जैन धर्म ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर काशी का उल्लेख है या अनेक कथाएँ भी मिलती हैं फिर भी इस नगरी की राजनीतिक अवस्था का स्पष्ट वर्णन हमें बौद्ध ग्रन्थों से प्राप्त होता है। बौद्ध काल में काशी ने अपना राजनीतिक महत्त्व खो दिया था क्योंकि कोशल के राजा प्रसेनजित के समय में काशी कोशल में मिला ली गयी थी। प्रसेनजित के पिता महाकोशल ने अपनी पुत्री कोशलदेवी के राजा बिम्बसार के साथ पाणिग्रहण के अवसर पर काशी नगरी को दहेज स्वरूप दिया था। इसके पश्चात् उत्तरी भारत के शक्तिशाली राजा अजातशत्रु द्वारा यह नगर पूर्ण रूप से जीत लिया गया था और मगध राज्य में मिला लिया गया था।

**'गउड'**

१६ वीं शताब्दी के अन्त तक 'गौड़' वंग प्रदेश की राजधानी हिन्दू और मुसलमान राजाओं के शासन-काल में रह चुका है। जैनियों के आचरांगसूत्र के अनुसार गौड़ देश रेशमी कपड़ों (दुकूल) के लिए प्रसिद्ध था। कुछ लोगों के मतानुसार "गौड़" नाम "गुड़" से निकला है, क्योंकि किसी जमाने में यह देश "गुड़" के व्यापार का केन्द्र समझा जाता था। आज भी मालदा शहर से १० मील की दूरी पर गौड़ के भग्नावशेष अपने पुरातनपने का

परिचय दे रहे हैं। यह एक पुराना शहर है, जो गंगा और महानन्दा के संगम पर बसा हुआ है। पद्मपुराण में गौड़ देश का उल्लेख मिलता है और इस देश के राजा का नाम "नरसिंह" था, ऐसा पाया जाता है। पाल वंश के राजाओं ने गौड़ प्रदेश की राजधानी कालिन्दी नदी के किनारे "रामावती" नगरी को बनायी थी। लेकिन इस राजधानी का अब कुछ भी पता नहीं चलता। गौड़ के राजा लक्ष्मण सेन द्वारा बनायी गयी लक्ष्मणावर्ती बहुत काल तक सेन वंश और मुसलमान राजाओं की राजधानी रही। सेन वंश के राजा वल्लालसेन के द्वारा गौड़ में "वल्लालवाड़ी" नामक एक दुर्ग बनवाया गया था, जिसका भग्नावशेष अब शाहदुल्लापुर के समीप प्राप्त है। आज भी गौड़ के समीप श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा पवित्र किए हुए स्थान 'रामकेलि' तथा 'रूप' और 'सनातन' के रहने के स्थान रूप सागर, तालाब, कदम्ब का वृक्ष, कुछ कूप एवं मदनमोहन जी का पुरातन मन्दिर पाये जाते हैं। मुसलमान काल के कुछ उल्लेख योग्य स्थान जैसे जानजानमियों की मसजिद, हवेली खास का भग्नावशेष, सोना मसजिद, फीरोज मीनार आदि यहाँ वर्तमान हैं। इनके अतिरिक्त गौडेश्वरी देवी, जहरवासिनी देवी तथा शिव के पुराने मन्दिर भी अभी यहाँ वर्तमान हैं।

हर्ष के काल से लेकर लक्ष्मणसेन के काल तक एक नहीं अनेक ऐसे शिलालेख तथा ताम्रपत्र प्राप्त हो चुके हैं, जो गौड़ देश के प्राचीन इतिहास पर पूर्ण रूप से प्रकाश डालते हैं। इन शिलालेखों और ताम्रपत्रों में से मालवा के राजाओं के नागपुर के शिलालेख 'ई० सन् ११०४-११०५' का उल्लेख इसलिए आवश्यक है कि बीसलदेव रासो में गौड़ देश के उल्लेख का सूत्र इसके द्वारा स्थापित हो जाता है। इस शिला लेख के द्वारा पता चलता है कि परमार राजा लक्ष्मदेव ने गौड़ के राजा को हराया था।

## 'उड़ीसा'

उड़ीसा प्रदेश गंगा नदी के मुहाने से लेकर कृष्णा नदी के मुहाने तक फैला हुआ है। कलिंग के नाम से इस प्रदेश का उल्लेख संस्कृत ग्रन्थो में अनेक स्थलों पर किया गया है। यह भारत के पाँच प्रचीन राज्यो में से एक है। इसकी पुरानी राजधानी अभी भी नगर से आध मील की दूरी पर कलिंगपट्टनम् में वर्तमान है। राज्य दो भागों विभाजित है। गोदावरी के मुहाने (Delta) तक के स्थानों को कलिंग कहा जाता है तथा उत्तर की ओर महानदी के मुहाने तक के स्थान एक अलग प्रदेश बनाते हैं, जिन्हें ओद्र या उत्कल कहा जाता

है। पण्डितों ने इस नाम की उत्पत्ति और इसके अर्थ पर विभिन्न विचार प्रक
किये हैं। ओद्र बहुत पुराना नाम है और आज का नाम औड़ीसा या उड़ीस
इसी से बना ज्ञात होता है। जैसे ओद्र + देश = ओड़ीसा। इस शब्द क
सम्बन्ध इसी नाम के लाल गुलाब के फूल से लगाया जाता है, जिसे वहाँ
रहनेवाले स्वर्ग के पाँच फूलों में से एक समझते हैं। लेकिन पण्डितों ने इ
शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा है कि इस शब्द का अर्थ गर्दा या धू
है। और इस शब्द के अपने कथित अर्थ को यह कह कर ठीक बताते हैं कि
चूंकि इस प्रदेश के लोग संस्कृत विद्वानों की दृष्टि में बहुत ऊँचे नहीं सम
जाते थे इसलिये यह अर्थ ठीक है। इसका दूसरा नाम उत्कल अवश्य संस्कृ
नाम है, जिसका अर्थ उन्नतिशील प्रदेश होता है। (The glorius countr
कुछ लोग इस शब्द का अर्थ Land of Bird killer लगाते हैं। तथा कु
ऐसे भी विद्वान् हैं, जो इसका अर्थ (The outlying Stup) बताते हैं।

इस प्रदेश का प्राचीन इतिहास यह बताता है कि यहाँ के आदि निवास
भुइयाँ, सबर, गोंड और खोंड थे जो अपनी-अपनी जातियों के प्रधान के सा
पृथक-पृथक समूह बना कर रहते थे। कुछ काल के बाद आर्य गणों का य
प्रवेश हुआ और ये लोग अपनी बुद्धि और क्षमता के द्वारा उन आदि वासि
पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने में समर्थ हुए। इतिहास यह भी बताता है कि
किस प्रकार "आर्य गण जिनमें मुख्यतया राजपूत थे, उत्तर मे तीर्थ यात्रा के
हेतु "पुरी" में आकर बस गये और अपना राज्य स्थापित किया। आर्यों के
राज्य स्थापित कर लेने के बाद भी उड़ीसा में छोटे-छोटे राज्यों की बहुलत
रही तथा इसके मध्यकालीन इतिहास को जानने के लिए इसके निमि
छोटे-छोटे राज्यों के सम्बन्ध में जानना आवश्यक है। पटना राज्य के आधु
निक राज्य-परिवार वाले आज से प्रायः ६०० वर्षों पूर्व यहाँ आये थे औ
उन्होंने अठारह गढ़ जात को जीतकर इस राज्य की स्थापना की। ऐसा कह
जाता है कि इस राज्य परिवार के लोग चौहान जाति के राजपूत थे, जो मैनपुरी
के समीप रहते थे और वहाँ से मुसलमानों द्वारा भगा दिये गये थे। पटना में इस
जाति के लोगोंने बस कर अपने बल और पौरुष के द्वारा शीघ्र ही आजकल के
सम्बलपुर कहे जाने वाले जिले तथा इसके आसपास के राज्यों-सोनपुर औ
बांभरा पर अपना आधिपत्य जमा लिया। इसके बाद ही यह जीता हुआ
भूखण्ड इस परिवार के दो भाइयों में विभाजित हो गया। इस विभाजन मे
जिस भाई के हिस्से में सम्बलपुर का राज्य मिला, वही महान् हुआ और पटन
को हिस्से में पाने वाला भाई उसके अधीन हुआ। मराठों ने पहले पहल

सम्बलपुर राज्य को जीता और सम्बलपुर राज्य के जीतने के साथ उनका अधिकार पटना राज्य पर भी हो गया।

मयूरभंज का १३०० वर्षों का पुराना इतिहास बताता है कि यहाँ जयसिंह नामक एक राजा हुए थे। उनके बाद उनका ज्येष्ठ पुत्र वहाँ का राजा हुआ था, उनका मझला पुत्र क्योंझर का राजा हुआ। बौड़ और दसपल्ला राज्य के प्रमुख भी इसी राजा जयसिंह के वंशज अपने को बताते हैं। अब मल्लिक, नरसिंगपुर,माललहरा, तालचर और टिगिरिया राज्य के राजा गण भी अपने को राजपूत कुल का मानते हैं। नयागढ़ को बसाने वाले रीवा के राजपूत थे और उन्हीं के कुल के पूर्वज खण्डपरा राज्य के अधिष्ठाता थे।

उड़ीसा का रनपुर राज्य सबसे प्राचीन माना जाता है और यहाँ के राजाओं का इतिहास प्रायः ३६०० वर्ष पुराना माना गया है। इस राज परिवार का ही एक ऐसा इतिहास है जिसमें यहाँ के आदि आगन्तुकों का चिन्ह वर्तमान है। यहाँ के राजाओं की सार्वभौमता सर्वदा अक्षुण्ण रही। मुगल और मराठा काल में भी यहाँ के आन्तरिक मामलों में उनके द्वारा कभी हस्तक्षेप नहीं किया गया।

सन् १८०३ में मराठों से ही अंगरेजों ने उड़ीसा को अपने अधिकार में लिया था।

# परिशिष्ट ( ख )

## गूजर

'गूजर' मारवाड़ की सैनिक जातियों में से एक है। किसी समय गूजर अत्यन्त शक्तिशाली थे और गुजरात प्रान्त के अधिपति थे, लेकिन आज न तो ये गुजरात के अधिपति हैं और न इनका कार्य ही सैनिक जातियों का-सा है। आज इनका मुख्य व्यवसाय राजपूताने में पशु पालने का है और ये पशुओं का क्रय-विक्रय भी करते हैं।

'गूजर' शब्द संस्कृत भाषा के 'गुर्जर' शब्द का अपभ्रंश है। जेनरल कनिंघम के मतानुसार 'गुजरांवाला', 'गुजरात', 'गुजरखा' आदि नगरों के नामों के साथ गूजर शब्द का संयोग इस जाति के नाम के कारण ही है। ये नगर पंजाब प्रान्त के आसपास हैं, जहाँ यह जाति पहले-पहल पहुँची थी।

पंजाब से यह जाति दिल्ली आई, दिल्ली से अजमेर तथा सौराष्ट्र पहुँची, और वहाँ से इसने वल्लभीपुर के सम्पूर्ण भू-क्षेत्र पर अपना अधिकार स्थापित किया। जब इनका अधिकार इस क्षेत्र पर स्थापित हो गया, तब इस क्षेत्र का नाम वल्लभीपुर से परिवर्तित होकर 'गुजरात' पड़ा।

जेनरल कनिंघम के उपर्युक्त मत से ऐसा ज्ञात होता है कि यह जाति विदेशी थी और पंजाब प्रान्त से होती हुई भारत में आई। लेकिन श्री के० एम० मुन्शी आदि विद्वानों ने इस जाति की उत्पत्ति भारतीय राजपूतों से मानी है, जिसके प्रमाण में इन विद्वानों ने ताम्रपत्रों तथा ६ ठी शताब्दी की रचनाओं का उल्लेख किया है।[1]

राजपूताने के भाट भी 'गूजरों' की उत्पत्ति राजपूतों से ही मानते हैं। आज भी गूजरों में पँवार, चौहान तथा चन्देल आदि राजपूतों के, अनेक गोत्र तथा गूजरगौड, बड़ गूजर तथा गूजर पठान आदि गूजरों के गोत्र राजपूतों, ब्राह्मणों और मुसलमानों में पाये जाते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से इस जाति के सम्बन्ध में जो सामग्री हमें प्राप्त है और जिसके आधार पर इनकी उत्पत्ति के विषय में विचार किया गया है, वह विशेष प्रामाणिक ज्ञात होता है। सम्भव है इस जाति

---

१—द ग्लोरी दैट वाज गुर्जर देश—के० एम० मुन्शी पृ०—८।

के राजपूताने में बसने के बाद इनका मिश्रण राजपूताने के अन्य जातियों के साथ हुआ हो और तब से इनके गोत्रों का अन्य-अन्य जातियों में पाया जाना सम्भव हुआ हो। भाटों का कथन इसी आधार पर स्थित ज्ञात होता है।

आज भी मारवाड़ के पूर्वी परगनों तथा 'पर्वतसर' आदि स्थानों में यह जाति पर्याप्त संख्या में विद्यमान है। यह जाति अपना घर बस्ती से दूर बनाती है क्योंकि ऐसा करने में इन्हें अपने व्यवसाय पशु-पालन में सुविधा होती है। कहावत प्रसिद्ध है, 'गूजर जहाँ ऊजड'। ये छप्पर छाने के कार्य में पटु होते हैं और विशेषकर इस जाति की स्त्रियाँ इस कार्य को करती हैं। उन्हें अपने इस कार्य की दक्षता का अभिमान भी है।

ये लोग 'गूजरे डेरीमाता', देवजी[1] तथा 'भैरोजी' की उपासना करते है तथा अपने देवताओ के सम्मान में गले में फूल पहनते हैं। ये मांस और मदिरा के सेवन के अभ्यस्त हैं। इनके यहाँ मृतक के शव की हजामत बना कर उसकी दाह-क्रिया की जाती है और मृतक का श्राद्ध दीपावली पर करने की इनकी परम्परा है।

## 'कछवाहा'

कछवाहा जाति के राजपूत अपने वंश की उत्पत्ति महाराज रामचन्द्र जी के द्वितीय पुत्र 'कुश' से मानते हैं। ऐसा कहा जाता है कि यह जाति अयोध्या से स्थानान्तरित होकर 'नरवर' आयी और वहाँ से रोहतास और 'रोहतास' से 'आमेर' आयी। यहाँ आकर यह जाति बस गयी। अभी भी आमेर में इनकी तीन मुख्य शाखाएँ मिलती हैं :-१. शेखावत, २. नरूका तथा ३. राजावत।

१—शेखावत शेखा जी के वंशज हैं। कहा जाता है कि शेख बुहरान नामक किसी मुसलमान फकीर की कृपा से शेखा जी जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम मोकल जी था। अस्तु, इनसे चलने वाली शाखा का नाम शेखावत पड़ा। शेखावत अपनी सन्तानों को छः वर्ष की अवस्था तक नीले रंग की टोपी और पायजामा पहनाते हैं। ये लोक सूअर के मांस का भक्षण नहीं करते।

२—नरूका अलवर राज्य का शासक वंश है।

---

१. नोट—लगभग ६५० वर्ष पूर्व मेवाड़ में 'देवजी' नाम के एक महात्मा हुए थे। उन्होंने मेवाड़ मे अनेक करामातें दिखाई थी। गूजर इन्हा 'देवजी' के भक्त हैं।

३—राजावत जयपुर राजवंश के निकटतम कुटुम्बी हैं।

कछवाहा जाति में स्त्रियों की संख्या पुरुषों से अधिक है। ये लोग प्रधानतः वैष्णव धर्म को मानने वाले हैं। शैव तथा शाक्त धर्म के अनुयायी इस जाति में बहुत कम पाये जाते हैं। इनकी कुलदेवी का नाम जमुवाय माता है। इनके घर की स्त्रियाँ हाथ और कान में स्वर्ण के अतिरिक्त अन्य किसी धातु के गहने का व्यवहार नहीं करतीं।

## पंवार

आबू पर्वत के यज्ञकुण्ड से उत्पन्न चार अग्निकुलो में से पंवार भी एक है। पूर्वकाल में यह वंश अत्यन्त शक्तिशाली था। परम प्रतापी राजा भोज तथा राजा विक्रमादित्य इसी वंश के भूषण थे।

मारवाड़ में इस वंश की जो कथा प्रचलित है, उसके अनुसार वहाँ के वालमेर स्थान के किसी "धरनीवराह" नाम के राजा का नाम लिया जाता है, जो इस वंश के आदि पूर्वज थे। इनके नौ भाई थे। धरनीवराह ने मारवाड़ को नौ भागों में बाट कर एक-एक भाग प्रत्येक भाई को सौंप दिया और 'कोट किराड़ू' अपने पास रखा। यही विभाजन आज भी मारवाड़ में नौकोट मारवाड़ के नाम से प्रसिद्ध है। एक पद भी इस सम्बन्ध में लोग गाते पाये जाते हैं:-

मंडोवर सावंत हुओ अजमेर सिन्धसू।
गढ़ पूंगल गजमल्ल हुओ, लूद्रवे भान भू॥
आलपाल अर्बुद्ध भोजराजा जालन्धर।
जोग राज घर घाट हुओ हंसू पारक्कर॥
नवकोट किराड संजुगत थिर पंवारां थापिया।
धरणीवराह घर भाइयाँ कोट बाँट जुअजुअ किया॥

अर्थात् धरनीवराह ने पंवारों की सारी जमीन नौ भागों में विभाजित कर अपने नौ भाइयों को दे दिया और कोट किराड़ू अपने पास रखा। इस विभाजन के अनुसार मंडोर सावन्त को अजमेर सिन्धु को, पुंगलगढ़ गजमल्ल को, लुद्रवा भान को, आबू आलपाल को, जालन्धर अर्थात् जालौर भोजराज को, तथा जोगराज को 'घात' और उमरकोट, एवं पारकर हंसराज को प्राप्त हुआ। इस विभाजन से पंवारों की शक्ति क्षीण हो गयी और चौहान, राठौर, पड़िहार आदि राजपूताने की अन्य क्षेत्री जातियों ने इन नौ राजाओं को धीरे-धीरे जीत लिया। आज भी पंवारों की कुछ शाखाएँ 'सोढ़ा', 'साखला', 'भयाल' आदि मारवाड़ में पाई जाती हैं। इन शाखाओं की जीविका निर्वाह का साधन अब

किसानी है। कहीं-कहीं पंवारों में लोग शव को उलटा रख कर शवदाह करते हैं। इनके पूर्व वैभव का एक सोरठा प्रसिद्ध है:—

पृथ्वो बड़ा पंवार, पृथ्वी पंवारांतणी।
एक उजेणी धार, दूजो आबू बैठणू॥

## चौहान

पंवार की तरह चौहान भी उन चार अग्निकुल वंशीय राजपूतों में से एक हैं, जिनकी उत्पत्ति आबू पर्वत पर किये गये यज्ञ के अग्निकुण्ड से मानी जाती है। कर्नल टाड के मतानुसार राजपूत जाति की समस्त शाखाओं में से ये वीरता में सर्वश्रेष्ठ हैं। पंवर वश के पश्चात् कुछ काल तक दिल्ली पर इन्हीं का शासन रहा। मारवाड़ में भी अनेक स्थानों पर इनका अधिकार था और ये उन स्थानो के शासक रह चुके हैं। बीसलदेव रासो के अध्ययन से पता चलता है कि ११ वीं शताब्दी में अजमेर के शासक चौहान वंशीय राजा ही थे। आज भी मारवाड़ के विभिन्न भागो में ये अपनी वीरता की सेवाओं के उपलक्ष्य में प्राप्त भूभाग को लिये हुए बसे हुए हैं।

चौहान वश से जिन शाखाओं का विकास हुआ है, उनमें मुख्य और महत्व-पूर्ण 'देवडा', 'हाडा', 'सोनगरा', 'निर्वानपुविया' और 'साचोरा' हैं। इन विभिन्न शाखाओं के अतिरिक्त एक शाखा मुसलमान चौहानों की भी है, जो सन् १३८३ ई० में फिरोजशाह तुग़लक के शासन काल में मुसलमान हो गये थे। इस शाखा के चौहान 'कायमखानी' नाम से प्रसिद्ध हैं।

चौहान वंश की कुलदेवी शाकंभरी माता हैं। इस वंश के राजपूतों में 'गोगा जी' का नाम बहुत प्रसिद्ध है। ये लोग उनके नाम का एक धागा धारण करते हैं और विश्वास करते हैं कि यह धागा साँप के काटे व्यक्ति को स्वस्थ करने में समर्थ है। भाद्र सुदी ६ को ये लोग 'गोगानवमी' नामक उत्सव मनाते हैं। ये गोगाजी कौन थे कहा नहीं जा सकता। लेकिन इनकी मान्यता और प्रसिद्धि को देखते हुए ज्ञात होता है कि ये अवश्य कोई सिद्ध पुरुष, इनके वंश में हुए होंगे। 'कायमखानी' भी गोगा जी को गोगापीर के नाम से पूजते हैं। पश्चिमी प्रान्तों के निवासी चौहानों में उत्तराधिकार में प्राप्त सम्पत्ति को पुत्रों एवं विधवा स्त्रियों में बाँटने की प्रथा है। इसी वंश ने सर्व प्रथम 'नाता-प्रथा' का प्रचलन किया और 'नातरायत' के नाम से नवीन समुदाय की नींव डाली। जालोर के राजा कानडदेव ही वे प्रथम राजा थे, जिन्होंने अपनी विधवा पुत्री का पुनर्विवाह चितौड़ के राणा के साथ कर 'नाता प्रथा' को आरंभ किया था।

## भाटी

भाटी वंश के राजपूत अपनी उत्पत्ति भगवान् कृष्ण तथा चन्द्रवंशी राजपूतों के पूर्व पुरुष यदु से मानते हैं। इस वंश के राजपूतों का स्थान राठौड़ वंश के पश्चात् आता है। कर्नल टाड ने भाटी राजपूतों को भारतवर्ष के समस्त राजपूतों की अपेक्षा अधिक प्रसिद्ध माना है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, इस जाति की उत्पत्ति के विषय में यह कथा प्रचलित है कि महाभारत के युद्ध के बाद भगवान् श्रीकृष्ण के उत्तराधिकारी मध्य एशिया में चले गये थे, और वहीं से उन्होंने ग़जनी आदि प्रदेशों की स्थापना की। जब उन्हे वे सब स्थान किसी कारणवश छोड़ने पड़े, तब वे लौट कर पञ्जाब आये और दीर्घ काल तक पञ्जाब प्रान्त के 'भटनेर' नगर में बसे रहे। यही कारण है कि इनका नाम भाटी प्रसिद्ध हुआ। लेकिन कर्नल वाल्टर और कर्नल हण्ट का मत है कि किसी काल में इस वंश में भाटी नाम का कोई वीर योद्धा हुआ था और उसी के नाम पर इस वंश के राजपूतो का नाम भाटी पड़ा। इनकी उत्पत्ति चाहे उपर्युक्त कारणों में से किसी भी एक कारण से हुई हो लेकिन ये लोग भटनेर में बसे अवश्य थे, जहाँ से ये दिरावल होते हुए जैसलमेर गये थे और वहां अवस्थित हो गये। इस समय जैसलमेर ही इस वंश का केन्द्र स्थान है। इस सम्बन्ध में निम्न दोहा सुना जाता है:—

मथुरा काशी प्रागवड गजनी अरु भटनेर।
दिगम दिरावल लोद्रवो नम्मो जैसलमेर॥

कर्नल टाड का कथन है कि भाटी राठौड़ो के समान न तो अन्य क्षत्री दीर्घकाय और पुष्ट शरीर वाले ही होते हैं और न कछवाहों की भाँति सुन्दर आकृति वाले ही, लेकिन इनकी रूपरेखा आकर्षक और सुडौल होती है तथा वर्ण स्वच्छ होता है।

भाटियों की दो शाखाएँ—१. 'जैसा' और २. 'रावलोट' मारवाड़ में आबाद हैं। इस वंश का वैवाहिक सम्बन्ध राजाओं और जागीरदारों के साथ अधिक होने के कारण इनके पास अभी भी अनेक जागीरें वर्तमान हैं।

# परिशिष्ट (ग)

## शब्दार्थ

'अ'

अठार—अठारह, अट्ठारह। अउहव—अनोखा, अद्वितीय। अकुलीणीय—अकुलीन। अवकर—अपशब्द। अणष—रोष। अछइ—है। अणुहार—अणुहारि, अनुकरण करने वाला, समान। अरथ—अर्थ, धन। अस—ऐसा। अपहछ—अपह छ, अपच्छ, अहितकर। अनइ—अण्ण—खाना, नाज, पानी। अम्हि—मेरे। अवली सवली—सजी-बजी। अहिनाण—अभिज्ञान, चिन्ह। अरण—आदि।

'आ'

आपणइ—अपने। आभर—आभरण—गहना। आपडीया—आँख। आहेडीय—अहेरी। आणंदियउ—आनन्दित हुआ। आगिला—आगे। आजणी—अंजन। आवासइ—रहने का स्थान। आसंजीयउ—आसंजिअ—आसक्त। आगली—बढ़ कर, अच्छी, सुन्दर। आल—दोषारोपण, आड, अवलम्ब। आकरी—तेज। आणि—आनि—लाकर। आगलउ—आगे। आषि—ठमका—पलक मारते ही।

'इ'

इसउ—ऐसे।

"उ ऊ"

उलगाणा—प्रवासी। ऊलगइ—स्मरणीय। उछाह—उत्साह। उघरउ—उद्धार। उलीभ—उलीण—कुलीण—उग्गइइ—निकलता है, खान से निकलता है। उलग—परदेश, प्रवास। उलगाणउ—प्रवास के निमित्त। उचाय—उच्चय—त्याग देना, छोड़ देना। उछइ—उच्छइ—आच्छादित। उसीस—उस्सास—उच्छ्वास (उद्‌ प्रबल : श्वास : उच्छ्वास :) ऊँचा श्वास लेना। उमाहीयउ—उमंग पर। उलट्यउ—उलट पड़ा हो। ऊतउ—वहां। उजला—उज्ज्वल। उसाकी—उसकी। उवर—उदर—पेट। उमाहियउ—उम्माहियउ—विनाशित। उलषउ—देख सकना। उणनइ—उनको। उमाहियउ—आवेगा। उणरउ—उसका, उनका। उरिआ—हृदय में। उमाहो—उमंग। उससाइ—उसांस। उछली—लहरा रही है। ऊभलयउ—अच्छा।

"ए ऐ"

एतउ–इतना।

"क"

कडवउ–कड़वक छंद। कुलह–टोपी। कवाइ–कवा लम्बा अंगरखा। कोपीउ–बोलना, कहना। करइ–करते हैं। कंधि जनोईय–कन्धे पर जनेऊ। कडिहि–कडि–कमर। कानिह–कान। काणि–कानि, शपथ। कोडी–कीड़ी, क्षुद्र जन्तु। कटकी–कटक। कहिनइ–आज्ञा। कण–तण्डुल। कुकस–कुस्कस–धान आदि का छिलका, भूसा। कविली–कपिला। कउण–कौन। कूल्हड–छोटा पात्र। कलि–कलह। कइ–अथवा। करह–ऊँट। कूंडर–कूड़ा। किसा–कैसा। काक–कान। कुरलीय–कुरर–कुरल, पक्षी, उत्क्रोष। कोकिज्यो–बुलाना, कोकना। कमेड़ीय–कमेड़ी, कपोती। कमावती–काम करती, कराती। कराइ–करता है। कूंपालां–कुंपल–मुकुल, कलि। कंचूवउ–कचूअ–चोली। केलिगरभ–कदली गर्भ। कूंवली–कोमलांगी। कूजर–कुंजर। कालरी–चढ़ चढ़ कर। कागुल–पत्र। कठभरेभरे–रुद्ध कठ से। कुवरि–कुमारी। कामणी–कामिनी, सुन्दरी। कलिग–उड़ीसा प्रदेश। कुवण–कौन। करि–करके। कोडि–कोटि–करोड़। किमाड–किवाड, दरवाजा। कुवण–किस। कडी–कटि–कमर। [illegible]। कडाया–कमर।

"ग"

गंग–गंगा नदी। गुर्पति–गुप्त। सउखि–गवाक्ष, खिड़की। गोठी–गोदि–गोष्ठी–मण्डल, गोष्ठी। गाठड़ा–गाँठ में, गठरी। गुजइ–झूमते हैं। गइलछइ–मार्ग में हैं, मार्ग में खड़े हैं। गरथ–द्रव्य, ग्रन्थि। गउड़–गौड़ देश। गुजर–गुज्जर–गुजरात देश। गहिली–पागल। गग नइ पारि–गगा के पार। गाठिका–गांठका। गारुड़ी–गरुड़। गिलेसी–गिलेसि–गिलिअ–निकलना। गउ–गया। गुहिर–गहरी। गमाइया–नष्ट करना। गुडी–पताका। गाहीजइ–रखा जाता है।

"घ"

घोडला–अश्विनी नक्षत्र। घणीय–घना। घेउर–घेवर, मिष्ठान्न विशेष।

"च"

चादरि–आसन। चोषउ–चोकस, शुद्ध। चिहुँ–चारों। चारीय–चौठी। चढोढइ–चढ़ना। चादर–चद्दर। चिहुँघडीया–चोघड़िया। चुंबणी–चुम्बन।

चींत–चिन्ता। चतह–चित्त। चंपीया–दबा हुआ। चउरी–चउरिया–लग्न मण्डप। चंडीयउ–प्रबल, उग्र। चउरासिया–विशिष्ट पदाधिकारी। चिन्तवइ–चिन्ता करना, विचार करना। चऊथि–चतुर्थी ( गणेश चतुर्थी )। चोरजउ–जिस प्रकार चोर रखता है। चउषंडी–चार खण्ड, चार खण्ड का राजमहल। चीड़ीय–चिड़िया। चीरी–चिठ्ठी। चउरा–चौपाल। चाउ–चादर।

"छ"

छाइउ–छाना। छंडी–छोड़ दी। छिवणी–स्पर्श करना, छूना। छार–राख। छोडि–डाल दी। छोटीय–छोटी छाहड़ी–छांट।

"ज"

जूवा–जुव–तरुण। जइतूं–जो तू। जनम हूवउ–जन्म हुआ। जान–यान–बारात। जोसि–ज्योतिषी–पण्डित। जोग–युक्ति। जूठउ–झूठा। जोगनी–जोइणी–योगिनी (ये ६४ हैं)। जुरइ (जुडई)–जुड़ जाते हैं। जिहा–जिस। जोइ ज्यो–देखना, खोजना। जइरि–यदि। जमडाढ़–तलवार। जुहारण–नमस्कार जोडइ–आरम्भ करना। जावता–जीतना। जाइ–जाता है, जाकर। ज–समान।

"झ"

झलवलइ–चमकना। झूरता–चिन्ता, झूरना, सूखना, पछताना, विलाप करना। झुण कार–रुनझुन। झिगमिगइ–जगमगाना। झपियउ–झखना, व्यथित हुआ। झीड़ई–पतली। झलकय–झलकती है, चमकती है। झलमलई–चमकता है। झाल–ज्वाला। झुनाकउ–जूनागढ़ का।

"ट"

टसकला मुसकला–चटकना, मटकना। टउरि–मैं जिस प्रकार। टेकि–पकड़कर।

"ठ"

ठअकती–ठुमकती चाल, रुक कर चलना। ठवइ–ठइअ–ठविय–रखता। ठाकुर–राजा। ठामोठामि–जगह-जगह। ठांइ–स्थान।

"ड"

डालीयउ–फेंकना।

"ढ"

ढाकणउ–ढाका जाना, छिपाना। ढुलई–चल रहा है।

"त"

तणउ–तण–तृण–घास। तुरीय–तुरय–घोड़ा। ताजीय–ताजी। ताणीया–तणिअ–ताना हुआ। तिउरि–उसी प्रकार। तलइ–नीचे। तइ–तेरे। तव–तप। ताजणउ–घोड़े का। तावडउ–धूप। तुम्हनइ–तुमसे। तूठउ–संतुष्ट। तेजी–ताजी, घोड़े की एक जाति। तंबोल्ह–तंबोलि–पान। तोरणि–बहिर्द्वार तूठी–तुष्ट, प्रसन्न। तपई–तप्पइ 'तप करना', गरम होना, तपाना। तडी–से।

"थ"

थोड़ी-थोड़ी–कुछ-कुछ।

"द"

देषउ–देखना। दातार–देने वाला, दाता। देज्यो–दे। दीन–दिया। दीवड़–दरवाजे पर। देडवडी–दुंदुभी। दाहिमा–दक्षिण दिशा, दक्षिण देश। दाइजउ–दहेज। दिहाडउ–दिन। दावड़ी–लड़की, छोकड़ी। द्वीज–द्वितीया। दाधा–जलाया हुआ। दिहि–दृष्टि-दिठि–नजर, नेत्र। दवगंती–दमयंती। दुषि–दुःख। दुधू–दुग्ध–दूध। देवकइ–देवता का। देव–देवता 'दइव' यहाँ बीसल-देव। दीप–दीपक (राजमती)।

"ध"

धीरिकयउ–धार का। धारइ–धारण किया। धान–धान्य, अन्न। धीन–धान्य। धण–स्त्री राजमती। धवल्या–सफेद, सफेदी कराना। धवलीय–धौरी। धीरय–धीरिअ–धैर्य। धण का नाह–पति। धण–राजमती।

"न"

नवि–णवि (वैपरीत्य सूचक अव्यय) नहीं। नइ–णइ–नदी, नम्रतापूर्वक। नवसर, नव–णव, नया। नावइ–न आवइ–नहीं आती है। नावीया–नहीं आवोगे। नल्ह–नाल्ह कवि। नगर–शहर। नीकी–अच्छी, सुन्दर। नयण–नयन–आँख। नीसरइ–णिस्सरइ, बाहर निकलना। निवात-नवनीत–मक्खन। नयर–नगर। नाह–णाह, नाथ। नरेश–नरों के स्वामी। नीसाणो–नगाड़ा।

नालेर–नारिकेल–नारियल । निवार, णिवार–निवारण । नवकरि–नमस्कार करना । नवीण–नम्रतापूर्वक, नम्र होकर । निहालती–निरीक्षण करना–देखना । नाद–ज्ञान । न्हांण–नहाना । निरममां–निष्ठुर । नड्डा–निकट ।

"प"

पयाण–प्रयाण–गमन, प्रस्थान । पाणही, पाणहा–जूता । पूगी–पूरा कर । पीक-पान का पीक । परिहसि–परिहास । पउलि–पौरि । पयउहर–पयोधर । पूछउ–पूछो । पुरिवी–पूर्व का ( उड़ीसा का ) । पूति–पुत्त–पुत्र । पारणउ–पारण । परिगह–परिग्गह–ममत्व । परिमाण–प्रमाण । पूरिव्यउ–पूर्व का । पाटलउ–पाटा । पूठि–पुट्ठि, पिट्ठी, पृष्ठ, पीठ । परहरयउ–छोड़ना ( छोड़ा ) पहुता–पहुँचा । पग–पाव । पातलउ–पतला । पधारउ–पधारना, जाना । पछइ–पीछे । पूरवी–पूर्व का । पाका–पका । पटोली–पट्ट, पहनने का कपड़ा । पसाउ–पसायन–प्रसन्न करना । पलाणि–पलाँद । पाणइ–पानी । पालि–तालाब आदि का बन्ध । पायस्यां-पायस–खीर । पगर–पगड़ी । पोष–पौष मास । पालषी–पालकी । पहिरावणी–पहिरामण-पहिरावण–भेंट में दिया जाता है वस्त्र जो । परणि–विवाह । पश्चिम–पश्चिम । पहिरणइ–परिधान । पातली–पतली । परगास-परकास-प्रकास–दिखा,बता । पतडउ–पत्रा, पंचांग । प्रथमइ–पहले । पठाइ–भेज दे । पालउ–पालन करो । पतीजुं–विश्वास करना । पाषरइ–पाखार, काठी (घोड़ों पर पाखर काठी ) । पषालिज्यो–पखारना । पाट–रेशम । पटंबर–रेशमी वस्त्र । पऊतलउ–पहुँचा । पाइजइ–पाना । परिणवा–विवाह । पाइक–प्यादा, पैर से चलने वाला सैनिक । पाटि–पीढ़ा । पलाणीया–पलाणिअ–भागा, दौड़ा, भागा हुआ, गया । पउलि–पउलिअ–पका हुआ, जला हुआ दुग्ध । पौरि–ड्योढ़ी । पहर–पहनना । पतीजी–प्रतीति, विश्वास । परकाइ–दूसरो के शरीर में । पंषी–पक्षी । पउहर–पयोधर । परजल–प्रज्ज्वलित । पाइसुं–पायस–खीर ।

"फ"

फाटि–फटकर । फेडियउ–छोड़ना । फड़कइ–फड़कना । फिक्या–घूमा । फूदा–फुलरा । फेरबी–फेरना ।

"भ"

भवण–उत्पत्ति, जन्म, मकान, असुर कुमार आदि देवों का विमान, सत्ता । भेदइ–भेदना, तोड़ना । भेरि–भेरी, वाद्य विशेष । भोगवउ–भोग करना ।

भादवइ–भादो–भाद्रपद। भाग्ग–सूर्य। भुइ–भूमि। भाइस–भाई। भरतार–स्वामी। भमइ–भ्रमइ–घूमता है। भीनउ–भींग गया। भइरव–अस्तव्यस्त।

"म"

मुधि–मूढ़, मूर्ख। मोडिउ–मोड़ा, गूँथा। माडिय–भरा हुआ। मंगा–मांग। मांकल्यउ–मोक्कलिय–प्रेषित, भेजा हुआ। मोकल्या–मोकल्ल–मोकलंबु (गुजराती)–भेजना। मुझ–मेरा, मेरी। म्हाहरउ–मेरे यहाँ। म्हारइ–मेरे। मेल्हउ–छोडा। मलावउ–मिलावय, मिलाओ। मुगति–मुक्ति। मनह–मनमें। मेघा–मेघों का समूह। माय-माइ–मातृ का, मातृ का पूजन। मांडहउ–मंडवा, मंडप। मेल्या–मेलाव, मिलाप। मेल्हि मेल्ह–छोडना। मेदन-मेइणि–मेदिनी। मारु–मारवाड। मउडउ–मोड़कर निकाल, देर से निकाल। मेडउ–मुंड, संन्यास। मास–कोमल आमन्त्रण सूचक अव्यय। महारि-महारिय–मेरा। मइला-मइल–फीका–मलीन। मुहि-मुह मुज्झ–मोह करना। मंडर–मडि–भूषित। म्हाकी–मेरे। माहि–में। मेल्हाण–छोडना, परित्याग, छोड़ा। ममाण–श्मशान। मंडिया–मंडिअ–रचित, लगाकर। मोनइ–मुझे, मुझको। मेलउ, मेलय–सम्बन्ध, संयोग। मरेसि, मरेगा—मरेगी। मुया—मृतक। मिल्या मिलना। माता—मस्त। मइगल—मदगलित।

'र'

रावलउ–राजा का। रावली–राजाओं की। रति–ऋतु। राया–सुन्दर। रोस–क्रोध। राजकउ–राजा के। रावडी–राखड़ी–शीश फूल। रिपज्यो–रखना। राउ–राजा। रावलइ–राजभवन, (अन्तःपुर)। रवि–अग्नि, नायक सरदार। रोहणी–रोहिण–दिन का दूसरा पहर, नक्षत्र विशेष; शक्रेन्द्र की एक पटरानी, आषाढ़ के कृष्ण पक्ष में रोहिणी से चन्द्रमा का योग होता है। रुनी–रुदन।

'ल'

लषलहइ–लाख प्राप्त करले, पहचानने योग्य। लंकि–कटि। लाष–लाख संख्या। लोपीय–लुप्त, अप्राप्त। लावीय–लाभ, सुन्दर रम्य। लुणिजइ–लुअ–काटा हुआ। लोवड़ी–लोभपटी, सुन्दर बारीक। लूण–नीमक, लवण। लाषा–लाखों। लेइ–लेकर। लागिण–लगती थी। लाउ–प्रेम। लंछण–लांछना। लागामी–लगाम। लवइ–हिल जाता है।

## "व तथा ब"

ब्रनवउ–वर्णन करना । बरवीसल–वीर बीसलदेव । विचिद्दण–विचद्दण । वेगम–शीघ्र । वरि–निकट । वइसाइ–बैठा कर । वसउ–वसइ–स्थान । वासउ–वास । वस्या–किया । विचाल–विचाल–अन्तराल । बारहा–बारह । वंदिया–वंदना । वरधू–वरधू–वाद्यविशेष । विहुवाणा–दो वाणों मे । वयण–कथन, वाणी । बेषि–भेष । विहुणीय–विहुण–अलग करना, बिना । वालि–राजा । बार–बारह । विरास्या–कष्ट किया । बोलिनइ–बोलना । बांदी–चेरी । बारि–द्वार । वाहला–वाहलीया या वाहली–क्षुद्र नदी, छोटा नद । वीध–विधि, प्रकार । वइसवाइ–बैठने के लिये । वासीयउ–वासिय–सुगन्धित किया हुआ, संस्कारित । वाउडइ–वाहुडइ–वाहुडिय–लज्जित । वाहुडयाउ–लौटा । वज्र–वज्र । बाट–मार्ग । वाह–वायु । वाहुड्या–लौटना । बीज–बिजली । बादल–बादल । बउलावीया–बुलाया । बुढ़इइ–बुढ़ा । बंजारि–मार्जार ( बिल्ली ) वाजीया–बोया । विह–उसके । वार–शीघ्र । वाणिया–बनियों । विहुणी–बिना । वाधतउ–बढ़ते हुए । बधामणी–बधाई । वहिनडी–बहन । बुहारि–झाड़ना । वइगा–शीघ्र । वीप–पग । विसहर–विषधर–सर्प । वाकरउ–निर्वाह करूँगा । वीरा–भाई । वारउ–मना करना । वस–वयस । वइसतउ–बैठने के लिये ।

## "स" और "ष"

सवारइ–सुसज्जित करना । सरसीय–सरस, साथ । संगुण–सउण–प्रसिद्ध शुभाशुभ सूचक बाहुस्पन्दन, काक–दर्शन आदि निमित्त, सगुन, गुण । सामाण–समान । सामाणसा–सुपुरुषजन । सिखिज्यो–सीखना । सुजाण–सुन्दर, चतुर । सुवर–अच्छा वर । समदीय उलइ–विदा करना । सोनउ–सोवण, सोना । सिउ–समुख । सगलउ–सकल, सब । संजहु–सजाना, सजाओ । सरगल–सइग–सौ की कीमत का, अनेक । सजइ–सजना । सावा–सवा १¼ । सुहव–सुभग । सरिसिउ–समान । सगल–सदल–सकल । सावटू–वस्त्र विशेष । सउडि–चादर । स्हास–सास । सगलीहे–सगल–सदल–सकल । सवालषउ–सपादलक्ष, देश विशेष । सोवन–सोवन्ज–सोना, सुवर्ण । सवाहीयउ–प्रशंसा । सुं–से । सीषि–शिक्षा । साहणी–साहुनी । सुचंग–चंग–सुन्दर । सुणाउ–सुनो । सूकट–सिकोड़ना । साथि–साथ । सं–संग । सिरि–सिर से । सहिनाण–चिन्ह, ( पहचान ) ।

सुणवियउ–सुनाना । सार–मूल्य । उत्कृष्ट, अच्छी । सायर–सागर–समुद्र । सूकि–सूख कर । सारिषी–सारिक्ख–समान, सरीखा । सारिषउ–सारिक्ख–सदृश, समान । सउण–शकुन–सगुन । सउचरि–चार सौ । सादि–ऊँट । सकउ–सकना ।

सहि–सहना । सगलय–सगल–सयल–सकल । सांचिति–वह हृदय में । सांवलउ–संबल । सुभाइ–सुभग–आनन्द । सं–साथ, से । संउ–समान । सीस–सर । ससोभित–सुशोभित । सुणीजा–सनेही, स्नेहियों । संस्या–घोड़ा । षाण–खान । षाल–निचले भूभाग (गड्ढे) । षेह–खेह–धूलि–रजा षिवाइ–चमक जाती है । षाडउ–खारा । षउलि–खौरी । षाइ–खाने बैठना । सद–सद्यः । सुवस–स्ववश–स्वतन्त्र । सोपारइ–लग्न की सुपाड़ी । सीला–शीतल । सुसतउ–धीरे-धीरे । संचिजइ–सींचते हैं ।

'ह'

हंस वाहण–हसंवाहिनी, सरस्वती । हुउ–हुआ । हउरि–मैं । हियडलइ–हृदय । हेली–होली । हलवइ–धीरे । हारि–पराभूत होना ।

## * सहायक पुस्तकों की सूची *

### 'छंद, रस, और अलंकार तथा भाषा'


१. युक्ति व्यक्ति प्रकरणम्— स० मुनि जिनविजय तथा डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या।

२. छंदोऽनुशासनम्— संपादक प्रो०एच० डा० वेलणकर।

३. छंद:प्रभाकर— जगन्नाथ प्रसाद "भानु"।

४. पिंगल छंद सूत्रम्— पिंगलाचार्य, स्वर्गीय सातानाथ समाध्यायी भट्टाचार्य द्वारा सम्पादित तथा श्री गोविन्द चन्द्र काव्यतार्थ पुराणशास्त्री द्वारा सशोधित।

५. रघुनाथ रूपक गीतारां— मंछ कवि 'स० महताब चन्द्र खारैड, 'विशारद'जयपुरवाले। 'नागरी प्रचारिणी सभा काशी।'

६. अपभ्रंश मीटर्स— प्रो० एच० डा० वेलणकर, 'बम्बई यूनिवर्सिटी जर्नल १९३३-३५ पृ० ३२-३४।'

७. राजस्थानी लोकगीत— स्व० श्री सूर्यकिरण पारीक, एम० ए०।

८. रस गंगाधर— जगन्नाथ पण्डितराज 'सं०—पं० पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी, नागरी प्रचारिणी सभा।'

९. काव्य कल्पद्रुम— कन्हैयालाल पोद्दार।

१०. हिन्दी व्याकरण— कामताप्रसाद गुरु।

११. नोट्स आन दि ग्रामर आफ दी ओल्ड वेस्टर्न राजस्थानी— टेस्सिटोरी।

१२. हिन्दी भाषा का इतिहास— डा० धीरेन्द्र वर्मा।

१३. राजस्थानी भाषा— डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या।

१४. राजस्थानी भाषा और साहित्य-पं० मोतीलाल मेनारिया।
१५. डिंगल में वीररस— ,, ,, ,,
१६. कम्परेटिव फाइलोलाजी— डा० पी० डी० गुने।
१७. लिग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया—ग्रीयर्सन।
१८. अ ग्रामर आफ कम्परेटिव आयन लैंग्वेज— जान बीम्स।
१९. अ ग्रामर आफ गाडियन लैंग्वेज— ए० एफ० आर० हार्नले।

इतिहास, भूगोल, तथा अन्य पुस्तकें

२०. नागरी प्रचारिणी पत्रिका—संवत् १९५८, १९५९, १९८२, १९९५, १९९६, १९९७.
२१. राजस्थानी पत्रिका— भाग ३
२२. एनुअल रिपोर्ट आन दी सर्च फार हिन्दी मैन्युस्क्रिप्ट फार दी इयर १९००।
२३. बारडिक सेलेक्शन्स - लाला सीताराम।
२४. मिश्रबन्धुविनोद—
२५ पृथ्वीराज विजयाख्यं महाकाव्यम्--जोनराज कृत टीका सहितं 'बिब्लोथेका इंडिका प्रकाशन।'
२६. भारत के प्राचीन राजवंश—
२७. इण्डियन एन्टिक्वेरी 'वाल्यूम १४।'
२८. वेलिकृष्ण रुक्मिणीरी
२९. राजपूताने का इतिहास— डा० गौरी शंकर हीराचन्द्र ओझा।
३०. रिपोर्ट्स आफ दी आर्के-लाजिकल सर्वे आफ इण्डिया।
३१. हिस्ट्री आफ ओरीसा— श्री आर० डी० बनर्जी
३२. एनल्स एण्ड एन्टिक्वीटीज आफ राजस्थान— कर्नल टाड।

३३. राजपूताने का इतिहास— जगदीश सिंह गहलोत।

३४. हिस्ट्री आफ मालवा— मालकम।

३५ वंश भास्कर— सूर्यमल्ल मिश्र।

३६. अजमेर मारवाड़ गजेटियर- सी० सी० वाटसन।

३७. अजमेर हिस्टारिकल एण्ड डिसक्रिप्टिव एच० बी० शारदा।

३८. डाइनेस्टिक हिस्ट्री आफ नादर्न इण्डिया। वाल्० १ एवं २ डा० एच० सी० राय।

३९. राजा भोज विश्वेश्वर नाथ रेऊ।

४०. एन्सियन्ट जोग्रफी आफ इंडिया-एलेक्जेण्डर कनिंघम।

४१ सेन्ट्रल इण्डिया गजेटियर।

४२. एन्शियन्ट हिस्ट्री आफ इंडिया-वी० ए० स्मिथ।

४३. इण्डियन क्रानोलजी— एल० डी० कन्नूस्वामी पिल्लई

४४ हिस्ट्री आफ ओरीसा— एल० के० महताब।

४५. जर्नल आफ द एसियाटिक सोसाइटी 'बंगाल'।

४६. इण्डियन एराज— एलेक्जेण्डर कनिंघम।

४७. एन्शियन्ट इण्डियन हिस्ट्री--विनायक राव।

४८. मगरह मेरवाड़े की कौमों का इतिहास।

४९. द ग्लोरी दैट वाज गुजरात देश (भाग ३)— श्री के० एम० मुन्शी।

५०. हिस्टोरिकल इन्सक्रिप्शन्स आफ गुजरात— जी० वी० आचार्य।

५१. हिस्ट्री आफ मेडिवियल हिन्दू इण्डिया— सी० सी० वैद्य।

५२. हिस्ट्री आफ पारमार्स आफ मालवा— डी० सी० गांगुली।

५३. एन्शियन्ट इण्डिया ऐज डेस्क्राइब्ड बाई हालेमी ।

५४. वीर काव्य— डा० उदयनारायण तिवारी ।

५५. बीसलदेव रासो— श्री सत्यजीवन वर्मा ।

५६. बीसलदेव रासो— डा० माताप्रसाद गुप्त ।

५७. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ।

५८. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास— डा० रामकुमार वर्मा ।

## * शब्द-कोष *

५९. पाइ अ - सद्द - महार्णवो ।

६०. अभिधान राजेन्द्र ।

६१. संस्कृत हिन्दी डिक्शनरी— मानियर विलियम ।

६२. वेदिक इंडेक्स । मैकडॉनेल और कीथ ।

६३. हिन्दी शब्द सागर ।

६४. ढोला मारू रा दूहा ।

६५ डिंगल रा सबद । रायल एसियाटिक सोसाइटी में सुरक्षित। पाण्डुलिपि । राजस्थानी पाण्डुलिपियों की सूची पत्र सं० ३८ सी० ३६ ।

# अंग्रेजी ग्रन्थ


1. In- -rion to the Principles of Textual Criticism—*Dr. Katre*
2. The Grammar of Old Western Rajasthani—*Dr. L. P. Tissitoni*
3. Comperative Philology—*Dr. P. D. Gune.*
4 Linguistic Survey of India—Vol. IX.
5. History of Orrisa—*R. D. Banerjee.*
6. Rajasthan—*Todd* ( Crooke's Edition )
7. History of Malwa—*Malcolm.*
8 Hindi Search Reports.
9. A Grammer of Comperative Aryan Language--*John Beams*
10. A Grammar of Gandhian Language—*A. F. R. Horenle.*
11. Gujrati Language & Literature—*N B Divatia*
12 Ajmer-Merwara Gazetteer—*C C Watson*
18. Dynestic History of Rajput (Vol I & II)—*Dr Hem Ray*
14. History of Kanauj—*Dr. R S Tripathy*
15. Ancient Geography of India—*Cunningham*
16 Gazetteer of C. India--( Malva, Dhar )
17 Ancient History of India *V A Smith*
18. Ajmer--*H. B. Sarda.*
19 Marwar Ka Itihas—*Bisweswar Nath Reu*
20. Indian Chronology--*L D. Swami K. Pillai*
21. History of Orrissa—*H. K Mahatab*
22 Indian Eras—*Cunningham.*
23. Bardic Chronicals of Rajsthan.
24. The Glory that was Gujarat-Desha P. III-*K. M. Munshi*
25 Historical Inscriptions of Gujrat—*G. V. Acharya.*
26 History of Medieval Hindu India—*C V Vaidya*
27. History of the Parmars of Malwa—*D C. Ganguly*
28 Ancient India as described by—*Ptolemy.*
29. Rajputana Gazetteer · Vol. I & II